अध्ययन मण्डल

अध्यक्ष **संयोजक**
कुलपति **निदेशक समाज विज्ञान विद्याशाखा**
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
1.प्रो0 अरविंद के जोशी, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उत्तर प्रदेश)
2.प्रो0 बी.मोहन कुमार, जी.बी.पंत कृषि व प्रोद्योगिको विश्वविद्यालय, पंतनगर, उत्तराखण्ड

पाठ्यक्रम समन्वयक

डॉ0 दीपक पालीवाल, सहायक प्राध्यापक समाजशास्त्र, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

इकाई लेखन

1. डा0 धर्मवीर महाजन
2. डॉ0 अफरोज इकबाल, समाजशास्त्र विभाग राजकीय महाविद्यालय,डोईवाला,उत्तराखंड
3. डा0 बबित कुमार बिहान ,समाजशास्त्र विभाग,जखोली, राजकीय महाविद्यालय,
4. डॉ0 संजय कुमार, समाजशास्त्र विभाग, दिगंबर पी.जी .कॉलेज,बुलंदशहर (उत्तर प्रदेश)
5. डा0 संजीव महाजन, समाजशास्त्र विभाग, NAS P.G. College, Meerut

संपादन

डॉ0 दीपक पालीवाल, सहायक प्राध्यापक समाजशास्त्र, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

कापीराइट @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

प्रकाशन वर्ष- 2020

प्रकाशन- उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी- 263139

सर्वाधिक सुरक्षित। इस प्रकाशन का कोई भी अंश उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी

MASO-506

समाजशास्त्रीय सिद्धान्त -II

Sociological Theories – II

Block V	**Max Weber**	
Unit 1	Social Action & Ideal types सामाजिक क्रिया एवं आदर्श प्रारूप	**पृष्ठ–1–17**
Unit 2	Forms of Authority: Charismatic, Traditional & Rational सत्ता के स्वरूप : चमत्कारिक, परम्परागत एवं तार्किक	**पृष्ठ–18–28**
Unit 3	Religion and Economy: Protestant Ethic & Spirit of Capitalism धर्म तथा अर्थव्यवस्था : प्रोटेस्टैण्ट इथिक एवं पूँजीवाद	**पृष्ठ–29–37**
Block VI	**George Mead**	
Unit 4	Symbolic Interactionsim प्रतीकात्मक अन्तकियावाद	**पृष्ठ–38–56**
Unit 5	Self & Society स्वयं एवं समाज	**पृष्ठ–57–68**
Unit 6	Theories of Socialization समाजीकरण के सिद्धांत	**पृष्ठ–69–89**
Block VII	**Talcott Parsons**	
Unit 7	Concept of Social Action समाजिक क्रिया की अवधारणा	**पृष्ठ–90–106**
Unit 8	Structural- Functionalism and Pattern Variables संरचनात्मक–प्रकार्यवाद एवं प्रतिमान चर	**पृष्ठ–107–124**
Unit 9	Social System & Subsystem Interlinkages सामाजिक व्यवस्था एवं अन्तर्सम्बन्धित उपव्यवस्थाऐं	**पृष्ठ–125–142**
Block VIII	**R.K.Merton**	

Unit 10	Function & Functional Paradigm प्रकार्य एवं प्रकार्यात्मक पैराडाइम	पृष्ठ–143–157
Unit 11	Social Structure & Anomie सामाजिक संरचना एवं प्रतिमानहीनता	पृष्ठ–158–174
Unit 12	Reference Group and Social Mobility सन्दर्भ समूह एवं सामाजिक गतिशीलता	पृष्ठ–175–193

इकाई 1 सामाजिक क्रिया एवं आदर्श प्रारूप
Social Action & Ideal Types

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 सामाजिक क्रिया
1.2.2 सामाजिक क्रिया की अवधारणा का स्पष्टीकरण : अर्थ एवं परिभाषाएँ
1.2.3 सामाजिक क्रियाओं के प्रकार
1.2.4 सामाजिक क्रिया के सिद्धान्त की समीक्षा
1.3 आदर्श प्रारूप
1.3.1 आदर्श प्रारूप की अवधारणा का स्पष्टीकरण : अर्थ एवं परिभाषाएँ
1.3.2 आदर्श प्रारूप के लक्षण
1.3.3 आदर्श प्रारूप के प्रकार
1.3.4 आदर्श प्रारूप का महत्त्व
1.3.5 आदर्श प्रारूप की अवधारणा की आलोचना
1.4 सारांश
1.5 शब्दावली
1.6 अभ्यास प्रश्न
1.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में सामाजिक क्रिया तथा आद"ार्श प्रारूप की अवधारणाओं को समझाने का प्रयास किया गया है। आशा है कि इस इकाई को पढ़ने के बाद, आप :

- समाजिक क्रिया की अवधारणा का स्पष्टीकरण कर पाएँगे तथा सामाजिक क्रिया के प्रमुख प्रकार समझ पाएँगे;
- वेबर द्वारा प्रतिपादित सामाजिक क्रिया की अवधारणा की आलोचनात्मक व्याख्या कर पाएँगे;
- आदर्श प्रारूप की अवधारणा का स्पष्टीकरण कर पाएँगे;
- आदर्श प्रारूप के प्रमुख लक्षणों एवं प्रकारों को स्पष्टतया समझ पाएँगे;
- आदर्श प्रारूप की अवधारणा के महत्त्व की चर्चा कर पाएँगे; तथा

- वेबर द्वारा प्रतिपादित आदर्श प्रारूप की अवधारणा की आलोचनात्मक समीक्षा कर पाएँगे।

1.1 प्रस्तावना

मैक्स वेबर (1864-1920) एक सुप्रसिद्ध इतिहासकार, राजनीतिक–अर्थशास्त्री एवं समाजशास्त्री थे जिन्होंने जर्मनी में समाजशास्त्र विषय को विकसित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। सामाजिक चिन्तन को उनकी अद्वितीय देन रही है क्योंकि उन्होंने समाजशास्त्र को सामाजिक क्रिया का अध्ययन करने वाला विस्तृत विज्ञान बताया है तथा अपने विश्लेषण में क्रियाओं के कर्ताओं पर अधिक ध्यान देकर अन्य समाजशास्त्रियों से भिन्न दृष्टिकोण अपनाया है। उनके सभी अध्ययन गहन चिन्तन, कुशाग्र बुद्धि एवं मौलिक विचारों पर आधारित हैं जिसके कारण वे इस विषय को प्रभावित करने वाले प्रमुख विद्वान् माने जाते हैं। उनके बाद आने वाली पीढ़ी उनके विचारों से प्रेरित और प्रभावित रही है। उन्होंने सामाजिक क्रिया, धर्म की आचार संहिता, पूँजीवाद की आत्मा, वैधता के स्रोत, शक्ति और सत्ता के प्रतिमान तथा नौकरशाही आदि जैसी अवधारणाओं का निर्माण किया जो आज भी समाजशास्त्रीय अध्ययन और विश्लेषण में प्रयोग की जाती हैं। पद्धतिशास्त्र की दृष्टि से भी उनका योगदान स्थाई महत्त्व का है। उन्होंने न केवल सामाजिक विज्ञानों को प्राकृतिक विज्ञानों से भिन्न करने का प्रयास किया, अपितु आदर्श प्रारूप की अवधारणा प्रतिपादित कर पद्धतिशास्त्र को महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

वेबर ने समाजषास्त्र की विषय–वस्तु को निर्धारित करने तथा सामाजिक घटनाओं के अध्ययन के लिए अपनाए जाने वाले सिद्धान्तों की विवेचना करके समाजषास्त्र तथा समाज"ाास्त्रीय सिद्धान्त में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। उनके अनुसार समाजषास्त्र वह विज्ञान है जो क्रिया का अर्थपूर्ण बोध कराने का प्रयत्न करता है ताकि इसके घटना–क्रम एवं परिणामों की कारण सहित व्याख्या तक पहुँचा जा सके। वेबर की इस परिभाषा को दो हिस्सों में बाँटा जा सकता है–**प्रथम**, समाजषास्त्र क्रिया का अध्ययन है तथा **द्वितीय**, इसका उद्दे"य इसके परिणामों तथा कारणों का पता लगाना है। प्रथम भाग समाजषास्त्र की विषय–वस्तु से सम्बन्धित है, जबकि दूसरा भाग विषय–वस्तु की अध्ययन–पद्धति अर्थात् पद्धति"ाास्त्रीय सिद्धान्त से सम्बन्धित है।

1.2 सामाजिक क्रिया

'सामाजिक क्रिया' की अवधारणा समाजषास्त्र में एक प्रमुख अवधारणा मानी जाती है। इस अवधारणा के साथ मुख्य रूप से जर्मनी के सुप्रसिद्ध समाज"ाास्त्री मैक्स वेबर का नाम जुड़ा हुआ है। उन्होंने समाजषास्त्र की परिभाषा में ही सामाजिक क्रिया को प्रमुख स्थान दिया है। उन्होंने समाजषास्त्र को सामाजिक क्रिया का अध्ययन एवं इसकी व्याख्या करने वाला विस्तृत विज्ञान बताया है तथा अपने वि"लेषण में क्रियाओं के कर्ताओं पर अधिक ध्यान देकर अन्य समाज"ाास्त्रियों से भिन्न दृष्टिकोण अपनाया है। उनकी सामाजिक क्रिया की अवधारणा को समझे बिना हम उनकी समाजषास्त्र की अवधारणा एवं इसकी प्रकृति को नहीं समझ सकते हैं।

वेबर के अनुसार, "समाजषास्त्र वह विज्ञान है जो सामाजिक क्रिया का अर्थपूर्ण बोध कराने का प्रयत्न करता है ताकि इसके घटना–क्रम (गतिविधि) एवं परिणामों की कार्य–कारण व्याख्या तक पहुँचा जा सके।" इस परिभाषा से यह स्पष्ट हो जाता है कि वेबर समाजषास्त्र की विषय–वस्तु सामाजिक क्रिया मानते हैं, इसलिए समाजषास्त्र का विस्तृत अर्थ तथा प्रकृति को समझने के लिए उनकी सामाजिक क्रिया की अवधारणा को समझना जरूरी है।

1.2.1 सामाजिक क्रिया की अवधारणा का स्पष्टीकरण : अर्थ एवं परिभाषाएँ

समाजषास्त्र में क्रिया का अर्थ किसी उद्दे"यपूर्ण व्यवहार से लगाया जाता है। वेबर के अनुसार 'क्रिया' में वह सारा व्यवहार आ जाता है जिसको क्रियारत व्यक्ति (कर्ता) व्यक्तिनिष्ठ (Subjective) अर्थ में सम्बन्धित करता है। इस अर्थ में क्रिया बाहरी भी हो सकती है तथा आन्तरिक या चेतना सम्बन्धी भी। यह किसी परिस्थिति में सकारात्मक रूप में दखल देने अथवा जानबूझकर उस परिस्थिति से दूर रहने के रूप में हो सकती है। **वेबर** के अनुसार, "किसी क्रिया को सामाजिक क्रिया तभी कहा जा सकता है, जबकि उस क्रिया को करने वाले व्यक्ति या व्यक्तियों के द्वारा लगाए गए सहानुभूतिमूलक अथवा आत्मपरक अर्थ के कारण यह क्रिया दूसरे व्यक्तियों के व्यवहार द्वारा प्रभावित हो और उसी के अनुसार उसकी गतिविधि निर्धारित हो।"

वेबर के क्रिया तथा सामाजिक क्रिया के बारे में विचारों से यह स्पष्ट हो जाता है कि सभी क्रियाएँ सामाजिक नहीं हैं। वेबर के अनुसार कोई भी क्रिया तभी सामाजिक कही जा सकती है यदि वह अन्य व्यक्तियों अथवा उनकी क्रियाओं से सम्बन्धित है।

किसी भी क्रिया को सामाजिक क्रिया तभी कहा जाएगा, जबकि उसमें निम्नांकित वि"ोषताएँ पाई जाती हैं–

(1) कोई भी क्रिया तभी सामाजिक कही जाएगी, जबकि वह अन्य व्यक्तियों की क्रियाओं व व्यवहार से सम्बन्धित हैं।

(2) प्रत्येक बाह्य क्रिया अथवा प्रत्यक्ष क्रिया (Overt action) को सामाजिक नहीं कहा जा सकता यदि वह पूर्ण रूप से अचेतन वस्तु से सम्बन्धित है।

(3) व्यक्तियों का प्रत्येक प्रकार का सम्पर्क भी सामाजिक क्रिया नहीं कहा जा सकता यदि वे अर्थपूर्ण रूप से सम्बन्धित नहीं है। उदाहरणार्थ–भीड़ को देखकर राह चलने वाले राहगीरों का रुक जाना सामाजिक क्रिया नहीं है क्योंकि इसमें व्यक्ति अर्थपूर्ण दृष्टि से सम्बन्धित नहीं हैं।

(4) सामाजिक क्रिया को प्रभावित करने वाला व्यवहार भूतकाल, वर्तमानकाल या भविष्यत्काल से सम्बन्धित हो सकता है। हमारा सम्पूर्ण व्यवहार केवल वर्तमान क्रियाओं अथवा व्यवहारों से प्रभावित नहीं होता, अपितु भूतकाल के व्यवहार से भी प्रभावित होता है।

वेबर द्वारा प्रतिपादित 'सामाजिक क्रिया' की अवधारणा बहुत स्पष्ट, गहन और सूक्ष्म है। **सर्वप्रथम**, उन्होंने स्पष्ट किया कि समाजषास्त्र 'मानव–क्रियाओं' से सम्बन्धित है, प्राकृतिक क्रियाओं अथवा प"ाु–पक्षियों की क्रियाओं से नहीं। **दूसरे**, उन्होंने यह भी बताया कि 'मानव क्रिया' से यहाँ आ"ाय मानव के उस आचरण से है जिसे वह व्यक्तिनिष्ठ या आत्मपरक अर्थ (Subjective meaning) प्रदान करता है। इसका मतलब यह है कि मानव कुछ ऐसी क्रियाएँ भी कर सकता है या करता है जिनका कुछ अर्थ नहीं होता; जैसे–कोई व्यक्ति बैठे–बैठे टाँगें हिला रहा है या अपने बालों में उँगलियाँ घुमा रहा है, यह सब वह अचेतन रूप से कर रहा है, उसे आभास भी नहीं कि वह ऐसा कर रहा है। व्यक्ति शरीर का संचालन तो कर रहा है, हरकत तो कर रहा है, परन्तु उसकी यह क्रिया मानव क्रिया नहीं कही जाएगी क्योंकि ऐसा वह किसी प्रयोजन, उद्दे"य या अर्थ से नहीं कर रहा है। ऐसी अर्थविहीन अथवा निरर्थक क्रियाएँ समाज विज्ञानों की रुचि का विषय नहीं है। इसलिए वही क्रियाएँ मानवीय क्रियाओं की श्रेणी में रखी जाएँगी जो कर्ता की अपनी दृष्टि में अर्थपूर्ण हैं। इसे ही वेबर ने 'आत्मपरक अर्थ' कहा है। **तीसरे**, मानव की सभी आत्मपरक अर्थ–भरी क्रियाएँ भी समाजषास्त्र के अध्ययन–क्षेत्र में शामिल नहीं की जाती। समाजषास्त्र की रुचि मानव की केवल उन अर्थपूर्ण क्रियाओं तक ही सीमित है जो वह किसी अन्य व्यक्ति या समूह की किसी क्रिया को

ध्यान में रखकर या उससे प्रभावित होकर करता है। ऐसी क्रियाओं को ही वेबर ने सामाजिक क्रिया कहा है।

इस भाँति, हम कह सकते हैं कि वेबर के अनुसार सामाजिक क्रिया किसी व्यक्ति या समूह की वह अर्थपूर्ण क्रिया है जो वह किसी अन्य व्यक्ति या समूह की किसी क्रिया को ध्यान में रखकर करता है। इस परिभाषा को सही ढंग से समझने के लिए यह जरूरी है कि कुछ शब्दों का, जिनका इसमें प्रयोग हुआ है, अर्थ स्पष्ट समझ लिया जाए। इस हेतु निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना आव"यक है–

(1) क्रिया के 'अर्थपूर्ण' होने से क्या तात्पर्य है?–वेबर की सामाजिक क्रिया की समाज"ाास्त्रीय व्याख्या में 'क्रिया का अर्थपूर्ण' होना बहुत महत्त्वपूर्ण है। वे स्पष्ट लिखते हैं कि, "'क्रिया' में वह सभी मानव व्यवहार उस सीमा तक ही सम्मिलित है जहाँ तक कि कार्य करने वाला व्यक्ति उस क्रिया का कुछ आत्मपरक अर्थ लगाता है।" इसलिए वेबर की क्रिया की अवधारणा को समझने के लिए 'आत्मपरक' 'अर्थ' एक केन्द्रीय शब्द है।

आखिर यह 'आत्मपरक अर्थ' क्या है? बड़ी सरल और सीधी बात है कि प्रत्येक व्यक्ति किसी भी कार्य को करने से पहले उसका अपनी दृष्टि से कुछ प्रयोजन या उद्दे"य समझता है। जिस स्थिति में वह कार्य करने जा रहा है, उसका भी अन्दाजा लगाता है व उसे अपने ढंग से परिभाषित करता है। इस प्रकार आत्मपरक (Subjective) का मतलब है–क्रिया के कर्ता ने अपनी अनुभूति और पूर्वज्ञान से क्रिया का क्या अर्थ लगाया है। इसे समझे बिना, स्पष्ट किए बिना, कर्ता की क्रिया को भी नहीं समझा जा सकता। वेबर ने स्वयं ही बड़ा सुन्दर उदाहरण दिया है। मान लीजिए कोई व्यक्ति कुल्हाड़ी से लकड़ी काट रहा है। यह तो भौतिक क्रिया है। यह देखकर कुछ स्पष्ट नहीं होता। यदि हम उस व्यक्ति के इस कार्य को समझना चाहते हैं तो हमें जानना होगा कि वह लकड़ी क्यों काट रहा है? उसका ऐसी क्रिया करने का क्या अर्थ है? यह अर्थ भी हमें उसी की दृष्टि से समझना होगा क्योंकि हो सकता है कि वह मजदूरी के लिए यह कार्य कर रहा है या अपने प्रयोग के लिए ईंधन का इन्तजाम कर रहा है, या सम्भवतः मनोरंजन के लिए कर रहा है, या वह अपना गुस्सा लकड़ियों पर निकाल रहा है। इस अर्थ को तो कार्य करने वाले की दृष्टि से ही समझना होगा। इसी को वेबर ने 'आत्मपरक अर्थ' कहा है। उन्होंने दूसरा उदाहरण दिया कि एक व्यक्ति की, जो कि बन्दूक से नि"ाना साध रहा है, क्रिया को तभी समझ सकते हैं, जब हम जाने कि वह ऐसा इसलिए कर रहा है कि उसे गोली चलाने का आदे"ा मिला है और वह गोली चलाने वाली टोली (Firing squad) का सदस्य है, या कि वह अपने शत्रु से जूझ रहा है, या कि वह बदला लेने के लिए ऐसा कर रहा है।

यह 'अर्थ' भी स्थायी चीज नहीं है। यह भी अन्तर्क्रिया के सन्दर्भ पर आधारित है। सन्दर्भ बदल जाने से कर्ता पुनः स्थिति का मूल्यांकन करता है और होने वाली क्रिया का अर्थ भी बदल लेता है। इस बात को **हरालाम्बोस** व **हैल्ड** (Haralambos and Heald) ने बड़े सुन्दर उदाहरण से स्पष्ट किया है। जैसे किसी नई कक्षा में प्रवे"ा करते समय विद्यार्थी स्थिति को भयावह या शत्रुतापूर्ण समझ सकता है। उसकी इस समझ या स्थिति का अर्थ कक्षा में होने वाली अन्तर्क्रियाओं के अनुसार बदल भी सकती है एव सं"ाोधित भी हो सकती है। वह अपने ि"ाक्षक और सहपाठियों को मैत्रीपूर्ण व्यवहार करते पाता है तो वह स्थिति को मैत्रीपूर्ण और सुखद रूप में पुनः परिभाषित कर लेगा। उसका व्यवहार भी हँसमुख, मैत्रीपूर्ण और मिलनसार हो जाएगा।

इसी प्रकार, कर्ता द्वारा क्रिया की स्थिति का अर्थ बड़े महत्त्वपूर्ण परिणाम रखता है क्योंकि इसी अर्थ के आधार पर वह 'वास्तविकता' को समझता है और इसी के सन्दर्भ में अपनी क्रियाओं के स्वरूप का निर्धारण करता है कि उसे किस प्रकार व्यवहार करना है। ऊपर के उदाहरण में यदि वह विद्यार्थी कक्षा में

पहुँचकर वहाँ ि"ाक्षक अथवा सहपाठियों के व्यवहार व भाव–भंगिमा को तनावपूर्ण ओर भयोत्पादक पाता है तो वह स्वयं भी अपने व्यवहार में संकोची और सावधान हो जाएगा, वह तभी बोलेगा जब उससे कुछ पूछा जाएगा। वह स्वयं को अपने तक ही सीमित कर लेगा। इस भाँति, 'आत्मपरक अर्थ' सन्दर्भ के साथ बदलते रहते हैं।

(2) 'क्रिया' से क्या तात्पर्य है?–साधारणतः व्यक्ति के बाह्य आचरण या व्यवहार को क्रिया कहते हैं, परन्तु यह क्रिया शुद्ध रूप से अपनी ओर उन्मुख या छिपी हुई (Covert) भी हो सकती है। यही नहीं, यह क्रिया कर्ता द्वारा स्थिति में सीधे हस्तक्षेप के रूप में हो सकती है, या जहाँ हस्तक्षेप, अपेक्षित था वहाँ हस्तक्षेप न करने के रूप में हो सकती है। वास्तव में, किन्हीं परिस्थितियों में 'मौन स्वीकृति' भी अर्थपूर्ण क्रिया का ढंग हो सकती है। उदाहरणार्थ–परीक्षा–कक्ष में ि"ाक्षक जब इन्विजिले"ान की ड्यूटी (Duty) पर हो और वह किसी विद्यार्थी को परीक्षा में अनुचित साधन प्रयोग करते देखकर भी नहीं पकड़ता और उसके कमरे में खुल्लमखुल्ला यह काम हो रहा है तो ि"ाक्षक का हस्तक्षेप न करना उसकी अर्थपूर्ण क्रिया मानी जाएगी और उसे ड्यूटी में लापरवाह का दोषी माना जाएगा।

(3) 'कर्ता' किसे कहा जाए?–सामाजिक अन्तर्क्रिया में कम–से–कम दो व्यक्ति तो सक्रिय होते ही हैं। समााजिक क्रिया की परिभाषा से स्पष्ट है कि यह व्यक्ति या समूह का वह व्यवहार है जो किसी अन्य व्यक्ति या समूह के किसी व्यवहार को ध्यान में रखकर किया जाता है। इस भाँति, इसमें भी दो पक्ष हैं और कम–से–कम दो व्यक्ति हैं। स्वाभाविक ही प्रष्न उठता है कि इन दोनों में से किसे कर्ता कहा जाए? वेबर इस प्रष्न का भी स्पष्ट उत्तर देते हैं। सामाजिक क्रिया का 'कर्ता' उस व्यक्ति को माना जाएगा जिसकी क्रिया का वि"लेषण और स्पष्टीकरण करना है। उदाहरण के तौर पर मान लीजिए एक प्रोफेसर कक्षा में पढ़ा रहे हैं और ि"ाष्य पढ़ रहे हैं। ऐसी स्थिति में यदि कोई अनुसन्धानकर्ता प्रोफेसर साहब की क्रिया को समझना चाहता है तो वे क्रिया के कर्ता माने जाएँगे और विद्यार्थी उस क्रिया में कर्म (Object or alter) माने जाएँगे। इसके विपरीत, यदि अनुसन्धानकर्ता विद्यार्थियों के आचरण को जानना चाहता है या यह समझना चाहता है कि ये लोग कौन हैं? किस व्यक्ति की बात सुन रहे हैं? क्यों सुन रहे हैं? उस द"ाा में वे क्रिया के कर्ता माने जाएँगे और प्रोफेसर साहब उनके कर्म कहलाएँगे।

(4) 'अन्य व्यक्ति' या 'समूह' कौन हैं?–कर्ता जिनकी क्रिया को ध्यान में रखकर या जिससे प्रभावित होकर किसी कार्य को करता है वे अन्य व्यक्ति वास्तविक क्रिया में संलग्न मूर्त व्यक्ति हो सकते हैं जिनसे कर्ता परिचित है। ये ऐसे व्यक्ति भी हो सकते हैं जिन्हें उसने कभी नहीं देखा, उसे परिचय भी नहीं है। उदाहरणार्थ–विद्यार्थी परीक्षा–कक्ष में उत्तर–पुस्तिका में उत्तर लिखते समय उस अनजाने परीक्षक को ध्यान में रखता है और उसे ही प्रभावित भी करना चाहता है जो उसकी कापियाँ जाँचेगा। इसी भाँति, ये 'अन्य व्यक्ति' दूर–दूर फैले हुए 'जन–समूह' भी हो सकते हैं। जैसे–एक फिल्म–निर्दे"ाक फिल्म निर्माण के समय उस द"ार्क समूह से भी प्रभावित होता है जो उस फिल्म की सफलता या असफलता का निर्णय करेगा। साथ ही, यह भी स्मरण रखने योग्य है, जैसा कि उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट भी है, कि अन्य व्यक्तियों की क्रिया, जिसका वि"ाष्ट अर्थ लगाकर कर्ता क्रिया करता है, वर्तमान में हो रही हो सकती है, भूतकाल में हो चुकी हो सकती है या भविष्य में होने की सम्भावना वाली हो सकती है। कक्षा में विद्यार्थियों की क्रिया प्रोफेसर साहब की वर्तमान क्रिया से प्रभावित होती है, उनका दैनिक कॉलेज आना, कुछ सीमा तक, उनके माता–पिता या संरक्षक के उस आदे"ा से प्रभावित होता है जिनके अन्तर्गत उन्होंने उस कॉलेज में दाखिला लिया है, और उनकी परीक्षा के लिए तैयारी उस अनदेखे परीक्षक से प्रभावित होती है जिसका कार्य भविष्य में होना है। **वेबर** के स्पष्ट शब्दों में, "सामाजिक क्रिया, जिसमें कार्य न करना और मौन

स्वीकृति दोनों ही शामिल हैं, अन्य व्यक्तियों के भूतकालिक, वर्तमान अथवा भविष्य में अपेक्षित व्यवहार से प्रभावित हो सकती है।"

(5) सामाजिक क्रिया का सार–तत्त्व क्या है?–हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि मानव का प्रत्येक व्यवहार या क्रिया, चाहे वह प्रत्यक्ष रूप से क्यों न हो रही हो, सामाजिक नहीं होता। तो फिर, वह क्या वि"ोषता या तत्त्व है जो किसी मानवीय क्रिया को सामाजिक क्रिया बनाता है? सार–तत्त्व यही है कि वह अन्य व्यक्ति या व्यक्तियों की ओर उन्मुख हो। व्यक्ति द्वारा एकान्त में बैठकर ई"वर की प्रार्थना या साधना इस अर्थ के अनुसार सामाजिक क्रिया नहीं है; इसी प्रकार, अपने बगीचे में पानी देना भी सामाजिक क्रिया नहीं है। व्यक्ति का प्रतिदिन पेस्ट करना उसकी निजी क्रिया है, समााजिक क्रिया नहीं; परन्तु वह यदि इसलिए करता है कि ऐसा करना उसकी माँ का आदे"ा है तो उसका यह कार्य सामाजिक क्रिया कहलाएगा।

इस भाँति, अन्य व्यक्ति या व्यक्तियों के साथ प्रत्येक प्रकार का सम्पर्क भी उसे सामाजिकता प्रदान नहीं करता। एक बस में एक–दूसरे से सटकर बैठे यात्रियों का शारीरिक सम्पर्क भी सामाजिक सम्पर्क नहीं है; विपरीत दि"ाा में आने वाले दो साइकिल सवारों की भिड़न्त भी सामाजिक क्रिया नहीं है; परन्तु यदि बस में बैठे यात्री आपस में बातचीत करने लगते हैं; या वे साइकिल सवार उठकर एक–दूसरे से विवाद करने लगते हैं; तो उनकी यह क्रिया सामाजिक क्रिया कहलाएगी। **वेबर** के शब्दों में, "मानव प्रणालियों का हर प्रकार का सम्पर्क सामाजिक प्रकृति वाला नहीं होता, यह तो केवल उन्हीं मामलों तक सीमित है जहाँ कर्ता का व्यवहार अन्य व्यक्तियों के व्यवहार की ओर अर्थपूर्ण ढंग से उन्मुख है।"

(6) क्या कई व्यक्तियों का 'एक–सा कार्य' या 'अन्य की उपस्थिति का प्रत्येक प्रभाव' या 'अनजाने में किया गया अनुकरण' सामाजिक क्रिया की श्रेणी में शामिल किए जा सकते हैं?–सामाजिक क्रिया की अवधारणा को स्पष्ट रूप से समझने में इस प्रष्न का उत्तर भी सहायक होगा। सामान्य स्थितियों में उपर्युक्त तीनों ही परिस्थितियों में उत्तर 'नहीं' ही होगा। मान लीजिए हम लोग सड़क पर जा रहे हैं और अचानक बारि"ा होने लगती है तो सह–यात्री या तो किसी साये ("ौड) की तला"ा में भागने लगते हैं या छाते खोल लेते हैं। हम सभी एक–सा कार्य कर रहे हैं पर हमारा कार्य एक–दूसरे से अर्थपूर्ण ढंग से सम्बन्धित नहीं है, वह तो बारि"ा से उत्प्रेरित है, अतः यह एक–सा कार्य भी सामाजिक क्रिया नहीं है। इसी प्रकार, मान लीजिए की भीड़ भागी आ रही हो और हम भी अचानक आ"ांका में बिना कुछ पूछताछ किए भाग खड़े होते हैं। यहाँ दूसरों की उपस्थिति से हम प्रभावित हैं, पर उनसे अर्थपूर्ण ढंग से सम्बन्धित नहीं हैं, अतः दूसरे की उपस्थिति मात्र से प्रभावित होना भी व्यक्ति की क्रिया को सामाजिकता प्रदान करने के लिए पर्याप्त नहीं है। इसी भाँति, किसी को कुछ करते देखकर प्रतिक्रियात्मक रूप में उसका अनुकरण–मात्र भी सामाजिक क्रिया नहीं है। यदि हम किसी को अपने कोट पर सदैव गुलाब का फूल लगाए देखकर खुद भी गुलाब का फूल अपने कोट पर लगाने लगते हैं, तो हमारा यह कार्य अन्य व्यक्ति का अनुकरण होते हुए भी सामाजिक क्रिया नहीं है। वास्तव में, ये सभी ऐसे मामले हैं जिन्हें उस सीमा–रेखा के मामले कहा जा सकता है जो सामाजिक और असामाजिक क्रियाओं की विभाजन रेखा है। ऐसी प्रत्येक क्रिया का पृथक् मूल्यांकन करके ही उन्हें सामाजिक या असामाजिक श्रेणी में रखा जाएगा। जब तक व्यक्ति की कोई क्रिया स्पष्ट रूप से किसी अन्य व्यक्ति की क्रिया से अर्थपूर्ण ढंग से सम्बन्धित नहीं है, वह सामाजिक क्रिया नहीं कही जाएगी।

वेबर ने सामाजिक क्रिया की अवधारणा को ही स्पष्ट नहीं किया वरन् उसके प्रमुख स्वरूपों का भी वर्णन किया है। अब हम सामाजिक क्रियाओं के प्रकारों की विवेचना करेंगे।

1.2.2 सामाजिक क्रियाओं के प्रकार

मैक्स वेबर ने सामाजिक क्रियाओं को, उनके प्रेरक उन्मेष (Orientation) के ढंग के आधार पर, चार श्रेणियों में बाँटा है। वे चार प्रकार निम्नलिखित हैं–

(1) परम्परागत सामाजिक क्रियाएँ–इसके अन्तर्गत मनुष्यों के उन व्यवहारों को सम्मिलित किया जा सकता है जो प्राचीनकाल से चली आ रही परम्पराओं, प्रथाओं, विचारों तथा प्रतिमानों द्वारा संचालित होती हैं। उदाहरण के लिए–हमारा एक–दूसरे से मिलते ही अभिवादन करना या हाल–चाल पूछना परम्परागत व्यवहार है। वास्तव में, दैनिक जीवन में अधिकां"ा क्रियाएँ इसी श्रेणी की होती है। हम परम्पराओं के इतने अभ्यस्त हो जाते हैं कि हमें पता नहीं चलता कि हम रीति–रिवाज का पालन कर रहे हैं।

(2) भावात्मक सामाजिक क्रियाएँ–इस श्रेणी की क्रियाओं का सम्बन्ध व्यक्ति की भावात्मक द"ाओं से होता है, न कि साधन साध्य के तार्किक मूल्यांकन से। दूसरे शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि यदि कोई व्यक्ति अन्य व्यक्तियों के व्यवहार से प्रभावित होकर भावनाओं और संवेगों के रूप में कोई क्रिया करता है तो उसे भावात्मक क्रिया कहेंगे। ये वे सामाजिक क्रियाएँ हैं जो व्यक्ति या समूह भावावे"ा में करते हैं। भावात्मक तनाव से मुक्ति प्राप्त करना ही यहाँ कर्ता का उद्दे"य होता हैं। प्रेम, घृणा, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष आदि से प्रभावित व्यक्ति ऐसा व्यवहार भी कर बैठता है जो वह अपनी शान्त मानसिक अवस्था में कभी नहीं करता।

(3) मूल्यात्मक सामाजिक क्रियाएँ–मूल्यों से सम्बन्धित क्रियाओं को मूल्यात्मक क्रियाएँ कहा जाता है। धार्मिक अथवा दैनिक प्रतिमानों एवं मूल्यों के अनुसार व्यक्ति से जिस प्रकार के व्यवहार की आ"ाा दूसरे व्यक्तियों द्वारा की जाती है उस प्रकार का व्यवहार करना मूल्यात्मक व्यवहार कहलाता है। इस प्रकार की क्रिया का सम्बन्ध वास्तव में उन साध्यों तक पहुँचना है जो तार्किक नहीं है यद्यपि उन्हें प्राप्त करने के लिए तार्किक साधनों का प्रयोग किया जाता है। सामाजिक मूल्य वे वस्तुएँ या सिद्धान्त हैं जिन्हें समाज अपने अस्तित्व के लिए जरूरी समझता है और जिनकी रक्षा हेतु बड़े–से–बड़ा बलिदान देने को तत्पर हो जाता है; जैसे–हमारे समाज में नारी की यौन–"ाुचिता, सतीत्व, मातृभूमि, हिन्दुओं की मूर्ति आदि। निरपेक्ष मूल्यों में व्यक्ति का वि"वास होता है, वह इनकी वांछनीयता में यकीन करता है। इसलिए वह इन्हें तर्कपूर्ण ओर उचित भी समझता है।

(4) बौद्धिक सामाजिक क्रियाएँ–साध्य एवं साधनों को दृष्टिगत रखते हुए व्यक्ति द्वारा नि"चत योजना के अनुसार की जाने वाली क्रियाएँ बौद्धिक सामाजिक क्रियाएँ कही जाती हैं। इन क्रियाओं का सम्बन्ध साधन और साध्य के तार्किक चयन से होता है। अधिकतर व्यापारिक क्रियाएँ इस श्रेणी में आती हैं। यहाँ व्यक्ति क्रिया करने से पहले इसमें होने वाले लाभ–हानि का हिसाब लगता है और लाभ या सुख की दृष्टि से कार्य करता है।

चारों प्रकार की श्रेणियों का वर्णन केवल आद"ार्ा प्रारूप की दृष्टि से ही किया जा सकता है क्योंकि इन्हें कई परिस्थितियों में एक–दूसरे से भिन्न करना कठिन है। सामाजिक क्रिया का चार श्रेणियों में विभाजन वेबर के दो उद्दे"यों को पूरा करता है–**प्रथम**, यह उसे क्रमबद्ध वर्गीकृत भेद, उदाहरण के लिए सत्ता के प्रकार में सहायता करता है, तथा **दूसरे**, यह प"चमी ऐतिहासिक विकास के अन्वेषण का आधार स्पष्ट करता है। इसीलिए **रेमण्ड ऐरों** (Raymond Aron) द्वारा वेबर के समाजषास्त्र के रूप–निद"ार्न को ऐतिहासिक तथा क्रमबद्ध दोनों कहा गया है।

1.2.3 सामाजिक क्रिया की अवधारणा की समीक्षा

मैक्स वेबर द्वारा प्रतिपादित समाजिक क्रिया की अवधारणा एवं सामाजिक क्रियाओं का वर्गीकरण पूर्णतः दोषरहित नहीं है। अनेक विद्वानों ने इनकी विविध आधारों पर आलोचना की है। उनकी आलोचना के प्रमुख आधार निम्नांकित हैं–

(1) तर्क की दृष्टि से यदि 'सामाजिक क्रिया' को देखा जाए तो प्रत्येक बात बड़ी साफ और सही नजर आती है, परन्तु व्यवहार में मूर्त क्रियाओं को उसकी सहायता से स्पष्ट करना काफी कठिन है। यदि सामाजिक क्रियाओं का वि"लेषण उनके कर्ताओं की दृष्टि से किया जाना है तो सामाजिक क्रियाओं के सम्बन्ध में कोई सामान्य नियम खोजना असम्भव हो जाएगा क्योंकि हर व्यक्ति क्रिया का अलग अर्थ लगाएगा और व्यक्ति अपने अर्थ बदल भी सकता है। वेबर की क्रिया की अवधारणा सामान्यीकरण की प्रक्रिया में सहायक नहीं है।

(2) वेबर ने क्रिया को प्रभावित करने वाले अन्य महत्त्वपूर्ण कारकों की उपेक्षा कर दी; जैसे–कर्ता का व्यक्तित्व, पर्यावरण के असामाजिक कारक, समाज की प्रमुख संस्थाएँ आदि। उन्होंने अपने वि"लेषण को मानवीय अभिप्रेरण (Human motivation) तक ही सीमित कर दिया।

(3) 'सामाजिक क्रिया' की अवधारणा 'प्रेरक' कारक को तो ध्यान में रखती है परन्तु क्रिया के 'परिणाम' सम्बन्धी पक्ष की उपेक्षा करती है। इस भाँति, यह अवधारणा प्रकार्यात्मक पक्ष के प्रति उदासीन है, जो कि सामाजिक क्रिया का बहुत ही महत्त्वपूर्ण पहलू है।

(4) वेबर द्वारा किया गया सामाजिक क्रियाओं का वर्गीकरण भी मूर्त स्थिति में कठिनाई पैदा करने वाला है। परम्परागत, मूल्यात्मक तथा बौद्धिक सामाजिक क्रियाओं में स्पष्ट भेद करना काफी कठिन है। स्वयं वेबर ने स्वीकार किया है कि मूर्त घटनाएँ और क्रियाएँ वास्तव में सीमा–रेखा पर होती हैं। जैसे बौद्धिक क्रिया में खुद मूल्यों का समावेश होता है क्योंकि व्यक्ति के द्वारा लक्ष्यों और साधनों का चुनाव, उनका औचित्य अथवा अनौचित्य मूल्यों की कसौटी पर ही तय होता है। वेबर द्वारा प्रतिपादित वर्गीकरण के बारे में एक और कमी की ओर इ"ाारा करते हुए **टालकट पारसन्स** (Talcott Parsons) ने उचित लिखा है कि, "क्रिया के चार स्वरूपों के अपने वर्गीकरण का निर्माण करते हुए वेबर ने समग्र सामाजिक व्यवस्था की संरचना के वि"लेषण को विकसित करने की उपेक्षा कर दी जबकि इस प्रकार के वर्गीकरण के लिए ऐसी तार्किक रूप से आव"यक पूर्वापेक्षा है।"

(5) मानव–अभिप्रेरण को जानने के उत्साह में वेबर इतना बढ़ गए कि उन्होंने मनोविज्ञान और समाजषास्त्र की विभाजन रेखा को ही मिटा डाला। उनके द्वारा निर्दे"ात तरीका मनोवि"लेषणवादियों व मनोचिकित्सकों द्वारा प्रयोग किया जाता है। सामाजिक कारकों की उपेक्षा करके समाजषास्त्र में उसका उपयोग भ्रमपूर्ण निष्कर्षों की ओर ही ले जाएगा।

यह सही है कि वेबर के वि"लेषण में कुछ कमियाँ हैं, परन्तु उन्होंने मानव अभिप्रेरण और सामाजिक क्रिया में कर्ता के अर्थ जैसे तत्त्वों पर जोर देकर समाज"ाास्त्रीय वि"लेषण में होने वाली कमी की ओर इ"ाारा किया है। यदि हम वेबर और दुर्खीम के दृष्टिकोण को मिला दें और एक उचित सन्तुलित दृष्टिकोण बना लें तो सामाजिक क्रियाओं के हमारे वि"लेषण निःसन्देह अधिक श्रेष्ठ, यथार्थ और वैज्ञानिक हो जाएँगे।

1.3 आदर्श प्रारूप

मैक्स वेबर के अनुसार समाजषास्त्र तथा प्राकृतिक विज्ञानों में मूल अन्तर यह है कि प्रत्येक सामाजिक क्रिया अर्थपूर्ण होती है और इसका कोई–न–कोई उद्दे"य अव"य ही होता है। साथ ही सामाजिक क्रिया अन्य व्यक्तियों की क्रियाओं द्वारा परिवर्तित तथा प्रभावित होती रहती है। इस दृष्टि से समाजषास्त्र

प्राकृतिक विज्ञानों से भिन्न है क्योंकि प्राकृतिक घटनाएँ न तो अर्थपूर्ण होती हैं और न ही अनिवार्य रूप से उनका कोई उद्दे"य होता है। समाजषास्त्र तथा अन्य सामाजिक विज्ञानों में अन्तर यह है कि अर्थपूर्ण बोध कराने वाला समाजषास्त्र व्यक्ति और उनकी क्रियाओं को आधारभूत इकाई मानता है या इन पर अणु के रूप में विचार करता है। इस विज्ञान के क्षेत्र में व्यक्ति सबसे महत्त्वपूर्ण और अर्थपूर्ण आचरण का एकमात्र वाहक है। यद्यपि समाजषास्त्र के लिए 'राज्य', 'समिति', 'सामन्तवाद' और इसी प्रकार की अन्य अवधारणाएँ कुछ वि"ोष प्रकार की मानवीय अन्तर्क्रियाओं को ही व्यक्त करती हैं, फिर भी समाजषास्त्र का प्रमुख उद्दे"य इन अवधारणाओं को समझी जा सकने वाली क्रियाओं में बदलना होना चाहिए। समाज"ाास्त्रीय नियमों तथा प्राकृतिक नियमों में प्रमुख अन्तर यह है कि प्राकृतिक विज्ञानों में तो सार्वजनिक नियमों को खोजा जा सकता है तथा नियमों की खोज करना स्वयं एक साध्य है, जबकि समाज"ाास्त्रीय नियम सार्वभौमिक नहीं हैं और न ही स्वयं एक साध्य क्योंकि इनका उद्दे"य तो सामाजिक व्यवहार को स्पष्ट रूप से समझना तथा ऐतिहासिक घटनाओं के अन्तर्सम्बन्धों की कारण सहित खोज करना है।

वेबर का पद्धति"ाास्त्रीय सिद्धान्त अन्य समाज"ाास्त्रियों तथा जर्मन विचारकों से भिन्न है। उन्होंने समाजषास्त्र में 'वर्स्टहीन' अर्थात् 'व्याख्यात्मक बोध की पद्धति' को नैतिक व सांस्कृतिक विज्ञानों का एक ऐसा दृष्टिकोण बताया जिसका सम्बन्ध व्यक्तियों से है, न कि अन्य प"ाुओं या जीवनहीन प्रकृति से। व्यक्ति अपने उद्दे"य को अन्तरवलोकन (Introspection) के द्वारा समझ सकता है तथा वह अन्य व्यक्तियों के व्यवहार से सम्बन्धित उद्दे"यों को भी समझ सकता है।

वेबर ने अपने पद्धति"ाास्त्र में तुलनात्मक पद्धति की महत्ता पर बल दिया है क्योंकि उनका कहना है इस पद्धति द्वारा समाज में कार्य–कारण सम्बन्धों की व्याख्या की जा सकती है। वेबर की यह मान्यता थी कि सामाजिक विज्ञानों में भी प्राकृतिक विज्ञानों की भाँति कार्य–कारण सम्बन्धों का अध्ययन एवं प्रद"ार्न सम्भव है। तुलनात्मक पद्धति को और अधिक वैज्ञानिक बनाने के लिए वेबर ने आद"ार्ा प्रारूप (जिसे स्वरूपात्मक प्रारूप अथवा वि"िाष्ट प्रारूप भी कहा जाता है) की अवधारणा को विकसित किया है। उनके अनुसार आद"ार्ा प्रारूप एक अवधारणात्मक निर्माण है जोकि अन्वेषणकर्ता को वास्तविक घटनाओं में समानताओं और भिन्नताओं को समझने में सहायता करता है। यह तुलनात्मक अध्ययनों के लिए एक मौलिक विधि है। आद"ार्ा प्रारूप का निर्माण यद्यपि वास्तविकता से किया जाता है फिर भी यह वास्तविकता के बराबर नहीं है और न ही वास्तविकता का औसत है। चूँकि सामाजिक विज्ञानों में सामाजिक घटनाओं की विविधता एवं अमूर्तता के कारण यथार्थता का अध्ययन हू–ब–हू रूप में नहीं किया जा सकता। फिर भी, इस यथार्थता के नजदीक पहुँचने का प्रयास अव"य किया जा सकता है। आद"ार्ा प्रारूप सामाजिक यथार्थता को काफी सीमा तक समझने में सहायक है। आद"ार्ा प्रारूप का सम्बन्ध किसी प्रकार के मूल्यांकन से भी नहीं है। यह तो केवल एक अवधारणात्मक यन्त्र है जो वास्तविकता को नजदीक से समझने में सहायता देता है।

वेबर के पद्धति"ाास्त्र में वि"िाष्ट ऐतिहासिक घटनाओं के अध्ययन में उनकी रुचि तथा सामान्यीकृत प्रकृति वाले तुलनात्मक समाजषास्त्र के विचार परस्पर सम्बन्धित हैं। आद"ार्ा प्रारूपों के आधार पर वह वि"िाष्ट ऐतिहासिक घटना के बारे में धारणा विकसित करते हैं। अपने तुलनात्मक अध्ययनों से भी वह इन्हीं आद"ार्ा प्रारूपों की सहायता लेने पर बल देते हैं। वास्तव में, सामान्यीकृत धारणाओं के आधार पर वेबर समाज को ही समझना चाहते थे तथा उन विषमताओं का पता लगाना चाहते थे जो कार्य–कारण सम्बन्धों की व्याख्या में सहायता कर सकती हैं।

1.3.1 आदर्श प्रारूप की अवधारणा का स्पष्टीकरण : अर्थ एवं परिभाषाएँ

जर्मनी के विद्वानों द्वारा अपनाए जाने वाले व्यक्तिवादी अथवा वि"िाष्टवादी दृष्टिकोण से भिन्न वेबर ने एक ऐसी कुंजी अथवा अवधारणात्मक यन्त्र का निर्माण किया जिसे आद"ार्ा प्रारूप कहते हैं। वेबर के

अनुसार आद"र्ा प्रारूप एक अवधारणात्मक यन्त्र (टूल) है जोकि अन्वेषणकर्ता को वास्तविक घटनाओं में समानताओं तथा असमानताओं को मापने में सहायता करता है। यह तुलनात्मक अध्ययनों के लिए एक मौलिक विधि है। वेबर ने आद"र्ा प्रारूप के निर्माण का विस्तृत वि"लेषण करते हुए इस बात पर बल दिया है कि यह एक वि"लेषणात्मक निर्माण है जिसमें किसी वास्तविक मानवीय घटना से एक–तरफा महत्त्व के अनुसार ली गई कुछ वि"ोषताएँ सम्मिलित होती हैं। उनके मतानुसार, "आद"र्ा प्रारूप प्रकल्पनात्मक अमूर्त स्थितियाँ (व्यक्ति, सामाजिक द"ाा, परिवर्तन, क्रान्ति, वर्ग इत्यादि) हैं जिनका निर्माण सामाजिक यथार्थता के आधार पर किया जाता है और जिनका नि"चित उपयोग तुलनात्मक है।" **जूलियन फ्रायण्ड** (Julien Freund) ने वेबर के आद"र्ा प्रारूप की व्याख्या इन शब्दों में की है, "आद"र्ा प्रारूप सब मिलाकर उन सभी अवधारणाओं का योग है जिनका निर्माण वि"ोष वि"ाुद्ध रूप से अनुसन्धान के उद्दे"य के अनुरूप किया जाता है।" **लुईस कोजर** (Lewis Coser) ने आद"र्ा प्रारूप को वह पद्धति बताया है जिसका प्रयोग तुलनात्मक अध्ययन हेतु किया जाता है।

आद"र्ा प्रारूप का उद्दे"य नैतिक आद"ार्ों का पता लगाना नहीं है और न ही इसका अभिप्राय केवल सांख्यिकीय औसत ही है। किसी वि"ोष क्षेत्र अथवा वि"ोष समय में औसत प्रोटेस्टैण्ट लोग आद"र्ा प्रारूप प्रोटेस्टैण्ट लोगों से पूर्णतः भिन्न हो सकते हैं क्योंकि आद"र्ा प्रारूप में व्यवहार के वि"िाष्ट (Typical) गुणों का विचारपूर्वक चयन किया जाता है। आद"र्ा प्रारूप का निर्माण यद्यपि वास्तविकता से किया जाता है, फिर भी यह वास्तविकता के बराबर नहीं है और न ही वास्तविकता के औसत का उदाहरण है। इसका सम्बन्ध किसी प्रकार के मूल्यांकन से भी नहीं है। वेबर की आद"र्ा प्रारूप की अवधारणा से यह स्पष्ट हो जाता है कि उनके अनुसार वास्तविक घटना के प्रारम्भिक चरणों में विद्वानों द्वारा पक्षपात हो सकता है क्योंकि विभिन्न विद्वान् भिन्न–भिन्न वि"ोषताएँ भिन्न–भिन्न बताकर एक ही वस्तु का भिन्न आद"र्ा प्रारूप प्रस्तुत कर सकते हैं।

सरल शब्दों में यह कहा जा सकता है कि आदर्श प्रारूप से अभिप्राय किसी घटना, वस्तु अथवा वर्ग विशेष की समस्त अनिवार्य विशेषताओं का सम्पूर्ण अथवा लगभग सम्पूर्ण रूप से चित्रण करने का प्रयास है। हो सकता है कि यह सभी विशेषताएँ यथार्थ रूप में किसी एक वास्तविक घटक या इकाई में उपस्थित न हों। इस धारणा के पीछे मूल मन्तव्य यह है कि यदि किसी घटक या इकाई को सम्पूर्ण रूप से समझना सम्भव नहीं है, तो कम से कम उस सम्पूर्णता के नजदीक जाने का प्रयास किया जाना चाहिए। वास्तव में, समाजशास्त्र में अभी तक किसी घटक या इकाई का सम्पूर्ण चित्रण करने के बारे में सन्देह प्रकट किया जाता रहा है। अनेक अन्य सामाजिक विज्ञानों, जैसे अर्थशास्त्र की कुछ अवधारणाओं में ऐसा सम्भव हो पाया है। उदाहरणार्थ 'पूर्ण स्पर्धा' 'पूर्ण बाजार' या 'स्थिर सन्तुलन' सम्पूर्णता के द्योतक तो हैं परन्तु इन्हें भी आदर्श प्रारूप की श्रेणी में ही रखा जाता है।

वेबर के अनेक आद"र्ा प्रारूप समष्टिता (Collectivitism) से सम्बन्धित हैं, न कि व्यक्तियों की सामाजिक क्रियाओं से, परन्तु इस समष्टिता में पाए जाने वाले सामाजिक सम्बन्ध हमे"ाा इस सम्भावना द्वारा निर्मित होते हैं कि कर्ता आ"ाकृत सामाजिक क्रियाएँ ही करेंगे। यह कभी भी सम्पूर्ण वास्तविकता के बराबर नहीं हैं तथा यह एक तार्किक दृष्टि से स्पष्ट समग्र होता है जो कि वास्तविकता में कभी नहीं पाया जाता, न ही पूर्ण आनुभविक विकल्प ही हो सकता है। आद"र्ा प्रारूप का निर्माण एक साध्य नहीं है अपितु साधन है। यह केवल एक अवधारणात्मक निर्माण है जो न ही ऐतिहासिक वास्तविकता है और न ही यथार्थ वास्तविकता।

आद"र्ा प्रारूप की प्रकृति प्राकल्पनात्मक होती है। यह उपकल्पनाओं के निर्माण में भी सहायता देता है तथा इसका प्रयोग वि"लेषण के लिए किया जा सकता है। आद"र्ा प्रारूपों की उपर्युक्त व्याख्या से यह

स्पष्ट है कि आद"ार्श प्रारूप आत्मगत अथवा चेतना सम्बन्धी (Subjective) होते हैं क्योंकि इनमें सामाजिक वैज्ञानिक घटना के उन्हीं तत्त्वों को सम्मिलित करता है जो कि उसकी दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। दो समाज"ाास्त्रियों द्वारा किसी सामाजिक घटना के बारे में बनाया गया आद"ार्श प्रारूप भिन्न–भिन्न हो सकता है क्योंकि दोनों विद्वान् घटना से सम्बन्धित तत्त्वों का चुनाव आत्मगत रूप से करते हैं। वेबर सामाजिक अध्ययनों को पूर्ण वस्तुनिष्ठ नहीं मानते हैं क्योंकि प्रारम्भिक अवस्थाओं में, वि"ोषकर समस्या के चयन तक, आत्मगत प्रभाव अत्यधिक होता है। दूसरे आद"ार्श प्रारूप परिवर्तन"ाील होते हैं क्योंकि जैसे–जैसे सामाजिक घटनाएँ परिवर्तित होती रहती हैं वैसे–वैसे इन प्रारूपों में भी परिवर्तन होता रहता है। वास्तव में, इस अवधारणात्मक यन्त्र द्वारा वेबर हमें मूर्तता से अमूर्तता की ओर ले जाकर सामाजिक घटनाओं के वैज्ञानिक दृष्टिकोण द्वारा अध्ययन पर बल देते हैं।

वेबर ने अपनी दो पुस्तकों 'द प्रोटेस्टैण्ट इथिक एण्ड द स्प्रिट ऑफ केपिटलिज्म' (1905) तथा 'द मेथडॉलाजी ऑफ द सोशल साईंसेज' (1949) में आदर्श प्रारूप की अवधारणा का उल्लेख किया है। प्रथम पुस्तक में उन्होंने 'प्रोटेस्टैण्ट इथिक' तथा 'पूँजीवाद' से सम्बन्धित आदर्श प्रारूपों का निर्माण किया है, जबकि अपनी द्वितीय पुस्तक में 'तार्किक व्यवहार' (नौकरशाही) और 'शुद्ध बाजार' के आदर्श–प्रारूप की रचना की है।

1.3.2 आदर्श प्रारूप के लक्षण

आद"ार्श प्रारूप के उपर्युक्त स्पष्टीकरण से इसके निम्नलिखित लक्षण प्रकट होते हैं–

(1) आद"ार्श प्रारूप एक ऐसी पद्धति है जो यथार्थता को समझने में सहायक होती है। यद्यपि यह सम्पूर्ण यथार्थता को समझने में सहायक नहीं है, तथापि यह अन्वेषणकर्ता को यथार्थता के नजदीक ले जाने में सहायता प्रदान करती है।

(2) आद"ार्श प्रारूप सामाजिक यथार्थता का तार्किक ब्ल्यू–प्रिण्ट है। इससे सम्पूर्ण सामाजिक यथार्थता का पता चलता है।

(3) आद"ार्श प्रारूप आत्मगत अथवा चेतना सम्बन्धी होते हैं क्योंकि इनमें सामाजिक वैज्ञानिक घटना के उन्हीं तत्त्वों को सम्मिलित करता है जो कि उसकी दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। उदाहरणार्थ, **किंग्सले डेविस** (Kingsley Davis) ने जाति व्यवस्था के आद"ार्श प्रारूप में सात लक्षणों को सम्मिलित किया है, जबकि **जी0 एस0 घुरिये** (G. S. Ghurye) तथा **एन0 के0 दत्त** (N. K. Dutta) ने छह को। इन तीनों विद्वानों ने जाति व्यवस्था के आद"ार्श प्रारूप में उन्हीं लक्षणों को सम्मिलित किया है जो उनकी दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं तथा जाति को अधिकाधिक नजदीक से समझने में सहायक है।

(4) आद"ार्श प्रारूप में न मूल्य होते हैं और न ही कोई नैतिक आद"ार्श। उपर्युक्त जाति व्यवस्था के उदाहरण में जाति को एक सामाजिक–सांस्कृतिक संस्था के रूप में देखा जाता है जिसमें अन्वेषणकर्ता के मूल्य अनुपस्थित होते हैं और उसके सामने इसका कोई अनुकरणीय नैतिक आद"ार्श भी नहीं होता।

(5) आद"ार्श प्रारूप की प्रकृति प्राकल्पनात्मक होती है। इसमें अन्वेषणकर्ता यथार्थता के बारे में अपनी प्राकल्पनाएँ बनाता है। यही कल्पनाएँ यथार्थता को उभार कर रखने में सहायक होती है।

(6) आद"ार्श प्रारूप एक अवधारणात्मक यन्त्र (टूल) है जो कि अन्वेषणकर्ता को वास्तविक घटनाओं में समानताओं तथा असमानताओं को मापने में सहायता करता है।

(7) आद"ार्श प्रारूप की प्रकृति परिवर्तन"ाील होती है। जैसे–जैसे सामाजिक घटनाएँ परिवर्तित होती रहती हैं, वैसे–वैसे इन प्रारूपों में भी परिवर्तन होता रहता है।

(8) आद"ार्श प्रारूप सामाजिक यथार्थता की स्पष्ट अभिव्यक्ति का एक साधन मात्र है।

1.3.3 आदर्श प्रारूप के पकार

मैक्स वेबर ने अमूर्तता के आधार पर निम्नलिखित तीन प्रकार के आद"र्ा प्रारूपों में भेद किया है–

(1) प्रथम प्रकार के आद"र्ा प्रारूप वे हैं जिनका आधार ऐतिहासिक वि"ाष्टताएँ (Historical particulars) है; जैसे–'पि"चमी नगर', 'प्रोटेस्टैण्ट इथिक', 'आधुनिक पूँजीवाद' इत्यादि; अर्थात् उन घटनाओं से सम्बन्धित हैं जो केवल किसी वि"ोष ऐतिहासिक युग अथवा वि"ोष सांस्कृतिक क्षेत्र में देखी जा सकती हैं। इस प्रकार के आद"र्ा प्रारूपों को 'ऐतिहासिक वि"ाष्टताओं पर बने आद"र्ा प्रारूप' कहा जाता है।

(2) दूसरा प्रकार उन आद"र्ा प्रारूपों का है जो **ऐतिहासिक वास्तविकता** (Historical reality) के अमूर्त तत्त्वों से सम्बन्धित हैं अथवा अनेक प्रकार के ऐतिहासिक या सांस्कृतिक पहलुओं से सम्बन्धित हैं; जैसे–'नौकर"ाही' और 'सामन्तवाद' इत्यादि। इन्हें सामाजिक यथार्थता से जुड़े आद"र्ा प्रारूप कहा जाता है।

(3) तीसरे प्रकार के आद"र्ा प्रारूप वे हैं जिन्हें **रेमण्ड ऐरों** वि"ोष प्रकार के व्यवहार की तार्किक अवधारणाएँ (Rationalizing reconstructions of a particular kind of behaviour) कहते हैं। वेबर के अनुसार आर्थिक सिद्धान्त की सभी प्रस्तावनाएँ इस श्रेणी के उदाहरण हैं। इस प्रकार के आद"र्ा प्रारूपों को विवेकपूर्ण व्यवहार से जुड़े आद"र्ा प्रारूप भी कहा जाता है।

1.3.4 आदर्श प्रारूप का महत्त्व

वेबर द्वारा दी गई आद"र्ा प्रारूप की अवधारणा सामाजिक घटनाओं के अध्ययन में वि"ोष महत्त्व रखती है क्योंकि वेबर का कहना है कि कोई भी वैज्ञानिक व्यवस्था सम्पूर्ण यथार्थता अथवा वास्तविकता का अध्ययन नहीं कर सकती और न ही कोई अवधारणात्मक प्रारूप वि"ोष घटनाओं की उसकी अनगिनत विभिन्नताओं के कारण पूर्ण वास्तविकता का पता लगा सकता है। सभी विज्ञानों में चयन, निद"ान तथा अमूर्तता का सहारा लिया जाता है। इसलिए आद"र्ा प्रारूप सामाजिक विज्ञानों के लिए कोई नई बात नहीं मानी जानी चाहिए अपितु वास्तविकता को जहाँ तक हो सके समझने का एक प्रयास–मात्र समझा जाना चाहिए। यदि हम वेबर के इस तर्क को स्वीकार कर लें कि अनुसन्धान के प्रारम्भिक चरणों में सामाजिक वैज्ञानिक पूर्ण रूप से वस्तुनिष्ठ नहीं हो सकता और न ही सामाजिक वास्तविकता को पूर्ण रूप से समझा जा सकता है तो आद"र्ा प्रारूप की उनकी अवधारणा सामाजिक वैज्ञानिकों की इस उलझन को समाप्त कर देती है कि उन्हें किसी सामान्य घटना का अध्ययन करना चाहिए अथवा वि"ाष्ट का।

1.3.5 आदर्श प्रारूप की अवधारणा की आलोचना

वेबर की आद"र्ा प्रारूप की अवधारणा की विविध प्रकार से आलोचना की गई है–**प्रथम**, यदि हम वेबर के इस तर्क को स्वीकार कर लें, तो समाजषास्त्र में सार्वभौमिक नियमों का निर्माण करना ही कठिन हो जाएगा, क्योंकि प्रत्येक वैज्ञानिक किसी घटना के उन तत्त्वों की ओर ध्यान केन्द्रित करेगा जिसे वह महत्त्वपूर्ण मानता है। **दूसरे**, यह अवधारणा केवल तुलनात्मक अध्ययनों में ही सहायता दे सकती है क्योंकि यदि किसी घटना का आद"र्ा प्रारूप हमारे सामने है तो हम इसको आनुभविक परिस्थिति में यह देखने के लिए प्रयुक्त कर सकते हैं कि विभिन्न परिस्थितियों में क्या भिन्नताएँ हैं, परन्तु अन्य प्रकार के अध्ययन में इसका प्रयोग अधिक नहीं किया जा सकता। **तीसरे**, यदि प्रत्येक घटना का अध्ययन आद"र्ा प्रारूपों से करने लगे तो आनुभविक अध्ययनों की महत्ता ही समाप्त हो जाएगी।

उपर्युक्त आलोचनाओं के बावजूद वेबर की आद"र्ा प्रारूप की अवधारणा समाज में एक वि"ोष स्थान रखती है जिसे केवल वेबर के कार्यों तक ही सीमित नहीं किया जा सकता, अपितु आज अनेक विद्वान् अपने

अध्ययनों में इसे अपना रहे हैं। वेबर की अधिकारीतन्त्र तथा सत्ता की आद"र्ा प्रारूप की अवधारणाएँ आज भी समाज"ाास्त्रीय अवधारणाओं में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं। वास्तव में, आद"र्ा प्रारूप की अवधारणा महत्त्वपूर्ण होते हुए भी सीमित क्षेत्र में ही उपयोगी है।

1.4 सारांश

मैक्स बेवर ने समाजशास्त्र को सामाजिक क्रिया का अर्थपूर्ण बोध कराने वाला विज्ञान माना है। अतः सामाजिक क्रिया समाजशास्त्र की एक प्रमुख अवधारणा है। किसी क्रिया को सामाजिक क्रिया तभी कहा जा सकता है, जबकि उस क्रिया को करने वाले व्यक्ति या व्यक्तियों के द्वारा लगाए गए सहानुभूतिमूलक अथवा आत्मपरक अर्थ के कारण यह क्रिया दूसरे व्यक्तियों के व्यवहार द्वारा प्रभावित हो और उसी के अनुसार उसकी गतिविधि निर्धारित हो। बेवर ने सामाजिक क्रियाओं को चार प्रमुख श्रेणियों में विभाजित किया है। प्राचीनकाल से चली आ रही परम्पराओं से प्रभावित व्यवहार से सम्बन्धित क्रियाओं को परम्परागत सामाजिक क्रियाएँ; व्यक्ति की भावात्मक दशाओं एवं संवेगों से सम्बन्धित क्रियाओं को भावात्मक सामाजिक क्रियाएँ; मूल्यों से सम्बन्धित क्रियाओं को मूल्यात्मक सामाजिक क्रियाएँ तथा साध्य एवं साधनों को सामने रखकर की जाने वाली क्रियाएँ बौद्धिक सामाजिक क्रियाएँ कहलाती हैं। बेवर का समाजशास्त्र को एक अन्य योगदान आदर्श प्रारूप की अवधारणा को प्रतिपादित करना माना जाता है। यह एक प्रकार से पद्धतिशास्त्रीय यन्त्र है जो सामाजिक यथार्थता को समझने में सहायक होता है। ऐतिहासिक विशिष्टताओं, ऐतिहासिक वास्तविकता तथा विवेकपूर्ण व्यवहार के आधार पर आदर्श प्रारूप को तीन प्रकारों में विभाजित किया जाता है। यह अवधारणा शोधकर्ता को यथार्थता के काफी नजदीक ले जाने में सहायता प्रदान करती है। बेवर ने स्वयं अनेक आदर्श प्रारूपों की रचना कर वैज्ञानिक अध्ययन किए हैं।

1.5 शब्दावली

सामाजिक क्रिया – किसी क्रिया को सामाजिक क्रिया तभी कहा जा सकता है, जबकि उस क्रिया को करने वाले व्यक्ति या व्यक्तियों के द्वारा लगाए गए सहानुभूतिमूलक अथवा आत्मपरक अर्थ के कारण यह क्रिया दूसरे व्यक्तियों के व्यवहार द्वारा प्रभावित हो और उसी के अनुसार उसकी गतिविधि निर्धारित हो।

आदर्श प्रारूप – आदर्श प्रारूप से अभिप्राय किसी घटना, वस्तु अथवा वर्ग विशेष की समस्त अनिवार्य विशेषताओं का सम्पूर्ण अथवा लगभग सम्पूर्ण रूप से चित्रण करने का प्रयास है।

परम्परागत क्रिया – प्राचीनकाल से चली आ रही परम्पराओं से प्रभावित व्यवहार से सम्बन्धित क्रियाओं को परम्परागत क्रियाएँ कहते हैं।

भावात्मक क्रिया – व्यक्ति की भावात्मक दशाओं एवं संवेगों से सम्बन्धित क्रियाओं को भावात्मक क्रियाएँ कहते हैं।

मूल्यात्मक क्रिया – मूल्यों से सम्बन्धित क्रियाओं को मूल्यात्मक क्रियाएँ कहते हैं।

बौद्धिक क्रिया – साध्य एवं साधनों को सामने रखकर की जाने वाली क्रियाएँ बौद्धिक क्रियाएँ कहलाती हैं।

1.6 अभ्यास प्रश्न

1. सामाजिक क्रिया किसे कहते हैं? वेबर ने सामाजिक क्रियाओं के कितने प्रकार बताए हैं? संक्षेप में समझाइए।
2. बेवर के सामाजिक क्रिया के सिद्धान्त की समीक्षा कीजिए।
3. बेवर की सामाजिक क्रिया की अवधारणा की व्याख्या कीजिए।
4. आदर्श प्रारूप की अवधारणा स्पष्ट कीजिए तथा इसके प्रमुख लक्षण बताइए।
5. आदर्श प्रारूप से आप क्या समझते हैं? आदर्श प्रारूप के प्रमुख प्रकार समझाइए।
6. आदर्श प्रारूप क्या है? समाजशास्त्र में आदर्श प्रारूप का महत्त्व स्पष्ट कीजिए।
7. वेबर द्वारा प्रतिपादित आदर्श प्रारूप की अवधारणा की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिए।
8. बेवर की सामाजिक क्रिया एवं आदर्श प्रारूप की अवधारणाएँ स्पष्ट कीजिए।

1.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

G. S. Ghurye (1950), **Caste, Class and Occupation**, Popular Book Depot, Bombay.

Julien Freund (1964), **The Sociology of Max Weber**, Pantheon Books, New York.

Kingsley Davis (1949), **Human Society**, The Macmillan Company, New York.

L. A. Coser and B. Rosenberg (1969), **Sociological Theory : : A Book of Readings**, The Macmillan Company, New York.

M. Haralambos and R. M. Heald (1991), **Sociology : Themes and Perspectives**, Oxford University Press, Delhi.

Max Weber (1922), **Economy and Society**, University of California Press, New York.

Max Weber (1947), **The Theory of Social and Economic Organization** (Edited by Talcott Parsons), Oxford University Press, New York.

Max Weber (1949), **The Methodology of Social Sciences**, The Free Press, New York.

N. K. Dutta (1931), **Origin and Growth of Caste in India**, Trench, Trubner and Company, Ltd., London.

Raymond Aron (1967), **Main Currents in Sociological Thought**, Vol. 2 : Durkheim, Pareto, Weber, Basic Books, New York.

Talcott Parsons (1963) On the Concept of Political Power in **Proceedings of the American Philosophical Society**, Vol. 107, No. 3 (June 19, 1963), pp. 232-262.

इकाई 2 सत्ता के स्वरूप : चमत्कारिक, परम्परागत एवं तार्किक
Forms of Authority: Charismatic, Traditional & Rational

इकाई की रूपरेखा

2.0 2.0 उद्देश्य
2.1 प्रस्तावना
2.2 शक्ति की अवधारणा का स्पष्टीकरण : अर्थ एवं परिभाषाएँ
2.3 वैध शक्ति के रूप में सत्ता की अवधारणा का स्पष्टीकरण : अर्थ एवं परिभाषाएँ
2.4 सत्ता के विभिन्न प्रकार
2.5 चमत्कारिक, तार्किक तथा परम्परागत सत्ता में भेद
2.6 सत्ता की अवधारणा की आलाचना
2.7 सारांश
2.8 शब्दावली
2.9 अभ्यास प्रश्न
2.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

2.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में मैक्स वेबर की सत्ता की अवधारणा एवं इसके स्वरूपों को समझाने का प्रयास किया गया है। चूँकि सत्ता वैध शक्ति है, इसलिए सत्ता की अवधारणा भी स्पष्ट की गई है। आशा है कि इस इकाई को पढ़ने के बाद, आप :

- शक्ति एवं सत्ता की अवधारणाओं का स्पष्टीकरण कर पाएँगे तथा इन दोनों में अन्तर समझ सकेंगे;
- सत्ता के तीनों स्वरूपों की व्याख्या कर पाएँगे;
- सत्ता के तीनों स्वरूपों में पाए जाने वाले भेद को स्पष्ट कर पाएँगे; तथा
- सत्ता की अवधारणा की आलोचनात्मक समीक्षा कर पाएँगे।

2.1 प्रस्तावना

मैक्स वेबर ने सामाजिक व्यवस्था को सामाजिक क्रियाओं की व्यवस्था के रूप में देखा है। प्रत्येक व्यवस्था में नियन्त्रण एक आव"यक अंग के रूप में संलग्न होता है। व्यवस्था के नियमों, पद्धतियों, कार्यविधियों एवं लक्ष्यों के अनुरूप ही सदस्य व्यवहार करते रहें और यदि कहीं कोई उल्लंघन हो तो उसका प्रतिकार किया जा सके, यही नियन्त्रण का उद्दे"य होता है। वेबर ने सामाजिक व्यवस्था के इस पक्ष का गहन वि"लेषण किया है। इस वि"लेषण में 'प्रभाव' (Influence), '"क्ति' (Power), 'सत्ता' (Authority), 'औचित्यता' (Legitimacy) तथा 'प्रभुता' (Dominance) इत्यादि अवधारणाओं का प्रयोग किया गया है।

वास्तव में, वेबर ने समाज के इस पक्ष का वि"लेषण करके राजनीतिक समाजषास्त्र की नींव डाली और समाज के शक्ति आयाम को समझाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

प्रभाव, शक्ति, सत्ता अथवा प्रभुता ऐसी सामूहिक स्थिति (Group situation) से सम्बन्धित हैं जहाँ कोई व्यक्ति या कुछ नि"चित व्यक्ति आदे"ा अथवा आज्ञा देने की स्थिति में होते हैं और अन्य व्यक्ति उन आज्ञाओं के अनुरूप आचरण के लिए अपेक्षित होते हैं। इस भाँति शक्ति अथवा सत्ता के सम्बन्धों के दो सिरे हैं–**एक**, आदे"ा देने वाला और **दूसरा**, आदे"ा का पालन करने वाला। दूसरे शब्दों में, हम कह सकते हैं कि ये अधिकारी एवं अधीन के बीच, नेता एवं अनुयायी के बीच, स्वामी एवं सेवक के बीच सम्बन्धों को प्रकट करते हैं। इसलिए जहाँ एक ओर प्रभाव, शक्ति एवं सत्ता जैसे शब्दों का प्रयोग ऐसे सम्बन्धों को समझने के लिए किया जाता है, वहाँ इनके दूसरे पहलू आज्ञाकारिता (Obedience), निष्ठा (Loyalty) तथा अनुगमन (Follow) का भी प्रयोग करना आव"यक है। वेबर की जिज्ञासा बड़ी स्वाभाविक थी कि कोई और समूह किसी अन्य व्यक्ति और समूह को आदे"ा देने की स्थिति में क्यों और कैसे हैं? ये अन्य व्यक्ति और समूह इन आदे"ाों का पालन क्यों करते हैं? समाज में शक्ति अथवा सत्ता की प्रकृति क्या है और उसके प्रमुख आधार क्या हैं? वेबर ने समाज की इस व्यवस्था को आदे"ाात्मक समन्वयन (Imperative co-ordination) का नाम दिया। आदे"ाात्मक समन्वयन से वेबर का आ"ाय "उस सम्भावना (Probability) से है जिसमें कोई नि"चित और स्पष्ट आदे"ा व्यक्तियों के एक नि"चित समूह द्वारा पालन किया जाएगा।" वेबर ने इस प्रष्न को उठाया है कि लोग आदे"ाों का पालन क्यों करते हैं? इस आज्ञापालन या अनुसरण के प्रमुख अभिप्रेरक कौन से हैं? वेबर का कथन था कि आज्ञाकारिता के पीछे अनेक अभिप्रेरक हो सकते हैं। आज्ञापालन की आदत से लेकर सोच–विचार कर कुछ लाभ उठाने के प्रयोजन तक अनेक प्रेरक व्यक्ति को आज्ञाकारी बनाते हैं। साधारण विचारकों की राय में आज्ञापालन प्रायः दो कारणों से किया जाता है–**एक**, किसी प्रकार के आतंकबोध का भय अर्थात् यदि आज्ञापालन नहीं किया तो दण्ड मिलेगा या कोई हानि हो जाएगी तथा **दूसरे**, कोई लालच या लाभ उठाने की सम्भावना। परन्तु वेबर का कहना है कि आदे"ाात्मक सम्बन्ध में आज्ञापालन में एक अन्य तत्त्व स्वेच्छा का भी है। सत्ता में आदेशात्मक नियन्त्रण हमे"ाा स्वेच्छा पर आधारित होता है न कि बाध्यता पर। आज्ञाकारिता या आदे"ाों में निष्ठा दो बातों पर आधारित होती है कि व्यक्ति या तो अपने बाह्य हित के लिए उन आदे"ाों का पालन करता है या उसके मन में उन आदे"ाों की यथार्थ स्वीकृति होती है।

वेबर ने आज्ञाकारिता के पीछे चार प्रमुख प्रेरकों का वर्णन किया है–**एक**, आज्ञापालन किसी भौतिक हित या लाभ के लिए किया जा सकता है, **दो**, प्रथा के आधार पर भी आज्ञापालन किया जाता है, क्योंकि प्रथाओं के अनुसार आदे"ा देने वाला व्यक्ति श्रेष्ठता की स्थिति में होता है; **तीन**, भावनाएँ भी आज्ञाकारिता के पीछे प्रेरक होती हैं। यदि मनुष्य किसी का सम्मान करता है, उसके प्रति आकर्षित होता है या उससे प्रेम करता है, तो वह उस व्यक्ति के आदे"ाों की अवज्ञा नहीं कर सकता; तथा **चार**, आज्ञाकारिता के पीछे वह मूल्य या आद"ार्ा भी हो सकता है जिसमें आज्ञापालक की निष्ठा या आस्था निहित है। वेबर का कहना है कि ये उपर्युक्त प्रेरक न तो अलग–अलग और न सम्मिलित रूप से आदे"ाात्मक व्यवस्था के स्पष्टीकरण में पर्याप्त हैं। उनका कहना है कि उसके अतिरिक्त सामान्यतः एक और तत्त्व है जो आदे"ाात्मक सम्बन्धों की व्याख्या करता है। वह तत्त्व है आदे"ा की वैधता में वि"वास।

वास्तव में, वेबर ने आदे"ाात्मक व्यवस्था के सबसे महत्त्वपूर्ण आधार की ओर इ"ाारा किया। इसे उन्होंने वैधता (Legitimacy) का नाम दिया है। वैधता से आ"ाय है कि आज्ञापालन करने वाले अपने में यह वि"वास रखते हैं कि उन्हें मिलने वाले आदे"ा उचित हैं, न्यायपूर्ण हैं; उनके द्वारा आदे"ाों का पालन किया जाना ही उचित है, तर्कसंगत है एवं न्यायपूर्ण है। यही कारण है कि कोई भी व्यवस्था इस बात से ही

निश्चित नहीं रहती है कि प्रथा, आदर्श या भावना के आधार पर उसकी सत्ता की निरन्तरता बनी रहेगी। प्रत्येक संगठन या व्यवस्था यह कोशिश करती है कि अपने सदस्यों में आदेशात्मक नियन्त्रण के प्रति वैधता की भावना को पैदा करे, उसे पनपाए और दृढ़ बनाए।

वेबर ने वैधता के तीन आधार बताए हैं–तार्किकता, परम्परा एवं भावनाएँ। घरों में माता–पिता की सत्ता की वैधता प्रथा के आधार पर टिकी होती है। स्कूल में शिक्षकों की सत्ता कानूनी तार्किकता के आधार पर होती है। किसी धर्मगुरु की सत्ता भावनाओं या निष्ठा के आधार होती है। वैधता के ये स्वरूप शक्ति या सत्ता को समझने के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं क्योंकि जिस प्रकार की वैधता का दावा होगा, उसी के अनुरूप आज्ञाकारिता का स्वरूप भी होगा; उसी के अनुरूप प्रशासनिक स्टाफ की नियुक्ति की जाएगी जिसका उद्देश्य आज्ञाकारिता को बनाए रखना होगा तथा इस वैधता के स्वरूप के अनुसार ही सत्ता का क्रियान्वयन और उसके परिणाम होंगे। वेबर के विश्लेषण में सत्ता को समझने से पूर्व वैधता की इस अवधारणा को समझना आवश्यक है क्योंकि वेबर ने सत्ता के जिन स्वरूपों का विश्लेषण किया है वे सभी वैध सत्ताएँ ही हैं। इस सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि में अब वेबर के शक्ति और सत्ता के सम्बन्ध में विचारों को स्पष्ट किया जा सकता है।

2.2 शक्ति की अवधारणा का स्पष्टीकरण : अर्थ एवं परिभाषाएँ

व्यक्ति समाज में अकेले नहीं रहते अपितु एक–दूसरे के साथ रहते हैं। समाज में रहते हुए उनके लिए समाज की राजनीति से सम्बन्ध रखना अनिवार्य नहीं है, न ही राजनीतिक जीवन में सक्रिय रूप से भाग लेना ही अनिवार्य है। परन्तु एक साथ रहने के कारण उनके सम्बन्धों में एक–दूसरे का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जो अन्य व्यक्तियों को अपने किसी गुण अथवा किसी अन्य आधार के कारण प्रभावित करते हैं। शक्ति तथा सत्ता को समझने के लिए पहले प्रभाव (Influence) को समझना जरूरी है क्योंकि शक्ति प्रभाव का ही एक प्रकार है।

समाज में निरन्तर संघर्ष होते रहते हैं क्योंकि आज विभिन्नता तथा असहमति व्यक्ति के सामाजिक जीवन की अनिवार्य दशाएँ बन चुकी हैं। संघर्षों का प्रमुख कारण समाज में सीमित साधनों का पाया जाना है। 'साधन' शब्द का अभिप्राय वह माध्यम है जिसके द्वारा कोई व्यक्ति दूसरे व्यक्तियों के व्यवहार को प्रभावित कर सकता है। **हैराल्ड लैसवैल** (Harold Lasswell) के अनुसार प्रभाव से अभिप्राय दूसरे व्यक्तियों की नीतियों को प्रभावित करना है। प्रभाव किसी व्यक्ति की अपनी इच्छानुसार दूसरे व्यक्तियों को बदलने की क्षमता है। वेबर ने लिखा है कि प्रत्येक प्रभाव शक्ति या सत्ता नहीं कहा जा सकता। उदाहरण के लिए–एक व्यक्ति जो किसी वस्तु का एकाधिकारी स्वामित्व रखता हो, वह इसके विनिमय में रुचि रखने वाले पक्ष को अपनी शर्तों पर सौदा करने के लिए बाध्य कर सकता है, जबकि उसके पास ऐसा करने की कोई शक्ति अथवा सत्ता नहीं है। इसी प्रकार, किसी विशेष प्रकार के गुण या श्रेष्ठता से भी कोई व्यक्ति प्रभावकारी स्थिति में आ जाता है; जैसे–शारीरिक सौन्दर्य या खेल में कुशलता या बौद्धिक प्रतिभा।

कुछ परिस्थितियाँ ऐसी होती हैं जिसमें अनुपालन की सम्भावना बहुत कम होती है तथा ऐसी परिस्थिति में कर्ता का अन्य व्यक्तियों से अपनी बात मनवाने के लिए काफी प्रयास करना पड़ता है। यदि इस प्रयास में वह बल का प्रयोग करता है अथवा प्रयोग करने की धमकी देता है तो उसे शक्ति कहा जाता है। इस प्रकार, शक्ति प्रभाव का ही एक विशेष प्रकार है। शक्ति किसी व्यक्ति की नकारात्मक अथवा सकारात्मक अनुमोदन (Sanction) द्वारा दूसरे व्यक्तियों के व्यवहार को प्रभावित करने की क्षमता है। सकारात्मक अनुमोदन पुरस्कार के रूप में हो सकता है, जबकि नकारात्मक अनुमोदन किसी वस्तु से वंचित

करने, नुकसान पहुँचाने या दण्ड देने की धमकी के रूप में हो सकता है। क्योंकि शक्ति दूसरे व्यक्तियों के व्यवहार को प्रभावित करने की क्षमता है, इसलिए यह एक सापेक्षिक वि"ोषता है, न कि व्यक्तिगत वि"ोषता। वेबर ने '"ाक्ति' को परिभाषित करते हुए लिखा है कि, '"ाक्ति वह सम्भावना है जिसमें एक व्यक्ति ऐसे सामाजिक सम्बन्ध में होता है कि वह प्रतिरोध के बावजूद भी अपनी इच्छा को मनवा सके, चाहे इस सम्भावना का आधार कुछ भी हो।"

शक्ति का प्रयोग प्रत्यक्ष एवं परोक्ष दोनों रूपों में किया जा सकता है। परन्तु सभी परिस्थितियों में शक्ति के दावे (Assertion) के लिए लगभग एक जैसे दाँव–पेच ही अपनाए जाते हैं। एक व्यक्ति अपनी इच्छा के अनुकूल अन्य व्यक्तियों से अनुपालन या आज्ञाकारिता के लिए मूल रूप से तीन प्रकार के दबावों का प्रयोग कर सकता है–**प्रथम**, व्यक्ति अन्यों से अनुपालन के लिए किसी प्रकार के लाभ, वांछनीय वस्तु अथवा सामाजिक द"ाा का प्रलोभन दे सकता है। एक माता द्वारा खरीददारी के समय बच्चे को अच्छे व्यवहार के लिए चाकलेट देना, एक मिल–मालिक द्वारा श्रमिकों को अनुपस्थित न रहने तथा उत्पादन बढ़ाने के लिए बोनस देना, अथवा किसी सफल राजनीतिक नेता द्वारा अपने समर्थकों को अच्छे पदों पर नियुक्ति में सहायता देना आदि अनुपालन के लिए प्रयुक्त इस प्रकार के कुछ उदाहरण हैं। **द्वितीय**, व्यक्ति अन्यों से अनुपालन के लिए किसी प्रकार की हानि या दण्ड–भय की धमकी दे सकता है। उदाहरणार्थ–नागरिक जानते हैं कि वैधानिक नियमों का उल्लंघन करने पर अथवा एक ताना"ाही शासन में ताना"ाह का विरोध करने पर उन्हें कैद की सजा हो सकती है। **तृतीय**, व्यक्ति अनुपालन के लिए सूचना अथवा लोगों के मूल्यों, मनोवृत्तियों व भावों को कार्य साधन बना सकता है। उदाहरणार्थ–कुछ एक पत्रकारों को सबल इसलिए माना जाता है कि उनके द्वारा लिखित लेख व प्रस्तुत सूचना वि"वसनीय होती है। एक राजनीतिक नेता जनता पर शासन बनाए रखने के लिए लोगों की मनोवृत्तियों व भावों को कार्य साधन बना सकता है। वास्तव में, व्यक्ति किस सीमा तक अन्य लोगों को अपनी शक्ति द्वारा प्रभावित कर सकता है, यह इस बात पर निर्भर करता है कि कितनी दक्षता से वह इन दबावों का प्रयोग करता है।

शक्ति के दो प्रमुख लक्षण हैं–(1) यह **सम्बन्धमूलक** (Relational) होती है तथा (2) यह **स्थितिपरक** (Situational) होती है। शक्ति, यद्यपि व्यक्ति की किसी अन्य को प्रभावित करने की क्षमता है, फिर भी यह सरल व्यक्तिगत लक्षण न होकर मूल रूप से सम्बन्धमूलक है। शक्ति सदैव दो अथवा दो से अधिक कर्ताओं के बीच क्रिया"ाील होती है। यदि एक कर्ता शक्ति रखते हुए भी दूसरों को प्रभावित नहीं कर पाता है, तो उसकी शक्ति व्यर्थ हो जाती है। यह व्यवहार की तुलना एवं मूल्यांकन का आधार है। उदाहरणार्थ–एक धनवान के पास अपार धन एवं एक साहित्यकार के पास अपार प्रतिभा है। यदि हम यह पूछें कि इन दोनों में कौन अधिक शक्ति"ाली या सबल है, तो उत्तर देना कठिन हो जाएगा क्योंकि ऐसी स्थिति में दोनों के गुणों में असमानता होने के कारण किसी को भी शक्ति"ाली नहीं कहा जा सकता। इसका कारण यह है कि दोनों में शक्ति व्यक्तिगत वि"ोषता तो है परन्तु उनकी प्रभावित करने की क्षमता का पता नहीं है। धनवान व्यक्ति को हम उस स्थिति में शक्ति"ाली कहेंगे जबकि उसका धन साहित्यकार के लेखन को प्रभावित करेगा और साहित्यकार को शक्ति"ाली तब कहा जाएगा जबकि उसकी रचनाएँ धनवान को प्रभावित करेंगी।

शक्ति स्थितिपरक होती है अर्थात् इसे कर्ता किसी वि"ोष स्थिति में ही प्रयुक्त कर सकता है। उदाहरणार्थ–एक न्यायाधी"ा किसी मुकदमे में अपनी शक्ति का प्रयोग केवल न्यायालय के भीतर सम्बन्धित पक्षों पर ही कर सकता है। इसी प्रकार, लोकसभा का अध्यक्ष संसद सदस्यों पर अपनी शक्ति का प्रयोग सदन में ही कर सकता है और सदन के बाहर संसद सदस्यों पर उसकी शक्ति निष्क्रिय होती है। अतः यद्यपि शक्ति सम्बन्धमूलक है, फिर भी इसमें स्थितियाँ भी महत्त्वपूर्ण होती हैं।

शक्ति के प्रयोग में एक अन्य कारक महत्त्वपूर्ण है जिसे हम आ"ाय (Intention) कहते हैं। **दहल** (Dahl) ने अपनी परिभाषा में शक्ति द्वारा प्रभावित होने वाले व्यक्ति के आ"ाय को महत्त्व दिया है। 'अ' की 'ब' पर शक्ति उसी सीमा तक कही जाएगी जबकि 'अ' 'ब' से उसके आ"ाय के विरोध के बावजूद अपनी बात को मनवाने में सफल हो जाता है। परन्तु इस तर्क को स्वीकार करने में सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि शक्ति द्वारा प्रभावित होने वाले व्यक्ति (उदाहरणार्थ 'ब') के आ"ाय का पता लगाना कठिन है। केवल कुछ–एक व्यक्तिगत सम्पर्क की स्थितियों में ही ऐसा सम्भव हो सकता है। उदाहरणार्थ–एक छात्र तो यह स्वीकार कर सकता है कि उसके व्यवहार को परिवर्तित करने (अर्थात् उसके आ"ाय से अन्य प्रकार का व्यवहार करने) में उसके प्राध्यापक का महत्त्वपूर्ण योगदान है परन्तु अन्य स्थितियों, वि"ोष रूप से राजनीतिक स्थितियों, में यह इतना सरल नहीं है। उदाहरणार्थ–किसी भी कारखाने के प्रबन्धक यह स्वीकार नहीं करेंगे कि उनकी नीति ट्रेड यूनियन के प्रतिकूल है जो कि उनकी यथार्थ नीति से भिन्न है। इस प्रकार, कोई भी राष्ट्र यह स्वीकार नहीं करेगा कि उसके कार्य या नीति किसी शक्ति"ाली राष्ट्र के प्रभाव के कारण परिवर्तित हो रही है।

यदि 'आ"ाय' शब्द का प्रयोग शक्ति को प्रयुक्त करने वाले व्यक्ति के सन्दर्भ से किया जाता है, तो आ"ाय सम्बन्धी उपुर्यक्त समस्या को काफी सीमा तक कम किया जा सकता है। इसके लिए हमें शक्ति की परिभाषा दहल की परिभाषा से भिन्न शब्दों में देनी होगी। यह कहा जा सकता है कि 'अ' के पास 'ब' पर शक्ति उसी स्थिति में होगी जबकि 'अ' 'ब' से अपने आ"ाय के अनुरूप कार्य ले सके। अन्य शब्दों में, हमें प्रभावित होने वाले व्यक्ति के आ"ाय के स्थान पर प्रभावित करने वाले (या शक्ति का प्रयोग करने वाले) व्यक्ति के आ"ाय को अधिक महत्त्व देना होगा। इसमें हमें यह देखने की कोई आव"यकता नहीं कि प्रभावित होने वाला व्यक्ति क्या स्वीकार करता है या क्या स्वीकार नहीं करता, अपितु हमें केवल यह देखना होगा कि प्रभावित करने वाले व्यक्ति का क्या आ"ाय है और प्रभावित होने वाला उसी आ"ाय के अनुरूप प्रभावित हुआ है या नहीं। परन्तु यह दृष्टिकोण भी प्रथम दृष्टिकोण की तरह समस्याहीन नहीं है। इसमें यदि शक्ति"ाली (उदाहरणार्थ–'अ') के आ"ाय का प्रभावित होने वाले (उदाहरणार्थ–'ब') को पता नहीं है, परन्तु फिर भी वह प्रभावित हो रहा है तो इस स्थिति में हमारे लिए यह कह पाना कठिन हो जाएगा कि 'अ' 'ब' पर शक्ति का प्रयोग कर रहा है। कुछ भी हो, शक्ति की परिभाषा तथा इसके प्रयोग के आ"ाय के महत्त्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

किसी भी कर्ता के पास राजनीतिक शक्ति स्थायी रूप से नहीं रहती। **पारसन्स** (Parsons) ने शक्ति की तुलना मुद्रा से की है। जिस प्रकार मुद्रा में परिचालन होता है, ठीक उसी प्रकार शक्ति में भी परिचालन होता है। उन्होंने शक्ति को समझने के लिए शून्य–योग (Zero-sum) संप्रत्यय को विकसित किया है अर्थात् यदि किसी के पास सकारात्मक शक्ति है तो उससे प्रभावित होने वालों के पास नकारात्मक शक्ति है और इन दोनों का योग शून्य होगा। उन्होंने स्रोतों के आधार पर शक्ति को तीन प्रकार का बताया है–"ाारीरिक शक्ति, भौतिक शक्ति तथा प्रतीकात्मक शक्ति। वास्तव में, शक्ति के अनेक स्रोत (यथा बल, सम्मान, धन–दौलत, व्यक्तिगत आकर्षण, प्रेम, प्रभाव, सत्ता व संगठन आदि) हो सकते हैं।

2.3 वैध शक्ति के रूप में सत्ता की अवधारणा का स्पष्टीकरण : अर्थ एवं परिभाषाएँ

राजनीतिक शक्ति समाज में स्थायित्व बनाए रखने, इसका संचालन करने तथा समाज में निरन्तरता बनाए रखने में महत्त्वपूर्ण योगदान देती है। कुछ विद्वानों का कहना है कि राजनीतिक शक्ति में बल प्रयोग

किया जाता है अथवा प्रयोग करने की धमकी दी जाती है जिससे व्यक्तियों को अनुपालन करने के लिए बाध्य किया जाता है तथा इसी से समाज में स्थायित्व आता है, परन्तु वास्तव में, ऐसा नहीं है। समाज में स्थायित्व इसलिए नहीं आता कि राजनीतिक शक्ति में बल प्रयोग किया जाता है अपितु इसलिए आता है कि शक्ति को वैधता मजबूत करती है। जब राजनीतिक शक्ति के साथ वैधता को जोड़ दिया जाता है तो उसे सत्ता कहते हैं। वेबर के अनुसार सत्ता का सम्बन्ध शक्ति से है। वैध शक्ति (Legitimate power) को ही सत्ता कहा जाता है। सत्ता द्वारा ही सामाजिक क्रिया का परिसंचालन होता है तथा इसी के द्वारा समाज में स्थायित्व बना रहता है अथवा सामाजिक व्यवस्था का निर्धारण होता है। वेबर की सत्ता सम्बन्धों की चर्चा, अर्थात् कुछ व्यक्तियों के पास शक्ति कहाँ से आती है तथा वे यह अनुमान क्यों लगाते हैं कि अन्य व्यक्तियों को उनका अनुपालन करना चाहिए, वास्तव में, उनके आद"ार प्रारूप का ही एक उदाहरण है जिसमें वह सत्ता का तीन श्रेणियों में वर्गीकरण प्रस्तुत करते हैं।

इस प्रकार, शक्ति को जब वैधानिक रूप दे दिया जाता है तो उसे सत्ता कहा जाता है। सत्ता को मानना अथवा इसका पालन करना एक ऐच्छिक कार्य है। सत्ता ही समाज में स्थायित्व का वास्तविक आधार है। सत्ता केवल राजनीतिक क्रियाओं अथवा परिस्थितियों तक ही सीमित नहीं है अपितु सामाजिक जीवन के प्रत्येक पहलू में सत्ता क्रिया"ाील है तथा देखी जा सकती है। राजनीतिक तथा सामाजिक पहलुओं में अन्तर केवल इतना है कि पहले में सत्ता इसके साथ जुड़ी हुई है, जबकि दूसरे में शक्ति तथा सत्ता का वितरण समान रूप से नहीं है।

अतः वैधता अथवा औचित्यपूर्णता शक्ति शब्दावली के सभी शब्दों में जुड़ी हुई है। जब हम 'प्रभाव', '"ाक्ति' और 'सत्ता' की विवेचना करते हैं तो बार–बार हमारा ध्यान इस तथ्य की ओर आकर्षित किया जाता है कि वे वैधता प्राप्त करने पर ही प्रभाव"ाली हो सकती हैं तथा हम इसी आधार पर दूसरों का व्यवहार परिवर्तित करने में सफल हो सकते हैं। बल प्रयोगात्मक या दमनात्मक शक्ति प्राचीनकाल में प्रभावकारी रही होगी परन्तु राजनीतिक विकास के परिणामस्वरूप इस प्रकार की शक्ति का प्रयोग कम होने लगा है और यदि होता भी है तो उसके पीछे जन–समर्थन होता है। शक्ति के प्रयोग के पीछे जन–समर्थन या सहमति ही वैधता है।

यदि सरकार को जनता वैध स्वीकार नहीं करती है तो सरकार के प्रति अवि"वास प्रकट किया जाता है। कई बार युद्ध और क्रान्तियों द्वारा सरकार का तख्ता तक पलट दिया जाता है। वास्तव में, कोई भी सरकार हिंसा, दण्ड या दमन के आधार पर अपना अस्तित्व नहीं बनाए रख सकती। वैधता जनता के मन में उसके प्रति वि"वास पैदा करती है और जनसाधारण उसे नैतिक दृष्टि से सही और उचित मानने लगता है। इस प्रकार का वि"वास राज्य व्यवस्था की सभी संरचनाओं, कार्यविधियों, नीतियों, अधिकारियों तथा नेताओं के प्रति होना ही वैधता कहलाता है। प्रजातन्त्रीय राज्यों में वैधता का महत्त्वपूर्ण स्थान है तथा इसके रहने पर द्वन्द्व एवं विवाद भी राज्य–व्यवस्था को कभी विभंग नहीं कर सकते।

वैधता के कारण ही अधीनस्थ अधिकारी अपने से उच्च अधिकारियों का आदे"ा मानते हैं। वैधता सारी व्यवस्था को सुचारु बना देती है। वास्तव में, वैधता के अभाव में शक्ति केवल बल (Force) है तथा इसके न होने पर शासकों का भी विरोध किया जाता है। वैधता एक विचार नियम है जो किसी व्यक्ति को शक्ति के प्रयोग का अधिकार देता है। 'वैधता' (Legitimacy) शब्द व्युत्पत्ति की दृष्टि से लैटिन भाषा के 'Legitimus' शब्द से बना है जिसका अर्थ 'विधि द्वारा गठित शक्तियों या न्यायाधी"ाो' से है। इसे 'वैधानिक' (Lawful) शब्द का समानार्थक माना जाता है। वैधता कोई नैतिक भावना या व्यक्तिनिष्ठ अवधारणा नहीं है। यह एक वि"वास है जिसके अनुसार नागरिकों तथा अधीनस्थों को शासन के कार्यों में उनके सही होने का

वि"वास रहता है। यह न्याय स्थापना की आव"यकता की भावना पर आधारित है। प्रजातन्त्र में वैधता प्राणस्वरूप होती है।

शक्ति एवं सत्ता '"ाक्ति शब्दावली' की दो प्रमुख अवधारणाएँ हैं। वैध अनुमोदन या संस्थागत शक्ति को ही सत्ता कहा जाता है। दोनों में पाई जाने वाली प्रमुख असमानताएँ निम्नांकित हैं–

(1) शक्ति दण्डभय द्वारा व्यक्तियों से अनुपालन करवाने की क्षमता है, जबकि सत्ता का अनुपालन ऐच्छिक कार्य होता है।

(2) समाज में सत्ता शक्ति की अपेक्षा अधिक प्रभाव"ाली मानी जाती है।

(3) शक्ति वैध तथा अवैध दोनों प्रकार की होती है, जबकि सत्ता केवल वैध शक्ति को ही कहा जाता है।

(4) सत्ता की अपेक्षा शक्ति एक अधिक व्यापक अवधारणा है। अधिकां"ा विद्वान् यह मानते हैं कि सत्ता शक्ति का एक वि"ोष प्रकार है।

(5) क्योंकि सत्ता वैध शक्ति है इसलिए इसके साथ वैधता सदैव जुड़ी रहती है। अन्य शब्दों में, शक्ति को वैधता प्रदान करके सत्ता में परिवर्तित किया जा सकता है।

(6) समाज के स्थायित्व एवं निरन्तरता में सत्ता का योगदान शक्ति से अधिक महत्त्वपूर्ण है।

अतः हम यह कह सकते हैं कि सत्ता शक्ति का वैध रूप है। यदि कोई पिता अपने बच्चों को किसी कार्य के लिए डाँटता है या मारता है तो उसे वैध माना जाएगा और सत्ता कहा जाएगा क्योंकि बच्चों को समाज के अनुकूल व्यवहार करना सिखाना, पिता, माता व परिवार का मुख्य कार्य है। यदि कोई बदमा"ा मुहल्ले वालों को किसी कार्य के लिए तंग करता है तो उसे शक्ति कहा जाएगा क्योंकि बदमा"ा के पास मुहल्ले वालों से उनकी इच्छा के विरुद्ध कार्य करवाने का कोई अधिकार नहीं है।

2.4 सत्ता के विभिन्न प्रकार

मैक्स वेबर ने सत्ता को वैधता प्रदान करने वाले स्रोतों को तीन प्रकार का बताया है–

(1) चमत्कारिक स्रोत,

(2) परम्परागत स्रोत, तथा

(3) तार्किक स्रोत।

इन स्रोतों के आधार पर वेबर ने सत्ता को तीन श्रेणियों में विभाजित किया है। ये हैं–

(1) चमत्कारिक सत्ता–इस प्रकार की सत्ता में व्यक्ति का अनुपालन उसकी चमत्कारिक वैयक्तिक वि"ोषताओं (गुणों) के कारण किया जाता है, चाहे ये गुण नैतिक हों या धार्मिक या अन्य किसी प्रकार के। चमत्कारिक सत्ता का आधार व्यक्ति के अपने गुण हैं। चमत्कार से अभिप्राय उन व्यक्तिगत गुणों से है जो किसी व्यक्ति को अन्य साधारण व्यक्तियों से भिन्न करते हैं। चमत्कारिक गुणों को अलौकिक, अतिमानवीय अथवा विशेष प्रकार की शक्ति या गुणों से सम्बन्धित माना जाता है। उदाहरण के लिए–धार्मिक नेताओं को इस श्रेणी में रखा जा सकता है। चमत्कारी सत्ता एक अपवाद स्वरूप होती है। अतिमानवीय, अतिप्राकृतिक शक्ति–सम्पन्न व्यक्ति भी एक क्रान्तिकारी नायक, सेनानायक, ताना"ााह अथवा सामाजिक हो सकता है। इस सत्ता का आधार सत्ताधारी के प्रति अनुयायियों की असीम भक्ति होती है। इस भाँति, वह सत्ता तार्किकता पर आधारित नहीं होती। इसका स्वरूप भावात्मक होता है। इस सत्ता में व्यवहार की सीमाओं और आद"ार्ों का निर्धारण स्वयं नेता करता है। यह दोनों ही प्रकार की हो सकती है–रचनात्मक भी और विध्वंसात्मक भी। प्राचीन समाजों में शिकार करने में अद्भुत कुशलता दिखाने वाले अथवा युद्ध में अद्वितीय कौशल दिखाने वाले व्यक्तियों को चमत्कारिक माना जाता था। यदि चमत्कारिक गुणों का प्रभाव अधिक देर

तक नहीं रहता, तो इन गुणों से युक्त व्यक्ति सोचता है कि उसकी जादुई शक्ति या दैवी शक्ति ने उसका साथ छोड़ दिया है।

(2) परम्परागत सत्ता–परम्परागत सत्ता में शक्ति की वैधता प्राचीनकाल से चली आ रही है व्यवस्था अथवा प्रतिमानों के कारण मिलती है। इस प्रकार की सत्ता पूर्व–आधुनिक समाजों में पाई जाती है। परम्परागत सत्ता में किसी व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के समूह को केवल इसलिए उच्च माना जाता है क्योंकि उनको परम्परागत रूप से ही उच्च माना जा सकता है। ऐसी सत्ता में आज्ञाकारिता का आधार श्रद्धा होती है। व्यक्ति आदेशों का पालन इसलिए करता है क्योंकि वह उन प्रथाओं में श्रद्धा रखता है जो आदे"ाकर्ता को आदे"ा देने योग्य स्थिति में रखे हुए हैं। इस भाँति, आज्ञाकारिता व्यक्ति–वि"ोष के प्रति होती है। पति–पत्नी के बीच पति की सत्ता का आधार परम्पराएँ ही हैं। पैतृकवाद, आयु की वरिष्ठता, पितृसत्तात्मक आदि इसी सत्ता के अन्य उदाहरण हैं। परम्परागत सत्ता मनमाने ढंग से नहीं लगाई जा सकती। प्रथाएँ ऐसी सत्ता के अधिकार व दायित्वों का दायरा तय करती है।

(3) तार्किक वैधानिक सत्ता–इस प्रकार की सत्ता में वैधता पद नियुक्ति के साथ जुड़ी हुई है। तार्किक वैधानिक सत्ता का पालन पद पर नियुक्त व्यक्ति के कारण नहीं किया जाता अपितु उस वैधानिक व्यवस्था द्वारा किया जाता है जो कि उस पद के साथ जुड़ी हुई है। उदाहरण के लिए–किसी मेयर के पास जो सत्ता है वह मेयर के पद पर उसकी नियुक्ति के कारण है, न कि उस पद पर नियुक्त व्यक्ति के कारण। आधुनिक समाजों तथा प्र"ाासन में सत्ता का यही प्रकार अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हो गया है। कानूनी सत्ता अधिकारी या नेता के व्यक्तिगत गुणों पर आधारित नहीं होती। इस प्रकार, परम्पराएँ भी इस सत्ता की वैधता के लिए स्रोत नहीं हैं। कानूनी सत्ता का आधार अवैयक्तिक नियमों की स्वीकृति है, उनकी वैधता में वि"वास है। अधिकारी अपने आदे"ाों को वैध समझता है और उनके पालन करने वाले भी उन्हें ऐसा ही समझते हैं। उदाहरणार्थ–एक जज, सैनिक अधिकारी, कॉलेज के प्राचार्य आदि सभी अपने पद के अनुसार कानून द्वारा लिखित सत्ता का प्रयोग करते हैं।

सत्ता के इन तीन विभिन्न प्रकारों का वर्णन करते समय यह बात ध्यान देने योग्य हैं कि वेबर केवल वि"ाुद्ध प्रकारों का वर्णन करते हैं तथा वह इस बात के प्रति जागरूक थे कि आनुभविक वास्तविकता में सत्ता की वैधानिकता का केवल मिश्रण ही पाया जाता है। इस प्रकार यद्यपि **हिटलर** का प्रभुत्व काफी सीमा तक उसके चमत्कारिक गुणों के कारण था, फिर भी जर्मन कानून की संरचना में तार्किक–वैधानिक सत्ता के तत्त्वों तथा राष्ट्रीय समाजवाद की अपीलों में परम्परागत तत्त्व भी विद्यमान थे।

वेबर का सत्ता सम्बन्धों का वर्गीकरण अनेक प्रकार से महत्त्वपूर्ण कहा जा सकता है। वेबर का समाज"ाास्त्रीय योगदान इस बात में निहित है कि वे राजनीतिक सिद्धान्तकारों से भिन्न सत्ता को नेताओं तथा अनुयायियों के परस्पर सम्बन्धों के आधार पर परिभाषित करते हैं। यद्यपि वेबर चमत्कार की कोई ठोस परिभाषा नहीं देते फिर भी वेबर के ये विचार महत्त्वपूर्ण हैं कि नेता की भूमिका उसके अनुयायियों के उसके मि"ान के बारे में वि"वास से आँकी जा सकती है। जिसके जितने अधिक अनुयायी होंगे उसे उतना ही अधिक चमत्कारी कहा जा सकता है।

2.5 चमत्कारिक, तार्किक तथा परम्परागत सत्ता में भेद

चमत्कारिक सत्ता दैनिक जीवन तथा सांसारिक क्षेत्र की वास्तविकता से परे है। इस अर्थ में यह तार्किक सत्ता (वि"ोष रूप से नौकर"ााही) तथा परम्परागत सत्ता से भिन्न है। तार्किक तथा परम्परागत सत्ता का सम्बन्ध क्रिया के नियन्त्रण से सम्बन्धित दैनिक जीवन में वि"िाष्ट प्रकारों से है। नौकर"ााही सत्ता

इसलिए तार्किक है क्योंकि यह नियमों पर आधारित है, जबकि चमत्कारिक सत्ता प्रमुख रूप से अतार्किक (Irrational) है क्योंकि यह नियमों से परे हैं। परम्परागत सत्ता उन विधियों या कार्य करने के ढंगों से सम्बन्धित है जो भूतकाल से लिए गए हैं इसलिए यह भी कुछ नियमों पर आधारित है, जबकि चमत्कारिक सत्ता भूतकाल का विरोध करती है तथा इस अर्थ में यह एक वि"ाष्ट क्रान्तिकारी शक्ति कही जा सकती है। चमत्कारिक सत्ता में सम्पत्ति अथवा उच्च स्थिति वाले समूहों का कोई महत्त्व नहीं है तथा वैधता का आधार व्यक्तिगत चमत्कार है। जब तक व्यक्ति के चमत्कार को लोगों द्वारा मान्यता मिली हुई है तथा जब तक अनुयायी इससे सन्तुष्ट हैं तब तक यह सत्ता बनी रहती है।

2.6 सत्ता की अवधारणा की आलोचना

मैक्स वेबर का सत्ता का सिद्धान्त जहाँ पर एक ओर समाज"ाास्त्रीय सिद्धान्तों में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है, वहीं पर अनेक विद्वानों ने इस सिद्धान्त की आलोचना की है। **एटजियोनी** (Etzioni) ने वेबर के सिद्धान्त में निम्नलिखित प्रमुख कमियाँ बताई हैं–

(1) एटजियोनी की आलोचना का प्रथम बिन्दु वेबर की सत्ता का तीन श्रेणियों में विभाजन है। उनका कहना है कि तार्किक–वैधानिक, परम्परागत तथा चमत्कारिक सत्ता को पूर्ण रूप से एक–दूसरे से भिन्न करना कठिन है तथा वास्तविकता यह है कि सत्ता के अनेक मिश्रित रूप हो सकते हैं। उदाहरण के लिए–प्राचीन मिस्र में अनेक ऐसे प्र"ाासनिक संगठन थे जिनमें परम्परागत तथा नौकर"ाही सत्ता के तत्त्व एक साथ विद्यमान थे। प्राचीन चीन में भी सत्ता के मिश्रित रूपों का उल्लेख मिलता है। इन विचारों को यदि ध्यानपूर्वक देखा जाए तथा वेबर के आद"ार्ा प्रारूप के बारे में विचारों को सामने रखा जाए तो यह पता चलता है कि वेबर ने स्वयं इस कठिनाई को स्वीकार किया तथा यह बताया कि उसका सत्ता का वर्गीकरण आद"ार्ा प्रारूप है, न कि वास्तविकता का पूर्ण वर्णन। वास्तव में, यह आलोचना वेबर की सत्ता की अवधारणा की नहीं है अपितु उसकी आद"ार्ा प्रारूप की अवधारणा की है।

(2) एटजियोनी की आलोचना का दूसरा बिन्दु संगठन की संरचना की प्रकृति है। वेबर का कहना है कि प्रत्येक सत्ता निरन्तर रहती है, जबकि एटजियोनी इस बात पर बल देते हैं कि संगठन की संरचना की प्रकृति में परिवर्तन से सत्ता के स्रोत में भी परिवर्तन हो जाता है अर्थात् हो सकता है कि कानूनी सत्ता चमत्कारिक सत्ता में बदल जाए या परम्परागत सत्ता में बदल जाए। वह सैनिक संगठन के उदाहरण द्वारा अपने तर्क की पुष्टि करते हैं। सैनिक संगठन में कानूनी सत्ता की सभी वि"ोषताएँ पाई जाती हैं परन्तु युद्ध काल में नियमों की व्यवस्था प्रायः भंग–सी हो जाती है तथा इस संगठन में चमत्कारिक सत्ता के गुण आ जाते हैं। एटजियोनी के इस तर्क में काफी बल दिखाई देता है परन्तु इसकी भी सबसे बड़ी कमी यह है कि यह आरोप वेबर के आद"ार्ा प्रारूप के विचारों को सामने रखकर नहीं लगाया गया है।

(3) एटजियोनी; वेबर के इस मत से भी सहमत नहीं है कि चमत्कारिक सत्ता केवल उच्चतम पदों पर नियुक्त व्यक्तियों के पास ही होती है। क्योंकि वेबर ने इस सत्ता का स्रोत व्यक्तिगत गुणों से माना है, इसलिए यह सत्ता किसी भी व्यक्ति के पास हो सकती है, चाहे वह उच्च पद पर नियुक्त है अथवा निम्न पद पर। हो सकता है कि निम्न पद पर नियुक्त व्यक्ति भी अपने गुणों के आधार पर अपने से ऊँचे पदों पर नियुक्त व्यक्तियों को प्रभावित कर दे।

एटजियोनी की इन आलोचनाओं के बावजूद वेबर का सत्ता का सिद्धान्त समाज"ाास्त्रीय सिद्धान्तों में मुख्य स्थान रखता है।

2.7 सारांश

मैक्स वेबर का समाजशास्त्र को एक महत्त्वपूर्ण योगदान उनका सत्ता का सिद्धान्त है। इसी सिद्धान्त के आधार पर उन्होंने नौकरशाही की अवधारणा स्पष्ट करने का प्रयास किया है। सत्ता को शक्ति का एक रूप माना जाता है। शक्ति को किसी व्यक्ति के नकारात्मक अथवा सकारात्मक अनुमोदन द्वारा दूसरे व्यक्तियों के व्यवहार को प्रभावित करने की क्षमता कहा जाता है। यदि शक्ति का आधार वैधता होता है, तो उसे सत्ता कहा जाता है। इस प्रकार वैध शक्ति को ही सत्ता कहा जाता है। वेबर ने सत्ता को वैधता प्रदान करने वाले तीन प्रमुख आधारों (चमत्कार, परम्परा तथा तार्किक वैधानिकता) के अनुरूप तीन श्रेणियों में विभाजित किया है–चमत्कारिक सत्ता (जिसमें सत्ता का अनुपालन व्यक्ति के चमत्कारिक गुणों के आधार पर होता है), परम्परागत सत्ता (जिसमें वैधता का आधार प्राचीनकाल से चली आ रही परम्पराएँ होती हैं) तथा तार्किक वैधानिक सत्ता (जिसमें वैधता का आधार व्यक्ति का वैधानिक पद होता है)। अनेक विद्वानों ने वेबर के सिद्धान्त की इस आधार पर आलोचना की है कि व्यवहार में सत्ता के इन तीनों स्वरूपों में भेद करना कठिन है।

2.8 शब्दावली

प्रभाव – इससे अभिप्राय किसी व्यक्ति की अपनी इच्छानुसार दूसरे व्यक्तियों को बदलने की क्षमता से है। इसमें दूसरे व्यक्ति स्वेच्छा से अनुपालन करते हैं तथा अनुपालन हेतु किसी प्रकार की धमकी नहीं दी जाती है।

शक्ति – शक्ति दूसरे व्यक्तियों के व्यवहार को उनकी इच्छा के विरुद्ध बलपूर्वक प्रभावित करने की क्षमता है। इसमें प्रभावित करने वाला व्यक्ति अन्य व्यक्तियों के प्रतिरोध के बावजूद अपनी बात मनवाने में सफल रहता है।

सत्ता – जब शक्ति को वैधानिक रूप प्रदान कर दिया जाता है, तो उसे सत्ता कहते हैं। सत्ता का अनुपालन अन्य व्यक्ति स्वेच्छा से इसलिए करते हैं क्योंकि इसके पीछे वैधानिक व्यवस्था होती है।

चमत्कारिक सत्ता – जब किसी व्यक्ति का अनुपालन अन्य व्यक्ति उसके चमत्कारिक गुणों के आधार पर करते हैं, तो उसे चमत्कारिक सत्ता कहते हैं।

परम्परागत सत्ता – जिस शक्ति की वैधता का आधार प्राचीनकाल से चली आ रही परम्पराएँ होती हैं, उसे परम्परागत सत्ता कहते हैं।

तार्किक सत्ता – इस प्रकार की सत्ता में वैधता पद नियुक्ति के साथ जुड़ी होती है।

2.9 अभ्यास प्रश्न

1. वेबर के विचारों के सन्दर्भ में प्रभाव, शक्ति एवं सत्ता की अवधारणाएँ स्पष्ट कीजिए।
2. सत्ता किसे कहते हैं? इसके प्रमुख आधार कौन–से हैं? संक्षेप में समझाइए।
3. वेबर द्वारा प्रतिपादित सत्ता की अवधारणा स्पष्ट कीजिए।
4. वेबर के सत्ता के सिद्धान्त की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिए।

2.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

Amitai Etzioni (1964), **Modern Organizations**, ***Prentice-Hall***, Englewood Cliffs, N.J.

H. D. Lasswell, Quoted by T. B. Bottomore (1964), **Elites and Society**, Penguin Books, London.

M. Haralambos and R. M. Heald (1991), **Sociology : Themes and Perspectives**, Oxford University Press, Delhi.

Max Weber (1922), **Economy and Society**, University of California Press, New York.

Max Weber (1949), **The Methodology of Social Sciences**, The Free Press, New York.

Max Weber (1947), **The Theory of Social and Economic Organization** (Edited by Talcott Parsons), Oxford University Press, New York.

Robert A. Dahl (1981), **Political Man : The Social Bases of Politics**, The Johns Hopkins University Press, Baltimore.

Talcott Parsons (1963) On the Concept of Political Power in **Proceedings of the American Philosophical Society**, Vol. 107, No. 3 (June 19, 1963), pp. 232-262.

इकाई 3 धर्म तथा अर्थव्यवस्था : प्रोटेस्टैण्ट इथिक एवं पूँजीवाद
Religion & Economy:Protestant Ethic & Capitalism

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य
3.1 प्रस्तावना
3.2 धर्म की अवधारणा का स्पष्टीकरण : अर्थ एवं परिभाषाएँ
3.3 अर्थव्यवस्था की अवधारणा का स्पष्टीकरण : अर्थ एवं परिभाषाएँ
3.4 प्रोटेस्टैण्ट इथिक एवं पूँजीवाद
3.5 सारांश
3.6 शब्दावली
3.7 अभ्यास प्रश्न
3.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

3.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में मैक्स वेबर के धर्म तथा अर्थव्यवस्था के बारे में विचारों को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। उन्होंने अपने अध्ययन में इन दोनों में कार्य–कारण सम्बन्ध स्थापित किया है। उनका धर्म का अध्ययन प्रोटेस्टैण्ट इथिक से सम्बन्धित है, जबकि अर्थव्यवस्था को उन्होंने यूरोप में पाए जाने वाले पूँजीवाद तक अपने को सीमित रखा है। आशा है कि इस इकाई को पढ़ने के बाद, आप :

- धर्म की अवधारणा को समझ सकेंगे;
- अर्थव्यवस्था की अवधारणा की व्याख्या कर सकेंगे;
- वेबर के प्रोटेस्टैण्ट इथिक एवं पूँजीवाद के आदर्श प्रारूपों को स्पष्ट कर पाएँगे; तथा
- वेबर द्वारा प्रतिपादित धर्म एवं अर्थव्यवस्था में सम्बन्धों की समीक्षा कर पाएँगे।

3.1 प्रस्तावना

समाजशास्त्र का सम्बन्ध धार्मिक घटनाओं के सार के अध्ययन से नहीं है अपितु धर्म द्वारा प्रभावित व्यवहार के अध्ययन से है क्योंकि यह विशेष अनुभवों तथा विशिष्ट धारणाओं एवं लक्ष्यों पर आधारित है। समाजशास्त्री को धार्मिक जीवन के अर्थपूर्ण व्यवहार का ही अध्ययन करना चाहिए। समाजशास्त्री को अपना ध्यान धार्मिक व्यवहार से उत्पन्न अन्य क्रियाओं (जैसे नैतिक, आर्थिक, राजनीतिक, कलात्मक इत्यादि) के प्रभाव पर केन्द्रित करना चाहिए तथा उन संघर्षों का पता लगाने का प्रयास करना चाहिए जो कि धार्मिक मूल्यों में विजातीयता के परिणामस्वरूप उत्पन्न होते हैं।

वेबर ने समाजशास्त्र में धर्म को विशेष महत्त्व दिया है। इनका कहना है कि समाजशास्त्र की धार्मिक घटना के सार के अध्ययन में कोई रुचि नहीं है अपितु धर्म द्वारा निर्धारित व्यवहार के अध्ययन में है। धार्मिक जीवों के अर्थपूर्ण व्यवहार का समाजशास्त्रियों द्वारा अध्ययन किया जाना चाहिए। धर्म के समाजशास्त्रीय अध्ययन आर्थिक अथवा राजनीतिक और विशेष रूप से नैतिकता सम्बन्धी समाजशास्त्रीय

अध्ययन भी हैं। यद्यपि वेबर ने अपना जीवन एक अर्थशास्त्री के रूप में शुरू किया, फिर भी धर्म का समाजशास्त्र उनके अध्ययनों का केन्द्रीय बिन्दु बना रहा। वेबर का प्रोटेस्टैण्ट इथिक का अध्ययन उनका इस क्षेत्र में किया गया महत्त्वपूर्ण अध्ययन है जिसमें वे प्रोटेस्टैण्ट इथिक का आदर्श प्रारूप बनाकर अन्य धर्मों से इसकी तुलना करते हैं तथा इनमें भिन्नता बताते हैं। वह इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि प्रोटेस्टैण्ट इथिक के उपदेश इस प्रकार के हैं कि इनके दूरगामी आर्थिक परिणाम होते हैं तथा इनसे पूँजीवाद की आत्मा विकसित होती है।

3.2 धर्म की अवधारणा का स्पष्टीकरण : अर्थ एवं परिभाषाएँ

धर्म मनुष्य के जीवन का एक अनिवार्य तत्त्व है। धर्म की विशेषताओं, आदर्शों और जीवन को संगठित करने से सम्बन्धित उसके कार्यों को देखते हुए यह स्वीकार कर लेना पड़ता है कि धर्म एक ऐसा अमूर्त तत्त्व है जो मनुष्य की बुनियादी आवश्यकताओं से भी बढ़कर महत्त्वपूर्ण है। **डेविस** (Davis) के शब्दों में, ''मानव समाज में धर्म इतना सार्वभौमिक, स्थायी एवं व्यापक है कि धर्म को स्पष्ट रूप से समझे बिना हम समाज को नहीं समझ सकते हैं।'' इसी कारण धर्म काफी लम्बे समय से अध्ययन एवं चिन्तन का विषय रहा है।

कुछ पाश्चात्य विद्वानों का कथन है कि धर्म केवल सभ्य समाज के साथ ही जुड़ा हुआ है, परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। धर्म जनजातियों में भी किसी–न–किसी रूप में पाया जाता है। वास्तविकता यह है कि सभ्य समाज के धर्म की पृष्ठभूमि जनजातीय समाज से ही निर्मित हुई है और सभ्य जीवन का धर्म जनजातीय धर्म का ही संशोधित एवं परिवर्तित रूप है। यद्यपि धर्म सभी ज्ञात समाजों में विद्यमान है, तथापि धार्मिक विश्वास और व्यवहार एक संस्कृति से दूसरी संस्कृति में बदलते रहते हैं। धर्म के साथ अनेक अनुष्ठान जुड़े हुए होते हैं। प्रार्थना करना, गुणगान करना, भजन गाना, विशेष प्रकार का भोजन करना या न करना, उपवास रखना आदि आनुष्ठानिक कार्य ही हैं। समाजशास्त्र में धर्म का अध्ययन धार्मिक या ईश्वरमीमांसीय अध्ययन से भिन्न है।

गिलिन एवं **गिलिन** (Gillin and Gillin) के अनुसार सामाजिक विज्ञानों में धर्म की वास्तविकता के सन्दर्भ में उसकी सत्यता या असत्यता का अध्ययन नहीं किया जाता, वरन् सामाजिक जीवन के एक पहलू के रूप में धर्म का अध्ययन किया जाता है। समाजशास्त्र की मुख्य रुचि यह ज्ञात करने में है कि धर्म समाज में कैसे कार्य करता है तथा अन्य संस्थाओं से इसका क्या सम्बन्ध है। विभिन्न समाजों के तुलनात्मक अध्ययनों द्वारा धर्म की भूमिका की समीक्षा करने का प्रयास किया जाता है। धर्म, धार्मिक विश्वास, व्यवहार एवं संस्थाएँ संस्कृति के अन्य पक्षों को जिस रूप में प्रभावित करती हैं, इसे ज्ञात करने में भी समाजशास्त्रियों की विशेष रुचि होती है। धर्म एक पवित्र क्षेत्र है। **दुर्खीम** एवं **वेबर** द्वारा धर्म पर किए गए अध्ययन धार्मिक या ईश्वरमीमांसीय अध्ययनों से पूर्णतः भिन्न हैं। संक्षेप में, यह कहा जा सकता है कि समाजशास्त्र की रुचि धर्म का अलग क्षेत्र के रूप में अध्ययन करने में नहीं है, अपितु इसे समाज की अन्य संस्थाओं के साथ सम्बन्धों के सन्दर्भ में ही देखा जाता है। साथ ही, समाजशास्त्र में धर्म के अध्ययन में अधिकतर तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग किया जाता है। धर्म किसी व्यक्ति की निजी आस्था का मामला ही नहीं होता, अपितु इसका सार्वजनिक स्वरूप भी होता है। धर्म का यही सार्वजनिक स्वरूप समाज की अन्य संस्थाओं के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण होता है।

धर्म अलौकिक शक्तियों में विश्वास एवं इनकी उपासना पर आधारित है। धर्म का सम्बन्ध हमारी मानसिक प्रवृत्ति से होता है जिसका प्रादुर्भाव हमारे विचारों और संस्कारों द्वारा होता है। 'धर्म' शब्द 'धृ' धातु

से बना है जिसका अर्थ धारण करना है अर्थात् जिसके द्वारा ब्रह्माण्ड धारण किया जाता है। अधिकतर धर्म को किसी अतिमानवीय शक्ति के प्रति विश्वास, किसी पवित्र वस्तु के प्रति विश्वास या किसी आध्यात्मिक शक्ति के प्रति विश्वास के रूप में देखा जाता है। यह एक प्रकार से विश्वासों, प्रतीकों, मूल्यों एवं क्रियाओं की संस्थागत प्रणाली है जो मनुष्यों के समूहों को जीवन के परम लक्ष्यों या प्रश्नों का समाधान प्रदान करती है। विभिन्न विचारकों ने धर्म की भिन्न–भिन्न परिभाषाएँ प्रस्तुत की हैं। कुछ प्रमुख परिभाषाएँ निम्न प्रकार हैं–

टॉयलर (Tylor) के अनुसार–''धर्म आध्यात्मिक शक्ति पर विश्वास है।'' टॉयलर ने अपनी परिभाषा में धर्म को प्रत्यक्ष रूप से आध्यात्मिक विश्वास के साथ सम्बन्धित किया है। जब मनुष्य अपनी शक्ति और विवेक से किसी घटना के कारण को समझने में असमर्थ हो जाता है तो वह भय और श्रद्धा के फलस्वरूप किसी–न–किसी अलौकिक शक्ति पर विश्वास करने लगता है। यही धर्म है।

मैलिनोव्स्की (Malinowski) के अनुसार–''धर्म क्रिया की एक विधि और साथ ही विश्वासों की एक व्यवस्था भी है। धर्म एक समाजशास्त्रातय तथ्य होने के साथ ही एक व्यक्तिगत अनुभव भी है।'' मैलिनोव्स्की ने धर्म को विश्वासों पर आधारित एक व्यवस्था माना है जिसे पूरा करने के लिए अनेक प्रक्रियाओं से होकर गुजरना पड़ता है। साथ ही, मैलिनोव्स्की ने धर्म को एक ऐसा तथ्य माना है जो सम्पूर्ण समाज को सामूहिक रूप से प्रभावित करने के साथ–साथ व्यक्तिगत रूप से समाज के प्रत्येक सदस्य को भी प्रभावित करता है।

मजूमदार एवं **मदन** (Majumdar and Madan) के अनुसार–''धर्म किसी अलौकिक और अतीन्द्रिय शक्ति के भय का एक मानवीय प्रत्युत्तर है। यह व्यवहार की अभिव्यक्ति अथवा परिस्थितियों से किए गए अनुकूलन का वह रूप है जो अलौकिक शक्ति की धारणा से प्रभावित होता है।'' मजूमदार एवं मदन के अनुसार जब मनुष्य अतीन्द्रिय (परामानवीय) शक्ति से भयभीत हो जाता है तो वह धर्म के रूप में ही अपने भय को अभिव्यक्त करता है। इस तरह से, धर्म असामान्य परिस्थितियों को सामान्य बनाने के लिए किया गया मानवीय प्रयास है जो अतिमानवीय धारणा पर विश्वास करके ही सफल हो सकता है।

जॉनसन (Johnson) के अनुसार–''धर्म कम या अधिक रूप में उच्च अलौकिक व्यवस्था या प्राणियों, शक्तियों, स्थानों एवं अन्य तत्त्वों के सम्बन्ध में विश्वासों एवं व्यवहारों की एक स्थिर प्रणाली है।'' इस परिभाषा से धर्म के बारे में निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं–

(1) धर्म ईश्वर या ईश्वरों के सम्बन्ध में विश्वासों व व्यवहारों की प्रणाली है।

(2) उच्च अलौकिक प्राणियों से अभिप्राय ईश्वर अथवा देवताओं से है।

(3) अलौकिक शक्तियों से तात्पर्य पवित्र भावनाओं अथवा आत्माओं से है।

(4) स्थानों का अर्थ स्वर्ग, नरक आदि से है।

(5) अन्य तत्त्वों से तात्पर्य आत्मा से है।

(6) उच्च अलौकिक से तात्पर्य है–जिसकी वैज्ञानिक दृष्टिकोण से जाँच न की जा सके।

इस प्रकार, धर्म को किसी–न–किसी रूप में अतिमानवीय शक्ति पर विश्वास के रूप में ही स्पष्ट किया गया है। इसके विपरीत, **डॉ० राधाकृष्णन्** द्वारा धर्म की दी हुई परिभाषा, धर्म को सीधे–सीधे सामाजिक रूप देती है। उन्हीं के शब्दों में, ''जिन सिद्धान्तों के अनुसार हम अपना दैनिक जीवन व्यतीत करते हैं, जिसके द्वारा हमारे सामाजिक सम्बन्धों की स्थापना होती है, वही धर्म है। वह जीवन का सत्य है और हमारी प्रकृति को निर्धारित करने वाली शक्ति है।''

धर्म के दो पक्ष हैं–आन्तरिक पक्ष (Internal aspect) तथा बाह्य पक्ष (External aspect)। प्रथम पक्ष में विचारों का समूह, संवेग व भावनाएँ, धार्मिक प्रथाएँ तथा मानव के ईश्वर से सम्बन्धित कार्यों के सम्बन्ध में विश्वास आदि आन्तरिक बातें सम्मिलित होती हैं, जबकि द्वितीय पक्ष में प्रार्थना की प्रथा, धार्मिक उत्सव,

स्मृतियाँ आदि आते हैं। इनके माध्यम से धार्मिक विश्वास की अभिव्यक्ति की जाती है। इसी में धार्मिक संस्थाएँ–जैसे चर्च, मन्दिर, मसजिद आदि भी आते हैं।

3.3 अर्थव्यवस्था की अवधारणा का स्पष्टीकरण : अर्थ एवं परिभाषाएँ

अर्थव्यवस्था संगठनों एवं संसाधनों की एक ऐसी प्रणाली है जो किसी समाज में वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन एवं वितरण को सुगम बनाती है अथवा किसी–न–किसी रूप में इसमें महत्त्वपूर्ण भूमिका निष्पादित करती है। अर्थव्यवस्था ही यह निर्धारित करती है कि समाज के सदस्यों में संसाधन किस प्रकार से वितरित होंगे, वस्तुओं एवं सेवाओं का मूल्य क्या होगा तथा किन वस्तुओं एवं सेवाओं का व्यापार अथवा विनिमय होगा। **जेम्स पाल** (James Paul) एवं सहयोगियों ने अर्थव्यवस्था को परिभाषित करते हुए लिखा है कि, "अर्थव्यवस्था वह सामाजिक अधिकार क्षेत्र (Social domain) है जो संसाधनों के उत्पादन, प्रयोग एवं प्रबन्धन से सम्बन्धित क्रियाओं, सम्भाषणों तथा भौतिक अभिव्यक्ति से आबद्ध होता है।" इस शब्द का आज सर्वाधिक प्रयोग 'किसी समाज की आर्थिक व्यवस्था' हेतु किया जाता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि जिस व्यवस्था या ढाँचे के अन्तर्गत समस्त आर्थिक क्रियाओं का वर्णन किया जाता है उसे अर्थव्यवस्था कहते हैं। इसका तात्पर्य किसी क्षेत्र, प्रदेश या देश की आवश्यकताओं की सन्तुष्टि से भी है। जिस क्षेत्र, प्रदेश या देश में आवश्यकताओं की सन्तुष्टि जितनी अधिक होगी, वहाँ की अर्थव्यवस्था उतनी ही अधिक मजबूत मानी जाएगी।

अर्थव्यवस्था किसी समाज की वह प्रकार्यात्मक उप–व्यवस्था है जो समाज के अनुकूलन की समस्या को हल करती है। इसीलिए इसे अनुकूलनकारी उप–व्यवस्था (Adaptive sub-system) भी कहा गया है। अर्थव्यवस्था को एक सामाजिक उप–व्यवस्था के रूप में परिभाषित करते हुए **नील जे० स्मेलसर** (Neil J. Smelser) ने लिखा है, ''अर्थव्यवस्था को एक सामाजिक उप–व्यवस्था के रूप में देखा जा सकता है क्योंकि वह सीमित वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन, वितरण और उपभोग में लगी इकाइयों के मध्य परस्पर अन्तर्सम्बन्धों से बनती है।'' उदाहरण के लिए–उत्पादन की प्रक्रिया को लेते हैं। उत्पादन की आवश्यकताओं की पूर्ति में अनेक इकाइयों का संकुल भाग लेता है। अर्थव्यवस्था की एक सीमा पर उच्च शिक्षा और विज्ञान की वे संरचनाएँ हैं जो ज्ञान और प्रौद्योगिकी प्रदान करती हैं जिन्हें उत्पादन के भूमि रूपी कारक में शामिल किया जा सकता है। अर्थव्यवस्था की दूसरी सीमा पर गृहस्थ और शिक्षा संस्थाएँ हैं जो उत्पादन के लिए प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित श्रम की पूर्ति करती हैं। अर्थव्यवस्था की तीसरी सीमा पर बैंक, सरकार और अन्य वित्तीय संरचनाएँ होती हैं जो उत्पादन के लिए आवश्यक पूँजी की पूर्ति करती हैं। इसी प्रकार, अर्थव्यवस्था की अन्तिम सीमा पर वे विशिष्ट संरचनाएँ हैं जो इस व्यवस्था के लिए संगठनात्मक नियमों का निर्देशन करती हैं। उत्पादन के ये चारों कारक किसी फर्म में माँग और पूर्ति की शक्तियों द्वारा निर्धारित दर पर प्रवेश पाते हैं। तब फर्म वस्तुओं का उत्पादन करती है। उत्पादन के पश्चात् बाजार और विनिमय की प्रक्रिया और माँग एवं पूर्ति के यन्त्रविन्यास से गुजरते हुए एक निश्चित मूल्य पर वस्तुएँ उपभोक्ताओं तक पहुँचती हैं। इस प्रकार, हम देखते हैं कि अर्थव्यवस्था प्रकार्यात्मक रूप में समाज की एक पृथक् उप–व्यवस्था है। वह समाज के लिए आवश्यक वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन और वितरण करती है।

उपर्युक्त अर्थ में अर्थव्यवस्था ऐसी सुविधाओं को उत्पन्न करती है जो सामान्य रूप से परिवार, समुदाय, राज्य आदि सभी के लिए आवश्यक है। यहाँ यह भी स्मरण रखने योग्य है कि हम अर्थव्यवस्था को जब समाज की एक प्रकार्यात्मक उप–व्यवस्था के रूप में देख रहे हैं तो हम उससे जुडे मूर्त समूहों जैसे कल–कारखाने, व्यापारिक फर्मों तथा श्रम–संघों का वर्णन नहीं कर रहे हैं। हमारा ध्यान इन मूर्त समूहों के

बीच संस्थात्मक सम्बन्धों पर केन्द्रित है। यहाँ यह भी स्पष्ट कर दिया जाना चाहिए कि अर्थव्यवस्था ही समाज के अनुकूलन की समस्या से जुड़ी नहीं है। परिवार, नातेदारी और सरकार जैसी संरचनाएँ भी उसमें भाग लेती हैं और अर्थव्यवस्था भी इन अन्य संरचनाओं के विशिष्ट प्रकार्यों में सहायता देती है। परन्तु अनुकूलन में प्रमुख भूमिका अर्थव्यवस्था की ही है।

3.4 प्रोटेस्टैण्ट इथिक एवं पूँजोवाद

वेबर के अनुसार धर्म का समाजशास्त्रीय अध्ययन एक प्रकार से आर्थिक, राजनीतिक तथा विशेष रूप से नैतिकता सम्बन्धी समाजशास्त्रीय अध्ययन भी है। यद्यपि वेबर ने अपना समाजशास्त्रीय जीवन अर्थशास्त्र के बारे में विचार व्यक्त करने से शुरू किया, फिर भी धर्म का समाजशास्त्र उनके अध्ययन का केन्द्र बिन्दु रहा है। वेबर ने प्रमुख रूप से धार्मिक व्यवहार का नैतिकता तथा आर्थिक घटनाओं पर प्रभाव का अध्ययन किया तथा राजनीति और शिक्षा पर प्रभाव पर भी अपने विचार व्यक्त किए। इनके अनुसार धार्मिक व जादुई क्रियाएँ सापेक्षिक रूप से तार्किक हैं क्योंकि ये अनुभवों के सामान्य नियमों पर आधारित हैं। इसलिए इन क्रियाओं को लक्ष्य निर्धारित क्रियाओं (Goal-oriented activities) की परिधि से बाहर रखना ठीक नहीं है। वेबर ने धर्म के समाजशास्त्र में दैवी शक्ति की अवधारणा को केन्द्रीय बिन्दु माना है, यद्यपि कुछ धर्म (जादुई अथवा आत्मवादी) ईश्वर को नहीं मानते तथा 'आत्माओं' को महत्त्व देते हैं। उदाहरण के लिए–बौद्ध धर्म में ईश्वरीय शक्ति के विचार नहीं पाए जाते। धर्म के समाजशास्त्र के लिए जो बात महत्त्वपूर्ण है वह है प्राकृतिक शक्तियों के सम्बन्ध में व्यक्ति की धार्मिक क्रियाएँ अथवा व्यवहार। क्योंकि ये शक्तियाँ सामान्य अवलोकन क्षेत्र से बाहर हैं, इसलिए इनके प्रतीकों को व्यक्ति की क्रियाएँ समझते समय सामने रखा जा सकता है।

वेबर का धर्म के समाजशास्त्र से सम्बन्धित सबसे प्रमुख अध्ययन 'प्रोटेस्टैण्ट इथिक एण्ड द स्प्रिट ऑफ केपिटेलिज्म' माना जाता है। पूँजीवाद के तत्त्व रोम, चीन तथा भारतीय समाजों में भी पाए जाते हैं, परन्तु इन तत्त्वों से इन समाजों में तार्किकता नहीं आई जो कि आधुनिक पूँजीवाद की विशेषता है। यह घटना (पूँजीवाद) केवल पश्चिमी देशों तक ही सीमित है। प्रश्न यह है कि आधुनिक पूँजीवाद केवल पश्चिमी देशों में ही क्यों विकसित हुआ, अन्य देशों में क्यों नहीं? इस प्रश्न के उत्तर में वेबर ने प्रोटेस्टैण्ट इथिक तथा पूँजीवाद की आत्मा का अध्ययन किया और इनमें कार्य–कारण सम्बन्धों की प्रामाणिकता को सिद्ध किया। प्रोटेस्टैण्ट इथिक जीवन की तार्किकता का एक आधार है जिसने पूँजीवाद की आत्मा को विकसित करने में सहायता दी है। फिर भी, यह पूँजीवाद का केवल मात्र तथा पर्याप्त कारण नहीं है। प्रोटेस्टैण्ट इथिक पूँजीवाद का एकमात्र कारण नहीं है अपितु विभिन्न कारणों में से एक कारण है जो पूँजीवाद के कुछ पहलुओं को विकसित करता है। कौन से विचार अथवा मूल्य पूँजीवाद की आत्मा को विकसित करते हैं? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए वेबर ने प्रोटेस्टैण्ट समूहों–जैसे केलविनिस्ट (Calvinist), प्रीटिस्ट (Pretist), मैथोडिस्ट (Methodist), बेपटिस्ट (Bapatist) इत्यादि का अध्ययन करके इनके आधारभूत उपदेशों तथा शिक्षाओं का पता लगाया।

यद्यपि मैक्स वेबर की यह मान्यता थी कि आर्थिक कारण मानव समाज में मौलिक कारण है, फिर भी वह इस बात से इनकार नहीं करते कि अन्य कारणों की समाज में कोई भूमिका ही नहीं है। वेबर ने आर्थिक कारणों के अतिरिक्त, मूल्यों की भूमिका की ओर भी काफी ध्यान दिया। वास्तव में, इनके अनुसार जितने अधिक कारकों को ध्यान में रखा जाए उतना ही अच्छा है। मार्क्स तथा वेबर के विचारों में आर्थिक कारणों को महत्त्वपूर्ण मानने की दृष्टि से मौलिक अन्तर नहीं पाया जाता।

पश्चिमी यूरोप में पूँजीवाद का विकास एक विशिष्ट अथवा अनुपम घटना है। मैक्स वेबर ने इस प्रश्न पर विचार करना शुरू किया कि पूँजीवाद का विकास केवल पश्चिमी समाजों में ही क्यों हुआ अन्य समाजों में क्यों नहीं, जबकि वहाँ की परिस्थितियाँ भी पश्चिमी देशों के समान ही थीं? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए वेबर ने विभिन्न समाजों की तुलना की तथा यह पाया कि यद्यपि परिस्थितियाँ कुछ गैर–पश्चिमी समाजों में भी ऐसी थीं कि पूँजीवाद विकसित हो सकता था, परन्तु वास्तव में नहीं हुआ क्योंकि उन समाजों तथा पश्चिमी समाजों के धार्मिक आचारों में भिन्नता थी। पश्चिमी देशों में धार्मिक आचार ऐसे हैं कि उनका आर्थिक जीवन पर भी काफी प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार, वेबर का यह अध्ययन तुलनात्मक विधि पर आधारित है।

वेबर के पूँजीवादी एवं प्रोटेस्टैण्ट धर्म के अध्ययन में समाजशास्त्र तथा इतिहास का संकलित रूप दिखाई देता है क्योंकि यह ऐतिहासिक घटना का समाजशास्त्रीय अध्ययन है। इस अध्ययन में भी वेबर आदर्श प्रारूप की अवधारणा की सहायता लेते हैं तथा प्रोटेस्टैण्ट इथिक का आदर्श प्रारूप बनाकर इसकी अन्य धर्मों से तुलना करके उनमें अन्तर देखने का प्रयास करते हैं।

प्रोटेस्टैण्ट ईसाई धर्म का एक मत है। 'इथिक' से अभिप्राय व्यवहार के आचार या नियम (Code of conduct) हैं, जबकि पूँजीवाद एक आर्थिक घटना है और 'स्प्रिट' से अभिप्राय अनिवार्य विशेषताएँ या मानसिक शक्ति (Essential features or mentality) है। वेबर के मतानुसार प्रोटेस्टैण्ट इथिक के प्रमुख तत्त्व तार्किकता, लाभ की इच्छा, परिश्रम, बचत एवं पूँजी संग्रह, साहस तथा नौकरशाही संगठन है। वेबर का उद्देश्य प्रोटेस्टैण्ट धर्म के व्यवहार के नियमों तथा पूँजीवाद की मानसिक शक्ति में पाए जाने वाले पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन करना था। इसके लिए उन्होंने ईसाई धर्म का विस्तृत अध्ययन किया तथा इसकी तुलना संसार के अन्य प्रमुख धर्मों से की। इस तुलना से वेबर ने यह उपकल्पना बनाई कि पश्चिमी यूरोप में प्रोटेस्टैण्ट इथिक का पाया जाना पूँजीवाद की आत्मा का कारण है। वेबर मानते हैं कि आधुनिक पश्चिमी पूँजीवाद का उदय प्रोटेस्टैण्ट इथिक की मान्यताओं का परिणाम है। आधुनिक पूँजीवाद की आत्मा प्रोटेस्टैण्टवाद तथा इसके व्यवहार के नियमों एवं व्यावहारिक नैतिकता में समाई हुई है।

वेबर ने धर्म के अध्ययन में 'प्रोटेस्टैण्ट इथिक' तथा 'आधुनिक पूँजीवाद' के आद"ार प्रारूप निर्मित किए तथा यह द"ार्ाने का प्रयास किया कि यूरोप में आधुनिक पूँजीवाद के उदय के कारण प्रोटेस्टैण्ट इथिक है अर्थात् प्रोटेस्टैण्ट इथिक कारण है, जबकि आधुनिक पूँजीवाद इसका परिणाम। इनके इन्हीं दो आद"ार प्रारूपों को निम्नवत् प्रस्तुत किया जा सकता है–

(अ) प्रोटेस्टैण्ट इथिक का आदर्श प्रारूप–सर्वप्रथम वेबर प्रोटेस्टैण्ट इथिक को आद"ार प्रारूप बनाते हैं जिससे वह यह जानने का प्रयास करते हैं कि इनमें कौन–कौन से व्यवहार नियम (आचार) हैं जिन्हें पूँजीवाद की आत्मा कहा जा सकता है। वेबर ने प्रोटेस्टैण्ट धर्म के आचारों का तथा इसके उपदे"ाकों, वि"ोषकर **बेन्जामिन फ्रैंकलिन**, की क्रियाओं के आधार पर यह सिद्ध कर दिया कि प्रोटेस्टैण्ट धर्म के दैनिक जीवन से सम्बन्धित व्यावहारिक आचार आधुनिक पूँजीवाद की आत्मा से मिलते हैं। इन उपदे"ाों में से कुछ उपदे"ा इस प्रकार हैं–भगवान की सेवा केवल वास्तविक जगत अर्थात् पृथ्वी पर ही की जा सकती है। किसी व्यक्ति की जीवन स्थिति कैसी भी क्यों न हो, उससे किसी कार्य की आ"ाा क्यों न की जाती हो, वह जो वि"ोष कार्य कर रहा है उसे अपनी क्षमता के अनुसार ठीक उसी प्रकार से करना चाहिए तभी वह भगवान की सेवा कर सकता है। इथिक का दूसरा पहलू यह है–अपने कार्य के परिणामस्वरूप व्यक्ति जो कमाता है उसे व्यर्थ अथवा फिजूल में ही खर्च नहीं करना चाहिए। इसके अतिरिक्त, प्रोटेस्टैण्ट इथिक अपने कार्य में ईमानदारी व उत्साही होने पर बल देता है। इसमें व्यवस्थित एवं युक्तिकरण जीवन को प्राथमिकता दी गई हैं। सत्यता तथा ईमानदारी से व्यक्ति जितना भी पैसा कमाता है वह पापरहित कार्य है। इसके

अतिरिक्त दिन भर परिश्रम करना, मितव्ययिता एवं पैसों का बचाना भी दैवी आदे"ा के अनुसार आव"यक माना जाता है।

वेबर के अनुसार प्रोटेस्टैण्ट इथिक में निर्धारित व्यवहार के इन आचारों के कुछ नि"चत आर्थिक परिणाम होते हैं। इथिक का एक पहलू वैराग्य (Asceticism) अर्थात् सरल जीवन व्यतीत करने का उपदे"ा देता है न कि फिजूलखर्ची से भरा जीवन व्यतीत करने का। ये आदे"ा एक ओर व्यक्ति को सरल जीवन व्यतीत करने को कहते हैं तो वहीं दूसरी ओर कड़ी मेहनत तथा ईमानदारी से काम करने पर बल देकर आर्थिक बचत पर भी बल देते हैं। इन्हें वेबर पूँजीवाद की आत्मा का प्रमुख आधार मानता है।

(ब) पूँजीवाद का आदर्श प्रारूप–वेबर पूँजीवाद का भी आद"ार् प्रारूप बनाते हैं जो कि एक आर्थिक घटना है। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत उद्योग, व्यापार और वाणिज्य बड़े पैमाने पर संगठित एवं संचालित होते हैं तथा ये निजी क्षेत्र में पाए जाते हैं। उत्पादन में व्यावसायिक दृष्टिकोण, व्यापक उत्पादन तथा श्रम–विभाजन व वि"ोषीकरण, व्यावसायिक निष्ठा तथा व्यावसायिक कु"ालता इत्यादि भी पूँजीवादी व्यवस्था की विषे"ाताएँ हैं तथा ये ही आधुनिक पूँजीवाद की आत्मा अथवा पूँजीवाद का आद"ार् प्रारूप हैं। जो व्यक्ति अपने कार्य व व्यवसाय में कु"ाल हैं वे धन और प्रतिष्ठा दोनों ही पाते हैं तथा जो अकु"ाल हैं तथा पुराने व्यवसायों में लगे हुए हैं उनका पतन जरूरी है।

वेबर पूँजीपतियों के व्यवहार की ओर भी ध्यान देते हैं तथा कहते हैं कि उनका व्यवहार वि"ोष प्रकार के आचारों द्वारा संचालित होता है। इस सम्बन्ध में वह **बेन्जामिन फ्रैंकलिन** द्वारा पूँजीपतियों तथा बड़े उद्योगपतियों के बच्चों को दिए गए उपदे"ाों का उल्लेख करता है जो प्रोटेस्टैण्ट विचारों द्वारा प्रभावित और उनके अनुरूप हैं। कुछ उपदे"ा इस प्रकार हैं–समय ही धन है, ईमानदारी सर्वोच्च नीति है, कार्य ही पूजा है, अपना कार्य ईमानदारी से करना ई"वर की पूजा करना है। जल्दी सोना और उठना व्यक्ति को स्वस्थ, धनी और बुद्धिमान बनाता है। वेबर पूँजीपतियों तथा उद्योगपतियों के बच्चों को प्रोटेस्टैण्ट इथिक से सम्बन्धित इन उपदे"ाों की तुलना दुनिया के अन्य धर्मों से करते हैं तथा इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि केवल प्रोटेस्टैण्ट धर्म ऐसा है जिसके आचार में दूरगामी आर्थिक परिणाम हैं। अन्य किसी धर्म के इतने अधिक एवं स्पष्ट आर्थिक परिणाम नहीं हैं।

प्रोटेस्टैण्ट इथिक की आद"ार् प्रारूप की तुलना अन्य धर्मों से करके तथा पूँजीवाद की आत्मा का आद"ार् प्रारूप बनाकर वेबर इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि प्रोटेस्टैण्ट धर्म के विचार आर्थिक विकास से जुड़े हैं तथा दोनों तरह के मूल्यों में काफी समानता है। इन दोनों में परस्पर सम्बन्ध पाया जाता है जिसे वेबर कार्य–कारण सम्बन्ध कहते हैं क्योंकि जहाँ पर प्रोटेस्टैण्ट इथिक पाया जाता है वहीं पूँजीवाद की आत्मा विकसित होती है। अपने तर्क की पुष्टि वह ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर करते हैं। इंग्लैण्ड, अमेरिका तथा होलैण्ड इत्यादि दे"ाों में पूँजीवाद का सर्वोत्तम विकास हुआ क्योंकि इन दे"ाों में अधिकां"ा व्यक्ति प्रोटेस्टैण्ट धर्म के ही अनुयायी हैं। दूसरी ओर, इटली तथा स्पेन इत्यादि दे"ाों में पूँजीवाद अधिक विकसित नहीं हो सका क्योंकि वहाँ अधिकां"ा कैथोलिक धर्म के अनुयायी रहते हैं तथा कैथोलिक धर्म की मान्यताएँ प्रोटेस्टैण्ट धर्म की मान्यताओं से पूर्णतः भिन्न है। इतना ही नहीं, वेबर कुछ गैर–पि"चमी दे"ाों का भी अध्ययन करते हैं (जैसे भारत तथा चीन) जहाँ की परिस्थितियाँ ऐसी थीं कि वहाँ पूँजीवाद विकसित हो सकता था परन्तु यह विकसित नहीं हुआ क्योंकि इन दे"ाों में भी भिन्न प्रकार का इथिक पाया जाता है जिसके आर्थिक परिणाम नहीं है।

अपने अध्ययन के आधार पर वेबर यह निष्कर्ष निकालते हैं कि प्रोटेस्टैण्ट इथिक तथा पूँजीवाद की आत्मा में कार्य–कारण सम्बन्ध है। प्रोटेस्टैण्ट इथिक पूर्वगामी (Antecedent) है, जबकि पूँजीवाद की आत्मा

इसका परिणाम (Consequence) है। ऐतिहासिक दृष्टि से भी प्रोटेस्टैण्ट इथिक का अस्तित्व पहले से है, जबकि पूँजीवाद की आत्मा का विकास बाद में हुआ। यद्यपि वेबर ने अनेक ऐसे प्रमाण दिए हैं जिनसे यह सिद्ध होता है कि प्रोस्टेस्टैण्ट इथिक ही आधुनिक पूँजीवाद के विकास का कारण है, फिर भी धर्म पूँजीवाद की उत्पत्ति और विकास का एकमात्र कारण नहीं है। इसे सबसे अधिक प्रभाव"ाली कारक कहा जा सकता है। केवल इसी दृष्टि से वेबर के विचार कार्ल मार्क्स से भिन्न माने जाते हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि वेबर ने प्रोटेस्टैण्ट इथिक एण्ड द स्प्रिट ऑफ केपिटेलिज्म के अपने अध्ययन में धर्म तथा पूँजीवाद के आदर्श प्रारूप बनाकर यह सिद्ध कर दिया है कि ये आदर्श प्रारूप तुलनात्मक अध्ययनों में सहायक हैं। वेबर यद्यपि प्रोटेस्टैण्ट इथिक को पूँजीवाद की आत्मा को अत्यधिक प्रभावित करने वाला कारक मानते हैं फिर भी इसे पूँजीवाद का एकमात्र कारक नहीं कहा जा सकता है क्योंकि अन्य देशों में; विशेषकर साम्यवादी देशों में भी उद्योग अत्यधिक विकसित हैं यद्यपि इन देशों की धार्मिक मान्यताएँ पूर्णतः भिन्न हैं। लेकिन वेबर यह कहते हैं कि धर्मों के आर्थिक आचारों के आधार पर ही उस समाज की आर्थिक तथा सामाजिक संरचना निर्धारित होती है। वह हिन्दू धर्म का विस्तृत अध्ययन करके बताते हैं कि हिन्दू धर्म में कर्म व पुनर्जन्म आदि के सिद्धान्त की प्रधानता है तथा भौतिक उन्नति प्राप्त करने की किसी प्रेरणा अथवा रुचियों का उपदेश इसमें नहीं दिया गया है अपितु केवल आध्यात्मिक उन्नति की प्रेरणा दी गई है। भारत में परम्परावाद ने आर्थिक विकास की गति रोकी है। भारत के आर्थिक और संस्थात्मक विकास ने एक ऐसी सांसारिक नीति को जन्म दिया जो संग्रहण की प्रवृत्ति को निम्न श्रेणी में रखती है। इसलिए यहाँ पूँजीवाद में सहायक दशाएँ विकसित नहीं हो पाईं।

यद्यपि वेबर ने पूँजीवाद के विकास में सहायक केवल एक पक्ष अर्थात् धर्म पर ही अपना ध्यान केन्द्रित किया है फिर भी यह अध्ययन पूर्णतः वैज्ञानिक अध्ययन है। वास्तव में, वेबर की यही मान्यता थी कि सामाजिक विज्ञानों में किए जाने वाले अध्ययन एक–तरफा हैं क्योंकि सामाजिक वैज्ञानिक केवल उसी पक्ष की ओर अधिक ध्यान देता है जिसे वह महत्त्वपूर्ण मानता है।

3.5 सारांश

समाजशास्त्र में धर्म का अध्ययन समाज के अन्य पक्षों के सन्दर्भ में किया जाता है। वेबर के समाजशास्त्र में धर्म का अध्ययन केन्द्र–बिन्दु रहा है। उन्होंने प्रोटेस्टैण्ट इथिक की तुलना विश्व के अन्य सभी प्रमुख धर्मों की आचार संहिता से करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला कि प्रोटेस्टैण्ट इथिक से सम्बन्धित जो आर्थिक मान्यताएँ हैं, वे किसी अन्य धर्म में विद्यमान नहीं हैं। उन्होंने प्रोटेस्टैण्ट इथिक एवं पूँजीवाद की आत्मा के आदर्श प्रारूप बनाए तथा इन दोनों में कार्य–कारण सम्बन्ध स्थापित किया। उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि पश्चिम में पूँजीवाद के विकास का कारण प्रोटेस्टैण्ट धर्म की आचार संहिताएँ हैं, जिनके दूरगामी आर्थिक परिणाम होते हैं। यद्यपि वेबर ने पूँजीवाद के विकास का कारण प्रोटेस्टैण्ट धर्म को माना है तथापि उनका मत था कि धर्म के अतिरिक्त अन्य कारक भी पूँजीवाद के विकास में सहायक हो सकते हैं। अन्य शब्दों में यह कहा जा सकता है कि प्रोटेस्टैण्ट धर्म को ही पूँजीवाद का एकमात्र कारण नहीं माना जा सकता है।

3.6 शब्दावली

धर्म – धर्म से अभिप्राय किसी–न–किसी रूप में अतिमानवीय शक्ति पर विश्वास तथा उसके बारे में पाई जाने वाली भावना से है। यह अलौकिक सत्ता पर

केन्द्रित विश्वासों, मूल्यों, आस्था, पवित्रता की धारणा, कर्मकाण्डों आदि का पुँज है।

अर्थव्यवस्था – सामाजिक समूहों की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु सीमित संसाधनों, तकनीकों तथा कार्यों का संगठन एवं आवंटन अर्थव्यवस्था कहलाता है।

प्रोटेस्टैण्ट इथिक – प्रोटेस्टैण्ट ईसाई धर्म का एक मत है। 'इथिक' से अभिप्राय व्यवहार के आचार या नियम हैं। इस नाते प्रोटेस्टैण्ट इथिक से अभिप्राय प्रोटेस्टैण्ट धर्म से सम्बन्धित आचार व्यवहार के नियमों से है।

पूँजीवाद – पूँजीवाद एक आर्थिक घटना है, जिसमें बड़े पैमाने पर उत्पादन होता है तथा स्वामित्व निजी क्षेत्र में केन्द्रित होता है।

आदर्श प्रारूप – आदर्श प्रारूप से अभिप्राय किसी घटना, वस्तु अथवा वर्ग विशेष की समस्त अनिवार्य विशेषताओं का सम्पूर्ण अथवा लगभग सम्पूर्ण रूप से चित्रण करने का प्रयास है।

3.7 अभ्यास प्रश्न

1. धर्म एवं अर्थव्यवस्था की अवधारणाएँ स्पष्ट कीजिए।
2. धर्म को परिभाषित कीजिए तथा वेबर द्वारा प्रतिपादित प्रोटेस्टैण्ट इथिक का आदर्श प्रारूप स्पष्ट कीजिए।
3. वेबर द्वारा प्रतिपादित प्रोटेस्टैण्ट इथिक एवं पूँजीवाद की आत्मा के आदर्श प्रारूप संक्षेप में समझाइए।
4. वेबर के धर्म के समाजशास्त्र को दिए गए योगदान की समीक्षा कीजिए।
5. धर्म को परिभाषित कीजिए। वेबर के धर्म सम्बन्धी अध्ययन के सन्दर्भ में पूँजीवाद से इसका सम्बन्ध स्पष्ट कीजिए।
6. पूँजीवाद एवं धर्म का अर्थ बताइए तथा वेबर के मतानुसार इनमें पाए जाने वाले सम्बन्ध की व्याख्या कीजिए।

3.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

B. Malinowski (1948), **Magic, Science and Religion and Other Essays**, Beacon Press, Boston.

D. N. Majumdar and T. N. Madan (1963), **An Introduction to Social Anthropology**, Asia Publishing House, Bombay.

E. B. Tylor (1873), **Primitive Culture : Researches Into the Development of Mythology, Philosophy, Religion, Art, and Custom**, Volume 1, J. Murray, London.

Emile Durkheim (1912), **The Elementary Forms of the Religious Life**, Sage Publications, Inc., Beverly Hills, CA.

Emile Durkheim (1982), **The Rules of Sociological Method**, The Free Press, New York.

Harry M. Johnson (1960), ***Sociology* : A Systematic Introduction**, Routledge and Kegan Paul, London.

J. L. Gillin and J. P. Gillin (1948), **Cultural Sociology**, The Macmillan Company, New York.

James, Paul, *Magee, Liam, Scerri, Andy and Steger, Manfred B. (2015),* **Urban Sustainability in Theory and Practice : Circles of Sustainability**, *Routledge. London.*

Kingsley Davis (1949), **Human Society**, The Macmillan Company, New York.

Neil J. Smelser (1976), The Sociology of Economic Life, Prentice-Hall, Cliffs, N.J.

Max Weber (1930), **The Protestant Ethic and the Spirit of Capitalism**, Unwin Hyman, London & Boston.

M. Haralambos and R. M. Heald (1991), **Sociology : Themes and Perspectives**, Oxford University Press, Delhi.

Max Weber (1949), **The Methodology of Social Sciences**, The Free Press, New York.

Max Weber (1951), **The Religion of China : Confucianism and Taoism**, The Free Press, New York.

Max Weber (1963), **The Sociology of Religion**, The Free Press, New York.

Max Weber (1964), The Religion of India : : The Sociology of Hinduism and Buddhism, Grand Rapids, MI, U.S.A.

S. Radhakrishnan (1947), Religion and Society, George Allen And Unwin Ltd., London.

इकाई 4– प्रतीकात्मक अन्तकियावाद (Symbolic Interactionism)

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 प्रतीकात्मकवाद का अर्थ

4.3 प्रतीको के भेद एवं महत्व

4.4 अन्तकिया की परिभाशा एवं अर्थ

4.5 प्रतीकात्मक अन्तकियावाद

4.5.1 कूले का प्रतीकात्मक अन्तकियावाद का सिद्धांत

4.5.2 मीड का प्रतीकात्मक अन्तकियावाद का सिद्धांत

4.5.3 हरबर्ट ब्लूमर का प्रतीकात्मक अन्तकियावाद का सिद्धांत

19.6 सारांश

19.7 पारिभाषिक शब्दावली

19.8 अभ्यास/बोध प्रश्नों के उत्तर

19.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

19.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

19.11 निबंधात्मक प्रश्न

4.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आपके द्वारा संभव होगा–

- प्रतीको के अर्थ, परिभाषा व प्रकार को समझना,

- प्रतीकात्मक अन्तक्रिया को जानना,
- प्रतीकात्मक अन्तक्रिया के विभिन्न पक्षों को समाज संदर्भ में समझना,
- प्रतीकात्मक अन्तक्रिया के संबध में विभिन्न विद्वानों द्वारा प्रस्तुत विचारो को जानना,

4.1 प्रस्तावना

इस प्रस्तुत इकाई में आपको प्रतीकात्मक अन्तःक्रिया के बारे में समझाया जायेगा कि किस प्रकार से व्यक्ति समाज में प्रतीकों, संकेतों व चिन्हों आदि को प्रयोग करते है और भाषा के सामाजिक पक्ष को समझाने का कार्य करते है। समाज के संपर्क से मानव का समाजीकरण होता है और वह समाज का क्रिया"ाील सदस्य बनता है। सामाजिक संपर्क के अभाव में मानव की शरीर रचना कितनी ही सुन्दर क्यों न हो वह विकसित नहीं हो सकती। समाज में ही मनुष्य अनेक अंन्तक्रियाए अन्य लोगों से अपनी जरूरतों के संदर्भ में करता है और अपनी आव"यकताओं को पूरा करता है। इसी अन्तक्रिया के दौरान वह कुछ अपने हाव भाव, संकेत, प्रतीक आदि का प्रयोग करता है जिसमें भाषा की अभिव्यक्ति संकेत आदि द्वारा होती है। प्रतीकात्मक अन्तक्रिया में व्यक्ति अथवा समूह की भाषा, हावभाव या भाव –भंगिमाओं को संचार एवं पारस्परिक अन्तक्रिया का प्रमुख आधार माना जाता है। इसमें भाषा के व्याकरण या शब्दको"ा में उल्लेखित अर्थ को महत्व नही दिया जाता बल्कि सामाजिक पक्ष पर वि"ोष ध्यान दिया जाता है। इसमें भाषा के सामाजिक पक्ष को समझाने पर जोर दिया जाता है। इस इकाई में आपको आगे प्रतीकात्मक अन्तक्रिया व प्रतीको को समझातें हुये आगे इस पर विभिन्न विचारों– कूले, मीड व हरबर्ट ब्लूमर आदि को प्रस्तुत किया जायेगा।

4.2 प्रतीकात्मकवाद का अर्थ

यहा पर हम प्रतीकात्मकवाद के अर्थ एवं परिभाषा के बारे में आपको अवगत करायेगें कि किस प्रकार समाज में मानव समाज में अपने व्यवहार व अन्तक्रिया के द्वारा प्रतीको, संकेतो व चिन्हो आदि द्वारा अपने भाषा के सामाजिक पक्ष को समझाने का प्रयास करता है। यहा पर हम आपको प्रतीकात्मकवाद के अर्थ को बताते है।

आर0एन0मुकर्जी (2002) प्रतीकात्मकवाद प्रतीकों को व्यवहार में लाने की एक विधि या नियम की ओर संकेत करता है। इस प्रकार प्रतीकात्मकवाद का प्रत्यक्ष सम्बन्ध प्रतीकों से हैं। प्रतीक शब्द से ही स्पष्ट है कि बहुधा व्यक्ति को जो कुछ भी व्यक्त करना है, उसके समग्र वह साफ–साफ व्यक्त नहीं करता है, वरन विभिन्न चीजों तथा भावों को व्यक्त करने के लिए कुछ ऐसे चिन्हों या प्रतीकों का व्यवहार करता है जिनके

माध्यम से वह अपने वास्तविक भाव की ओर देखने या सुनने वालों को संकेत करता हैं देखने या सुनने वाला इन चिन्हों, प्रतीकों या संकेतों से ही यथार्थ की कल्पना कर लेता है। उदाहरणार्थ, एक कलाकार सांप को एक टेडी–मेडी रेखा के संकेत या प्रतीक से अभिव्यक्त करता है, इसी प्रकार नृत्य में एक वि"ोष मुद्रा के द्वारा क्रोध, भय, अनुराग, उल्लास आदि को अभिव्यक्त करता है। नर्तकी अपने सुख से यह नहीं कहती कि वह डर गई है पर उसकी एक वि"ोष मुद्रा उसके मन के भाव को द"र्ाक के सामने स्पष्ट व्यक्त करती है। रोज के जीवन में भी हमें इसी प्रकार के अनेक संकेतों का द"र्ान होता है। उदाहरण– क्रॉस का चिन्ह ईसाइयों के धार्मिक जीवन का प्रतीक है और इस एक प्रतीक से ही ईसा मसीह के जीवन से सम्बद्ध अनेक घटनाए स्पष्ट व्यक्त हो जाती है। राष्ट्रीय झण्डा राष्ट्र के राजनीतिक जीवन का प्रतीक होता है और उसके पीछे अनेक शहीदों के बलिदान की कहानी छिपी होती है। इसी प्रकार रेल लाईन के सामने सिग्नल रेड लाईट रूकने का संकेत है तो ग्रीन लाईट आगे बढने का संकेत व्यक्त होता है।

4.3 पतीको के भेद एवं महत्व

आर0एन0मुकर्जी (2002) विभिन्न विद्धानों ने प्रतीको के दो भेद बताये है– पहला **परिचयात्मक प्रतीकात्मकवाद तथा दूसरा संक्षिप्त प्रतीकात्मकवाद। परिचयात्मक प्रतीकात्मकवाद** में मौखिक भाषण लिखना, टेलीग्राफ कोड, राष्ट्रीय झण्डा आदि वे प्रतीक है जिनसे किसी वस्तु की सूचना या परिचय में सुगमता हो जाती है। **संक्षिप्त प्रतीकात्मकवाद** अत्यन्त सरल प्रकार के होते है जैसे– टेलीग्राम भेजने के लिए एक वि"ोष प्रकार का टिक टिक शब्द एक वि"ोष प्रकार का प्रतीक बन जाता है तथा चुप रहने के लिए हाथ की उंगुली होठो पर रख लेना इस बात का संकेत / प्रतीक करता है कि अब बोलना नी है। सामाजिक जीवन में प्रतीकों का अत्यधिक महत्व होता है क्योंकि इनका कार्य सामाजिक व व्यक्तिगत व्यवहारों का संगठन और नियन्त्रण करना होता है। प्रतीक सामूहिक चेतना के सामूहिक प्रतिनिधित्व करते है। जैसे– राष्ट्रीय जीवन में प्रतीक के रूप में राष्ट्रीय झण्डा राजनीतिक भावना व राष्ट्र के प्रति समर्पित का प्रतिनिधित्व करता है आदि।

4.4 अन्तक्रिया की परिभाशा व अर्थ

जब व्यक्तियों की क्रियाएं एक दूसरे की क्रियाओं के सन्दर्भ में तथा उनसे प्रभावित होते हुए घटित होती है तो उस प्रक्रिया को अर्थात क्रिया के प्रत्युतर में क्रिया को अन्तः क्रिया कहते है। जो कि मैक्स वेबर के सामाजिक क्रिया के सिद्धान्त में विस्तार पूर्वक अध्ययन की जा सकती है।

किम्बल यंग के अनुसार ''विस्तृत रूप से परिभाषित करते हुए हम कह सकते है कि अन्तः क्रिया इस तथ्य की ओर संकेत करती है कि व्यक्ति की प्रतिक्रया हाव–भाव, शब्द या स्थूल शारीरिक गति–दूसरे व्यक्ति को उत्तेजित करती है और यह दूसरा व्यक्ति अपनी बारी पर प्रथम व्यक्ति के प्रति प्रतिक्रिया करता है।

मैरिल तथा एलड्रिज के शब्दों में, ''सामाजिक अन्तःक्रिया वह सामान्य प्रक्रिया है जिसमें दो या दो से अधिक व्यक्तियों में अर्थपूर्ण सम्पर्क की स्थापना होती है और जिसके फलस्वरूप उनके व्यवहार में थोडा–बहुत परिवर्तन न आ जाता है।

अतः सामाजिक अन्तक्रिया वह है जो कि सामाजिक संदर्भ में दूसरे व्यक्तियों को प्रभावित करते हुये की जाती है और जिसका प्रत्युत्तर प्राप्त होता है।

बोध प्रश्न–1

i) प्रतीक क्या है ?

.....

.....

ii) अन्तक्रिया की कोई एक परिभाषा लिखिए ?

.....

.....

.....

iii) प्रतीकात्मक अन्तक्रिया को संक्षिप्त में बताइए ?

.....

.....

.....

iv) परिवर्तन की कोई एक परिभाषा लिखिए ?

.....

.....

v) किस विद्धान ने प्रतीकात्मक अन्तक्रिया को 'स्व की अवधारणा के रूप में परिभाषित किया है ?

.....

.....

.....

vi) समाजीकरण की प्रक्रिया में सर्वाधिक योगदान होता है

अ) परिवार

ब) पडोस

स) नातेदारी

द) विघालय संस्था

4.5 प्रतीकात्मक अन्तक्रियावाद

अमरीकी समाज मनोविज्ञान का एक सिद्धान्त जो यह बताता है कि अन्तर्क्रियाओं के किस प्रकार अर्थ की रचना होती है। यह सिद्धान्त रोजमर्रा के जीवन के अर्थों को जानने के लिये अति निकटता और घनिष्टता से सामाजिक अन्तर्क्रियाओं के अन्तर्निहित स्वरूपों को समझा जा सके।

सिम्बॉलिक इन्टरएक्शनिज्म' शब्द की रचना सन् 1937 में हरबर्ट ब्लूमर ने की। किन्तु इस सिद्धान्त की उत्पत्ति के सम्बन्ध में मतभेद हैं। कुछ लोगों ने इसे जार्ज एच. मीड की देन बताया है। कुछ भी हो, ये दोनों ही विद्वान समकालीन थे तथा शिकागों सम्प्रदाय के साथ जुड़े रहे हैं।

इस सिद्धान्त के चार प्रमुख आधार हैंः (1) मानव प्राणी विशिष्ट रूप में प्रतीक – प्रयोगकर्त्ता प्राणी है। सभी प्राणियों में से केवल मानव प्राणी ही प्रतीकों के माध्यम में संस्कृति का निर्माण करने और उसे हस्तांतरित करने में सक्षम है। अन्तर्क्रियावादी मुख्यतः उन तरीकों/ विधियों का अध्ययन करते हैं जिनके द्वारा व्यक्ति अपनी देह, अपनी भावनाओं, अपने स्व, अपने जीवन–चरित्र, अपनी परिस्थितियों और सबसे ऊपर अपने विशाल सामाजिक विश्व जिसमें वे अपना जीवन जीते हैं, को अर्थ प्रदान करते हैं। इस प्रकार के अध्ययन के लिए वे अधिकांशतः सहभागिक अवलोकन पद्धति का प्रयोग करते हैं, (2) अन्तर्क्रियावादी सामाजिक विश्व को गतिशील और एक द्वन्द्वात्मक तानाबाना मानते हैं। उनके अनुसार परिस्थितियां हमेशा अनिश्चित परिणामों सहित संघर्षों से भरी रहती हैं और जीवन और जीवन–चरित्र हमेशा फेरबदल और निर्माण की प्रक्रिया में रहते हैं जो कभी अनिश्चित और परिवर्तनीय नहीं होते; (3) अन्तर्क्रियावादी सामाजिक विश्व की अन्तर्क्रियात्मक प्रकृति पर बल देते हैं। उनकी दृष्टि से अकेला व्यक्ति जैसी कोई चीज नहीं है। मानव हमेशा 'दूसरों' से किसी न किसी रूप में संबंधित रहता है। अन्तर्क्रियावादियों के विश्लेषण की मूल इकाई

'स्व' है जो उन तरीकों पर बल देता है जिनके द्वारा व्यक्ति अपने आपको वस्तु समझने लग सकते हैं और भूमिका–ग्रहण की प्रक्रिया द्वारा दूसरों की भूमिका सम्पादित करते हैं। इसी प्रक्रिया को कूले ने 'आत्मदपर्ण' और मीड ने 'स्व' की अवधारणाओं द्वारा समझाया है। (4) अन्तर्क्रियावादी प्रतीकों के पीछे छुपी हुई प्रक्रियाओं और अन्तर्क्रियाओं की खोज करते हैं ताकि वे सामाजिक जीवन के अन्तर्निहित प्रतिमानों ओर स्वरूपों का निर्धारण कर सकें। वास्तव में, यह सिद्धान्त मूल सामाजिक प्रक्रियाओं (ऐसी प्रक्रियाऐं जो समान रूप से सभी में पाई जाती है) को खोज पर बल देता है। उदाहरणार्थ, ये लोग चिकित्सकों, मादक दवाओं के सेवन कर्त्ताओं, संगीतज्ञों और मरनासन्न व्यक्ति जैसे विभिन्न प्रकार के व्यक्तियों के समूहों के जीवन–अनुभवों को मालूम कर इन सभी समूहों में पाई जाने वाली समान (कॉमन) प्रक्रियाओं का अध्ययन करते हैं।

सन् 1970 के दशक में इस सिद्धान्त की काफी आलोचना हुई। यह कहा गया कि इस सिद्धान्त ने संरचना, सत्ता/शक्ति, और इतिहास की सरासर अवहेलना की है। किन्तु आधुनिक अन्तर्क्रियावादियों जैसे शेल्डन स्ट्राइकर (सोश्यल इन्टरएक्शन–ए सोश्यल स्ट्रक्टर वर्सन, 1980) ने इस आलोचना को भ्रामक बताया है। स्ट्राइकर ने प्रतीकवादी अन्तर्क्रियावादी के एक ऐसे संस्करण को प्रस्तुत किया जो रूढ़िवादी सूक्ष्म समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य को विश्लेषण के संगठात्मक एवं समाजमूलक परिप्रेक्ष्य के साथ जोड़ता है। स्ट्राइकर का यह परिप्रेक्ष्य भूमिका सिद्धान्त को पुनर्पपरिभाषित करता है।

4.5.1 कूले का प्रतीकात्मक अन्तकियावाद का सिद्धांत

अमरीकन समाज"ाास्त्री कूले ने अपनी पुस्तक ''**Human Nature and the Social Order**'' में अपने समाजीकरण सम्बन्धी सिद्धान्त को प्रस्तुत किया है। उनका सिद्धान्त ''आत्म दर्पण द"ान का सिद्धान्त'' (Looking-glass self Theory) के नाम से जाना जाता है। कूल ने अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन व्यक्ति और समाज के सम्बन्धों को स्पष्ट करने के सन्दर्भ में किया। उनका मत है कि समाज के सम्पर्क में आने पर ही व्यक्ति के 'आत्म का विकास होता है। समाज व्यक्ति के लिए दर्पण का कार्य करता है, वह उसमें अपनी छवि देखता है ओर समाज के लोग उसके बारे में क्या राय रखते है, उसी आधार पर वह अपने बारे में अपनी धारणा बनाता है। जिस प्रकार से हम आइना देखकर यह ज्ञात करते है कि हम अमुक पोषाक पहनने पर कैसे लगते है, बाल ठीक से संवारे हुए है या नहीं आदि, बालक भी समाज रूपी आइने में अपने आपको देखता है। समाज के लोग उसके बारे में क्या राय रखते है, इसी आधार पर वह अपने बारे में राय बनाता है। जिससे उसमें हीनता या श्रेष्ठता के भाव पैदा होते है। इस प्रकार व्यक्ति के स्वः का विकास दूसरों की प्रतिक्रिया से होता है। हारटन तथा हण्ट कहते है कि कूले ने 'Looking glass Self" शब्द

थेकरे की वेनिटी फेयर नामक कृति से लिया है। इनके अनुसार, संसार एक दर्पण है जो प्रत्येक व्यक्ति को उसका स्वयं का चेहरा प्रतिबिम्बत करता है। आप भौहें चढ़ाइये तो इसमें आप चिडचिड़े दिखायी देंगे। आप इसकी ओर तथा इसके साथ हंसिये तो यह आपका खुषमिजाज व कृपालु साथी होगा।''

कूले ने 'आत्म दर्पण द"र्ान' प्रक्रिया के तीन चरणों का उल्लेख किया है। –

- व्यक्ति यह सोचता है कि दुसरे उसके बारे में क्या सोचते है,
- दूसरों के निर्णय के आधार पर वह स्वयं अपने बारे में क्या सोचता है,
- मैं अपने बारे में सोचकर अपने को कैसा मानता हूं ,गर्व अनुभव करता हूं या ग्लानि।

इस प्रकार कूले के अनुसार व्यक्ति का दूसरों से सम्पर्क होने से 'स्व' का निर्माण होता है। स्व के निर्माण के आधार पर ही व्यक्ति अपना मूल्यांकन करता है, वह अपने को हीन या श्रेष्ठ समझता है। व्यक्ति समाज का ही प्रतिबिम्ब है, जो कि अंतक्रिया का प्रतीकात्मक आधार है। अब हम मीड के विचारों को समझने की कोि"ा"ा करते है।

4.5.2 मीड का प्रतीकात्मक अन्तकियावाद का सिद्धांत

आर0एन0मुकर्जी (2002) मीड ने अपने समाजषास्त्र को सामाजिक मानव"ाास्त्र कहा था जिसका कि प्रमुख कार्य समाज व व्यक्ति के बीच पाये जाने सम्बन्धों का अध्ययन करना है। मीड के अनुसार इन सम्बन्धों का आधार मानवीय अन्तःक्रिया है। मानवीय अन्तःक्रियाओं में सामाजिक उत्तेजना का महत्व अत्याधिक होता है। वास्तव में एक व्यक्ति की प्रतिक्रया दूसरे व्यक्ति को उत्तेजना देती है, तभी सामाजिक अन्तःक्रियाए घटित होती है। इस अर्थ में सामाजिक उत्तेजनाएं, सामाजिक अन्तःक्रियाओं का साधन या माध्यम है। ये उत्तेजनाएं दो प्रकार की होती हैं प्राथमिक तथा द्वितीयक। जब प्रत्यक्ष सम्बन्ध या सम्पर्क के आधार पर व्यक्ति किसी दूसरे को उत्तेजन प्रदान करता है तब वह प्राथमिक उत्तेजना है। इसके अन्तर्गत हाव–भाव, चेहरे की अभिव्यक्ति, स्वर–अभिव्यक्ति, शारीरिक आसन, भाषा, हंसी आदि आती है। द्वितीय उत्तेजना वे है जिनमें व्यक्ति दूर रहकर संचार के विभिन्न साधनों द्वारा दूसरों को प्रभावित करता है। मानवीय अन्तःक्रिया में ''हाव–भाव शरीर के किसी भाग की ऐसी गति को कहते है जो व्यक्ति की मानसिक स्थिति को व्यक्त करती हैं, हाव–भाव की अपनी एक भाषा होती है। इसलिए गूंगे भाषा के स्थान पर हाव–भाव की सहायता से बहुत कुछ कहते है। प्रायः हम अचेतन रूप से जिन हाव–भावों को प्रकट करते है, वे हमारे वास्तविक विचारों तथा मनोवृत्तियों को शब्दों के द्वारा अभिव्यक्ति विचारों तथा मनोवृत्तियों से भी अधिक स्पष्ट रूप में व्यक्त करते है।

उसी प्रकार मानवीय अन्तःक्रिया में चेहरे की अभिव्यक्ति एक महत्वपूर्ण उत्तेजक है। चेहरे को देखकर सुख, दुख, क्रोध, भय, आ"चर्य आदि संवेगों को पढ़ना सबसे आसान होता है। छोटे बच्चे भी अपने माता–पिता के चेहरे की विभिन्न अभिव्यक्तियों को समझने लगते हैं, इसीलिए अलग–अलग अभिव्यक्ति प्रति उसकी प्रतिक्रियाएं भी अलग–अलग होती है। विद्यार्थी भी अपने ि"ाक्षक के चेहरे की अभिव्यक्ति को समझकर उसी के अनुसार व्यवहार करते हैं। अपने प्रियजनों को चेहरे को खु"ाी से खिल उठते देखकर हम भी खु"ाी से झूम उठते है और उन्हें अपनी बाहों में भर लेते हैं। इसी प्रकार लज्जा के गाल लाल हो जाना, भय से आंखे फैल जाना, क्रोध से भौंहें तन जाना आदि चेहरे की लोकप्रिय अभिव्यक्तियों हैं, जो कि दूसरे व्यक्तियों को एक वि"ोष ढंग से अपने प्रति प्रतिक्रिया या अन्तःक्रिया करने को प्रेरित या उत्तेजित करती है।

मीड के अनुसार मानवीय अन्तःक्रिया के उत्तेजक के रूप में स्वर अभिव्यक्ति का भी अपना अलग महत्व है। स्वर के सहारे केवल अपने संवेगों को ही अभिव्यक्ति नहीं किया जाता, बल्कि दूसरे में भी उसी प्रकार के संवेग उत्पन्न किए जा सकते हैं। हम भारी और कर्कष आवाज के द्वारा केवल अपने क्रोध को ही व्यक्त नहीं करते अपितु दूसरे के क्रोध को भी भड़का सकते है। इसी प्रकार मधुर आवाज प्यार को अभिव्यक्ति करती है, और बदले में में प्यार पा भी सकती है। अपने–अपने दे"ा के देहातो में ऐसे उदाहरण मिले है, स्वतन्त्रता–संग्राम में भी जयहिन्द, वन्देमातरम ' भारत माता की जय हो' आदि नारों ने लोगों में जो"ा कूट–कूट भरा, और वे अपने प्राणों तक की बाजी लगा बैठे। इन्ही नारों ने अंग्रेज शासको के सिंहासन तक को हिलाकर रख दिया। आसनिक अभिव्यक्ति भी मानवीय अन्तःक्रिया का एक उत्तेजक है। शरीर के विभिन्न आसनों के द्वारा भी दूसरों को प्रभावित किया जा सकता है। उदाहरणार्थ प्रेम में आलिंगन, चुम्बन आदि आसनिक अभिव्यक्तियों द्वारा दूसरे को भी उसी भांति व्यवहार करने या विरोधी क्रिया करने के लिए प्रेरित क्रिया करने के लिए प्रेरित किया जा सकता है। इसी प्रकार हाथ मलने, मुट्ठी बांधने, तनकर खड़े होने, सिर थामकर बैठ जाना आदि से विभिन्न संवेगों का पता चलता है, जो दूसरों को भी वैसी क्रिया करने को उत्तेजित कर सकते है।

हंसी भी एक सामाजिक उत्तेजना है। हंसी दूसरों को कई प्रकार से प्रभावित करती है। सबसे पहले दूसरों पर हंसने की क्रिया को ही लीजिए। हम दूसरों को बेढंगी पोषाक में देखकर हंसते है, दुसरों की बेवकूफी पर भी हंसते हैं इस प्रकार की हंसी के द्वारा हम उस व्यक्ति को यह बता देना चाहते है कि वह जो कुछ कर रहा है वह गलत है। हम उससे भिन्न प्रकार के व्यवहार की आ"ाा करते हैं। इस पर व्यक्ति अपने को सुधारने का प्रयत्न करता है। क्योंकि कोई भी आत्मचेतन व्यक्ति दूसरों की हंसी का पात्र बनकर नहीं रहना चाहता। इसलिए हंसी सामाजिक अनु"ाासन के रूप में कार्य कर सकती हैं।

मीड का भूमिका ग्रहण का सिद्धान्त :

इस सिद्धान्त के माध्यम से मीड ने यह द"र्ाने का प्रयास किया है कि आत्म के विकास में मानवीय अन्तःक्रिया ही प्रमुख आधार है। आत्म का विकास इस बात पर निर्भर करता है कि दूसरे के साथ अन्तःक्रिया करते हुए व्यक्ति स्वयं को अपने सामने एक वस्तु के रूप में प्रस्तुत करने की कितनी योग्यता रखता हैं। इसीलिए वह जब खिलौने से खेलता है तो उन्हे भी जानदार मान लेना है और उनके प्रति वैसा ही व्यवहार करता है जैसा कि उसके प्रति उसके माता या पिता व्यवहार करते है। मीड ने अन्य विद्धानों की भाति संदे"ावाहन अर्थात भाषा, एकात्मीकरण तथा भूमिकाग्रहण को आत्म के विकास का प्रमुख कारण माना और सिद्धांत प्रस्तुत किया।

एन0 के0 सिंधी (2006) मनुष्य के विश्व को मूलरूप से प्रतीकात्मक माना गया है। मनुष्य अपने इर्द–गिर्द होने वाली सारी घटनाओं का विभिन्न नामों एवं अर्थों के आधार पर अपने व्यवहार व क्रिया का निर्माण करता है। अतः मनुष्य स्वयं को बाह्य वातावरण के भौतिक रूप से नहीं लेकिन उसके सामाजिक व सांस्कृतिक अर्थो के आधार पर सम्बन्धित करता है। अतः यह वातावरण, प्रतीकों से अर्थ ग्रहण करता है। इस दृष्टिकोण से वातावरण प्रतीकात्मक है न कि मात्र भौतिक वस्तुओं को ही सांस्कृतिक नाम प्रदान किए जाते हैं। माथे की बिन्दी, भाल में तिलक, मांग में सिंदूर से लेकर, परिचय पत्र, पासपोर्ट पुस्तक, कार, घर के भी सांस्कृतिक व सामाजिक अर्थ होते हैं। सुहागन व विधवा होने के भौतिक प्रतीक हैं। व्यक्ति के किसी सामाजिक वर्ग की पहचान भी प्रतीकों से होती है। अभिवादन के तरीके– हाथ जोड़ना, हाथ मिलाना, गले लगना, पाँव छूने के भी भिन्न–भिन्न अर्थ होते हैं। सम्बन्धों की प्रकृति इनसे ही स्पष्ट होती हैं। प्रतीकीकरण की प्रक्रिया सृजनात्मक क्रिया है। इस प्रक्रिया के अंतर्गत हम हमारी इन्द्रिय क्रियाओं को एक रूपता प्रदान करते हैं जो कि अन्रूथा स्वरूपहीन अथवा अर्थहीन हो सकती है। समाज में व्यवस्था प्रतीकों से निर्मित होती है। दायें चलना या बायें, लाल बत्ती पर गाड़ी का रूकना, पुलिस की वर्दी पहने व्यक्ति के प्रतीकों के अनुरूप क्रियाए होती है। मीड (Herbert Mead) और हरबर्ट ब्लूमर (Herbert Blumer) ने अपनी लेखनियों के माध्यम से इस विचार को परिपक्व बनाने का प्रयास किया। हयूजेस (Hughes) ने इस विचार को आनुभाविक महत्व प्रदान किया। यहाँ यह कहना सही होगा कि प्रतीकात्मक अंतःक्रियावाद की विचारधारा अल्पगत की परम्परा के अंतर्गत मानी जाती है।

मीड ने जानवरों की प्रतिक्रिया एवं मनुष्य के व्यवहार में अन्तर किया। व्यवहार के लिये बुद्धि आवश्यक मानी गयी है और बुद्धि मनुष्य की विशिष्ट धरोहर है। इसके अतिरिक्त मीड ने यह भी कहा कि मनुष्य इस मायने में भी भिन्न है कि उसका 'स्व' है, वह एक ऐसा प्राणी है, जो कि विषय (Subject) व वस्तु (Object) दोनों हो सकता है अर्थात् मनुष्य अनुभव करता है और उस अनुभव के बारे में यह अनुभव करता है कि वह अनुभव कर रहा है। अतः जागरूक व सजग भी है। मीड के अनुसार जानवरों का जीवन

उत्तेजना प्रत्युत्तर (Stimulus-Response) द्वारा उत्पन्न सम्बन्धों पर निर्भर है। इन सम्बन्धों में स्वचालन का बोध होता है। जब कुछ घटित होता का व्यवहार क्रिया और अवसर के मध्य स्वचालित एवं निश्चयात्मक रूप से निर्मित नहीं होता। उनके व्यवहारों में बहुत अधिक मात्रा में लचीलापन होता है। एक मनुष्य किन्हीं परिस्थितियों में एक तरह से व्यवहार करता है और दूसरी परिस्थितियों में ठीक दूसरे रूप में। मनुष्य अपने व्यवहारों को अपेक्षाओं एवं सम्भावनाओं के आधार पर योजनाबद्ध कर सकते हैं। अपने विगत अनुभवों के आधार पर वे भविष्य के व्यवहार की योजना बना सकते हैं। अगर व्यक्तियों को भविष्य की पूर्वाभासी कल्पना करनी है, अपनी वर्तमान की क्रिया को योजनाबद्ध करना है और अतीत के व्यवहार पर चिन्तन करना है तो उनमें चिन्तन करने की क्षमता का होना आवश्यक है जिससे वे स्वयं को उसी तरह से देख सकें जिस तरह से वे किसी वस्तु को देखते हैं। उन्हें अन्य वस्तुओं अथवा व्यक्तियों के बारे में जिस तरह से सजगता होती है उसी तरह स्वयं के बारे में भी सजगता होनी चाहिये। यह स्व चेतना की क्षमता जिसके माध्यम से स्वयं के बारे में भी सजगता होनी चाहिये। यह स्व चेतना की क्षमता जिसके माध्यम से स्वयं का चिन्तन सम्भव है मनुष्य का विशिष्ट गुण बन जाता है। स्व चेतना के आधार पर व्यक्ति अपने बारे में वह धारण रख सकता है जो कि अन्य व्यक्ति उसकी ओर रखते हैं।

मीड ने बालक के विकास का उदाहरण देते हुए कहा कि बालक खेलने की प्रक्रिया में अपने इर्द–गिर्द घटित होने वाले व्यवहार की नकल करता है। कभी वह पुलिस वाला बन जाता है तो कभी पोस्स्टमैन और कभी मम्मी पापा अथवा कभी डाक्टर। खेल में वह औरों के दृष्टिकोण को समझने की क्षमता भी प्राप्त करता है। स्पर्धात्मक खेलों में हम तभी जीत सकते हैं जब हम पता लगा सकते हैं कि हमारा विरोधी किस तरह की चाल चलने वाला है। शतरंज के खेल में हमारी गोटियों को हम उसी से देखते हैं जैसे हमारा विरोधी देखता है। मीड के अनुसार बालक के अनुकरण की वृति शनैः–शनैः स्वचेतन की अभिव्यक्ति के रूप में परिवर्तित होती है जो कि माननीय विकास की साधारण व व्यापक प्रक्रिया का लघु स्वरूप है। स्वचेतन की प्रक्रिया लेखों में ही नहीं अपितु सारी सामाजिक क्रियाओं में देखी जा सकती है। कोई भी व्यक्ति यह तो नहीं जान सकता कि इस दुनिया का हर आदमी उसे किस तरह से देखता है क्योंकि दुनिया में इतने सारे आदमी है और यह कार्य बहुत कठिन हो जायेगा। इसके पहले बदले वह सामान्यीकृत अन्य (Generalized Others) के प्रति प्रतिक्रिया करता है। दूसरे अर्थों में वह साधारण प्रभावशाली एवं विशिष्ट दृष्टिकोण जो कि अन्य उसके लिए अपनाते हैं, के प्रति प्रतिक्रिया करता है। दूसरे अर्थों में वह साधारण, प्रभावशाली एवं विशिष्ट दृष्टिकोण जो कि अन्य उसके लिए अपनाते हैं, के प्रति प्रतिक्रिया करता है। औरों के विचारों एवं प्रतिक्रिया के प्रति समझ इसलिये सम्भव होती है क्योकि मनुष्य की

महत्वपूर्ण प्रतीकों की साझेदारी में भागीदारी है। अर्थात् मनुष्य एक दूसरे से भाषा व अन्य प्रतीकों के द्वारा अर्थयुक्त संचार स्थापित करने की क्षमता रखता है।

मीड के लिये एक महत्वपूर्ण दर्शनशास्त्रीय समस्या यह है कि मस्तिष्क और प्रकृति के मध्य कैसे स्थापित किये जायें। इसका अर्थ यह हुआ कि क्या वे तरीके, जिनका उपयोग प्राकृतिक विज्ञानों में होता है मनुष्य के मस्तिष्क और सामाजिक क्रियाओं को समझने में उपयोगी हो सकते हैं। मीड के अनुसार प्रकृति और मस्तिष्क में अत्यधिक भेद करना सही नहीं है क्योंकि मस्तिष्क भी प्रकृति का अंग है। मीड के अनुसार भाषा पर नियन्त्रण की क्षमता मनुष्य की शारीरिक क्रिया के विकास पर निर्भर करती है अर्थात् बोलने की क्षमता हमारे गले की भीतर कंठ अवयव के विकास पर निर्भर करती है।

मीड यह नहीं कह रहे हैं कि शारीरिक एवं जैविक विशेषताओं के आधार पर यथार्थ को समझा जाये और विचारों और भावनाओं को महत्वपूर्ण न माना जाये। उनके अनुसार विचार, चेतना एवं अनुभव सबका अध्ययन आवश्यक है। मीड ने सामाजिक जीवन की सामान्य घटनाओं के अध्ययन पर बल दिया है। मीड सामाजिक एवं प्राकृतिक विज्ञानों को निरन्तरता के आधार पर समझाते हैं। वे मस्तिष्क को वैज्ञानिक अध्ययन का उतना ही उपयुक्त विषय मानते हैं जैसा कि प्रकृति का अन्य कोई अंग। इसप्रकार आप यहा मीड के विचारों से भलीभांति परिचित हो गये होंगे।

4.5.3 हरबर्ट ब्लूमर का प्रतीकात्मक अन्तकियावाद का सिद्धांत

हरबर्ट ब्लूमर जो कि प्रो० जार्ज हरबर्ट मीड के विद्यार्थी थे, ने अपने गुरु के विचारों को और भी व्यवस्थित ढंग से विकसित करने का प्रयास किया। **ब्लूमर** के मतानुसार प्रतीकात्मक अन्तः क्रियावाद (Symbolic Interactionism) की निम्नलिखित तीन आधारभूत मान्यताएं हैं–

प्रथम (मनुष्य उन अर्थों या अभिप्रायों (Meaning) के आधार पर कार्य करते हैं जो कि वे अपने आस–पास की वस्तुओं या घटनाओं के लिए प्रयुक्त करते हैं। ऐसा नहीं है कि वे मात्र बाह्य प्रेरणा (external stimuli) जैसे सामाजिक शक्तियां अथवा आन्तरिक प्रेरणा (internal stimuli) जैसी सावयवी प्रवृति से प्रेरित होकर कार्य करते हैं।

द्वितीय, वस्तुओं या घटनाओं के जो अर्थ लगाये जाते हैं, वे अन्तःक्रिया की प्रक्रिया के दौरान पनपते हैं, न कि वे पहले से ही मौजूद होते हैं और भविष्य को प्रभावित करते हैं। कुछ हद तक ये अर्थ अन्तः क्रियात्मक परिस्थितियों के अन्तर्गत बनते, संशोधित होते, विकसित व परिवर्तित होते रहते हैं; न कि पूर्व निश्चित होते हैं।

तृतीय, इसीलिए वस्तुओं व घटनाओं का जो अर्थ वे लगाते हैं वह अन्तः क्रियात्मक सन्दर्भों के अन्तर्गत कर्ताओं के द्वारा प्रयुक्त प्रणालियों का परिणाम होता है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि अन्तःक्रियात्मक प्रक्रिया के अन्तर्गतकर्ता दूसरों की भूमिका को ग्रहण करता है और उस रूप में दूसरों के अर्थों व इरादों (intentions) की व्याख्या करता है। साथ ही, 'आत्म–अन्तःक्रिया की कार्यविधि' (the mechanism of self-interaction) द्वारा कर्ता परिस्थिति की परिभाषा का संशोधित करता, अथवा बदलता है क्रिया के विकल्पों को ढूंढता है एवं उनके सम्भावित परिणामों के सम्बन्ध में सोचता है। इस प्रकार वे अर्थ जो कि क्रिया को निर्देशित करते हैं, व्याख्यात्मक प्रणालियों के एक जटिल श्रृंखला के माध्यम से अन्तः क्रिया के सन्दर्भ में ही उत्पन्न होते हैं।

ब्लूमर का यह अन्तःक्रियावादी दृष्टिकोण उन समाजशास्त्रियों विशेषकर प्रकार्यवादी विद्वानों के सामाजिक क्रिया सम्बन्धी सिद्धान्तों से बिल्कुल भिन्न है जो क्रिया को सामाजिक व्यवस्थाओं के प्रतिबन्धों (Constraints) के प्रति एक यंत्रवत् प्रत्युत्तर के रूप में प्रस्तुत करते हैं। ब्लूमर की मान्यता यह है कि समाज को निरन्तर चलने वाली अन्तःक्रिया की एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में देखना चाहिए जिसके अन्तर्गत अनेक कर्ताएं एक दूसरे के साथ लगातार अनुकूल करने और परिस्थिति की व्याख्या करने में प्रयत्नशील हैं।

ब्लूमर इस बात को स्वीकार करते हैं कि मानव क्रिया कुछसीमा तक संरचित एवं नियमित होती है। उनका कहना है कि अधिकांश परिस्थितियों में जबकि लोग एक दूसरे के साथ अन्तः क्रिया कर रहे होते हैं तो उन्हें पहले से ही इस बात का स्पष्ट व दृढ़ बोध या ज्ञान होता है कि उन्हें किस भांति कार्य करना है और दूसरे लोग किस भांति कार्य करेंगे। फिर भी इस प्रकार का ज्ञान केवल सामान्य मार्गदर्शन के रूप में ही कार्य करता है क्योंकि वास्तविक परिस्थिति में क्रिया में अनेक संशोधन, आपसी तालेमेल, दांवपेच आदि की गुंजाइश, आपसी तालमेल, दांवपेच आदि की गुंजाइश सदा ही बनी रहती है।

ब्लूमर इस बात को भी स्वीकार करते हैं कि सामाजिक संस्थाएं मानव आचरण को एक सीमा के अन्दर बांधे रखती है। परन्तु संस्थागत कठोर नियमों व प्रतिबन्धों के होते हुए भी मानवीय पहल व सृजनात्मक (initiative and creativity) के गुंजाइश रहती ही है।

ब्लूमर यह चाहते हैं कि समाजशास्त्रीय अध्ययन के लिए एक ऐसा पद्धतिशास्त्र विकसित किया जाये जो कि मानवीय अन्तःक्रिया को उचित मान्यता दे सके। केवल कार्य–कारण सम्बन्ध स्थापित करना विषय को अत्यन्त सरल बना देना होगा। उदाहणार्थ, यह दावा किया जाता है कि उद्योगीकरण के संयुक्त परिवारों को एकांकी परिवारों में बदल दिया है। इस प्रकार का कार्य–कारण सम्बन्ध स्थापित करना न केवल अनुचित है, अपितु अवैज्ञानिक भी। ब्लूमर के अनुसार स्वयं उद्योगीकरण ने संयुक्त परिवार को

विघटित नहीं किया है, यह विघटन तो उद्योगीकरण के फलस्वरूप घटित हुआ है। उद्योगीकरण ने जिस परिस्थितियों को उत्पन्न किया है उनमें पारिवारिक सदस्यों के बीच होने वाली अन्तः क्रियाओं का परम्परात्मक स्वरूप बदल गया है। परिवार से बाहर सामाजिक अन्तःक्रियाओं के स्वरूप भी बदले हैं। फलतः पारिवारिक जीवन की परिभाषा भी बदली है। इस बदले हुए अर्थ या परिभाषा में संयुक्त परिवार 'फिट' नहीं बैठता है। इस कारण उसके स्वरूप को भी बदलना पड़ा है। दूसरे शब्दों में, परिवर्तित अन्तःक्रियात्मक प्रक्रिया के अन्तर्गत जब पारिवारिक जीवन की व्याख्या ही बदल जाती है तो परिवार का पुराना स्वरूप अर्थात् संयुक्त परिवार अर्थहीन हो जाता है और उसे एक नया अर्थ देने के लिए एकाकी परिवार का उदय होता है। इस प्रकार संयुक्त परिवार के स्थान पर एकाकी परिवार का आना वास्तव में बदली हुई अन्तःक्रियात्मक प्रक्रिया से सन्दर्भ में पारिवारिक जीवन को दिये गये अर्थों का ही प्रतिफल है।

अतः ब्लूमर का सुझाव है कि ''समाजशास्त्रीय शोधकर्ताओं को कुछ बने–बनाये पूर्व–निर्धारित निष्कर्ष में ही अपने अध्ययन–परिणामों को 'फिट' करने का प्रयास न करके कर्ता लगाये गये अर्थों को समझना होगा और इसके लिए उन्हें उस क्रियारत इकाई की भूमिका को अदा करना होगा जिसके व्यवहार का अध्ययन वे कर रहे हैं।'' (मुकर्जी, आर0एन0 : 2002)

इस प्रकार आप यहा प्रतीकात्मक अन्तक्रियावाद के संबध में विभिन्न विचारों से परिचित होकर अच्छी तरह से समझ गये होगें।

बोध प्रश्न–2

i) मै और मुझे की धारणा से क्या तात्पर्य है

.....

.....

.....

.....

.....

ii) प्रतीकात्मक अन्तक्रिया में मीड का क्या योगदान है

.....

.....

.....

.....

.....

iii) प्रतीकात्मक अन्तक्रिया में ब्लूमर के विचारों को संक्षिप्त में बताइए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

4.6 सारांश

इस इकाई में आपने प्रतीकात्मक अन्तक्रियावाद के बारे में जाना है। प्रतीकात्मक अन्तक्रियावाद एक सामाजिक–मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा हम समाज के सक्रिय सदस्य बनते है। इस प्रक्रिया में व्यक्ति समाज के मानदंडो और मूल्यों के आन्तरीकरण के साथ–साथ अपनी सामाजिक भूमिकाओं को सम्पादन करना सीखता है। इसी प्रक्रिया के द्वारा स्वः का विकास होता है। भाषा अथवा संकेतात्मक भाव भंगिमाओं पर आधारित संप्रेषण एवं अन्तर्क्रिया के वि"ाष्ट रूप को प्रतीकात्मक अन्तर्क्रिया कहते है। यह मानव व्यवहार की एक वि"ाष्टता है। मानव का संपूर्ण सामाजिक जीवन संप्रेषण की इस वि"ाष्टता पर आधारित है। इसी के साथ आपने कुले, मीड व ब्लूमर के विचारों को प्रतीकात्मक अंतक्रिया के संदर्भ में समक्षा है कि किस प्रकार व्यक्ति अपनी दिनप्रतिदिन की सामाजिक घटनाओं में प्रतीको के सहारे संक्षिप्त रूप से अंतक्रिया करता है और दूसरो को अर्थ प्रदान कर स्वयं धारणा बनाता है। इसी को समक्षाने के लिए मीड ने आगे मै, मुझे व सामान्यकृत अन्य के शब्दो का प्रयोग किया। प्रतीकात्मक अन्तःक्रिया में आपको यह समझाया गया कि किस प्रकार से व्यक्ति समाज में प्रतीकों, संकेतों व चिन्हों आदि को प्रयोग करते है और भाषा के सामाजिक पक्ष को समझाने का कार्य करते है।

4.7 पारिभाषिक शब्दावली

प्रतीक/संकेत– सामान्य अर्थो में कोई क्रिया या वस्तु जो किसी अन्य क्रिया,वस्तु या विचार का प्रतिनिधित्व करती है वो प्रतीक कहलाती है। अधिक वि"ाष्ट रूप में संस्कार, स्वप्न या मिथक के शब्दार्थ के क्षेत्रों में अति लघु अर्थ इकाई को प्रतीक कहा जाता है। मनोवि"लेषण में किसी दमित अचेतन इच्छा को प्रतिनिधित्व करने वाला व्यवहार या वस्तु को प्रतीक कहा जाता है।

प्रतीकात्मक अन्तर्क्रिया– भाषा अथवा संकेतात्मक भाव भंगिमाओं पर आधारित संप्रेषण एवं अन्तर्क्रिया के वि"ाष्ट रूप को प्रतीकात्मक अन्तर्क्रिया कहते है। यह मानव व्यवहार की एक वि"ाष्टता है। मानव का संपूर्ण सामाजिक जीवन संप्रेषण की इस वि"ाष्टता पर आधारित है।

परिवर्तन– किसी भी वस्तु में दो समय में होने वाली भिन्नता ही परिवर्तन कहलाती है।

समाजीकरण – समाजीकरण सीखने की एक आजन्म प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति समूह अथवा समाज की समय व स्थान सापेक्ष सामाजिक–सांस्कृतिक वि"ोषताओं को ग्रहण करता है, अपने व्यक्तित्व का विकास करता है जिससे वह समाज का क्रिया"ाील सदस्य बन सके। समाजीकरण द्वारा बच्चा सामाजिक प्रतिमानों को सीखकर उनके अनुरूप आचरण करता है इससे समाज में नियन्त्रण बना रहता है।

मैं तथा मुझे – **मैं** का अर्थ व्यक्ति द्वारा दूसरों के प्रति किये जाने वाले व्यवहार से है, तथा **मुझे** का अर्थ है व्यक्ति द्वारा किये गये व्यवहार पर दूसरों की प्रतिक्रिया जिसे व्यक्ति आन्तरीकृत करता है।

सामान्यकृत अन्य – किसी व्यक्ति की स्वयं के बारे में वह धारणा जो दूसरे लोग उसके बारे में रखते है।

4.8 अभ्यास/बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न–1

i) सामान्य अर्थो में कोई क्रिया या वस्तु जो किसी अन्य क्रिया,वस्तु या विचार का प्रतिनिधित्व करती है वो प्रतीक कहलाती है।

ii) किसी क्रिया को सामाजिक क्रिया तभी कहा जा सकता है जबकि इस क्रिया को करने वाले व्यक्ति या व्यक्तियों द्वारा लगाए गए व्यक्तिनिष्ठ अर्थ अर्थात प्रातीतिक अर्थ के कारण यह क्रिया दूसरे व्यक्तियों के व्यवहार द्वारा प्रभावित हो और उसी के अनुसार उसकी गतिविधि निर्धारित हो।

iii) भाषा अथवा संकेतात्मक भाव भंगिमाओं पर आधारित संप्रेषण एवं अन्तर्क्रिया के वि"ाष्ट रूप को प्रतीकात्मक अन्तर्क्रिया कहते है। यह मानव व्यवहार की एक वि"ाष्टता है। मानव का संपूर्ण सामाजिक जीवन संप्रेषण की इस वि"ाष्टता पर आधारित है।

iv) किसी भी वस्तु में दो समय में दिखायी देने वाली भिन्नता ही परिवर्तन है, **किंग्सले डेविस** के अनुसार, सामाजिक परिवर्तन से हम केवल उन्हीं परिवर्तनों को समझते है जो सामाजिक संगठन अर्थात समाज के ढांचे और प्रकार्यों में घटित होते है।

v) मीड

vi) परिवार

बोध प्रश्न–2

i) मीड ने व्यक्ति में आत्म–चेतन को स्पष्ट करने के लिए मैं (I) तथा मुझे (Me) शब्दों का प्रयोग किया है। मैं का अर्थ व्यक्ति द्वारा दूसरों की प्रति किये जाने वाले व्यवहार से है, तथा मुझे का अर्थ है व्यक्ति द्वारा किये गये व्यवहार पर दूसरों की प्रतिक्रिया जिसे व्यक्ति आन्तरीकृत करता है। 'मैं' और मुझे में अन्तः क्रिया के कारण ही 'स्व' का विकास होता है।

ii) मीड ने प्रतीकात्मक अंतक्रियावाद में व्यवहारों के लिए बुद्धि को आव"यक माना है, जो कि मनुष्य की वि"ाष्ट धरोहर है। इन्होने सामाजिक जीवन की सामान्य घटनाओं के अध्ययन पर बल दिया और कहा कि एक व्यक्ति की प्रतिक्रिया दूसरे व्यक्ति को उत्तेजना देती है। व्यक्ति अपनी सामान्य जीवन में अपने प्रतीको अर्थात हाव भाव, चेहरे व हाथो आदि के द्धारा अनेक समाज में दिनप्रतिदिन अंतक्रिया करता है जिससे दूसरा व्यक्ति उसका प्रतियुत्तर लगाता है। मीड के अनुसार स्वर के सहारे केवल अपने संवेगों को ही अभिव्यक्ति नहीं किया जाता, बल्कि दूसरे में भी उसी प्रकार के संवेग उत्पन्न किए जा सकते हैं। हम भारी और कर्कष आवाज के द्वारा केवल अपने क्रोध को ही व्यक्त नहीं करते अपितु दूसरे के क्रोध को भी भड़का सकते है। इसी प्रकार मधुर आवाज प्यार को अभिव्यक्ति करती है, और बदले में में प्यार पा भी सकती है।

iii) ब्लूमर ने प्रतीकात्मक अन्तः क्रियावाद (Symbolic Interactionism) की निम्नलिखित मान्यताएं के आधार पर बताया हैं–

- मनुष्य उन अर्थों या अभिप्रायों (Meaning) के आधार पर कार्य करते हैं जो कि वे अपने आस–पास की वस्तुओं या घटनाओं के लिए प्रयुक्त करते हैं।
- वस्तुओं या घटनाओं के जो अर्थ लगाये जाते हैं, वे अन्तःक्रिया की प्रक्रिया के दौरान पनपते हैं, न कि वे पहले से ही मौजूद होते हैं और भविष्य को प्रभावित करते हैं।
- इसीलिए वस्तुओं व घटनाओं का जो अर्थ वे लगाते हैं वह अन्तः क्रियात्मक सन्दर्भों के अन्तर्गत कर्ताओं के द्वारा प्रयुक्त प्रणालियों का परिणाम होता है।

4.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

Young, Kimball, (1946) *Hand book of social psychology,* kegan paul, california

Aron, Raymond, (1970) *Main currents in sociological thought,* vol.1 & 2, Penguin books, London

Bottomore, T.B., (1969) *Socioloogy: A guide to problem and literature,* Allen and unvin, London

Johnson,Harry M, (1960), *Sociology,* Allied Publ., New Delhi

Mead,G.H. (1934) *Mind,Self and Society*, The University of Chicago press,chicago

गुप्ता एवं शर्मा, (2006) *समाजशास्त्र*, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा

मुकर्जी, आर0एन0, (2002) *समकालीन उच्चतर समाज"ाास्त्रीय सिद्धान्त,* विवेक प्रका"ान, दिल्ली

सिंधी, नरेन्द्र कुमार (2004) समाज"ाास्त्रीय सिद्धान्त– विवेचना एवं व्याख्या दिल्ली

कोजर लेविस ए 1971 मास्टर्स ऑफ सोि"ायॉलाजिकल थॉट : आइडियाज इन हिस्टारिकल एण्ड सो"ाल कॉनटैक्स्ट, हरकोर्ट ब्रेस जोवैनोवि"व : न्यूयार्क

4.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

Coser, Lewis A, (1996) *Masters of Sociological Thought,* Rawat publication, Jaipur

Mead,G.H., *"A behavioristic account of the significant symbol"* Journal of philosophy, vol.19,p.160

Giddens, Anthony, (1993) *Sociology,* polity press, Cambridge

Mitchell, G Duncan, (1979) *A New Dictionary of Sociology,* Routledge & Kegan Paul, London

Huebner, Daniel (2014), *Becoming Mead,* the University of Chicago press, chicago

सिहं,जे0 पी0, (2008) समाजशास्त्र–अवधारणाएं एवं सिद्धान्त, पीएचआई लर्निंग नई दिल्ली

श्रीनिवास,एम0एन0 (1991) आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन, राजकमल प्रका"ान, दिल्ली

4.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. प्रतीकात्मक अन्तर्क्रिया से आप क्या समझते है, इसके प्रमुख सिद्धांतो की व्याख्या कीजिए ?
2. प्रतीको का अर्थ स्पष्ट करते हुये सामाजिक अन्तर्क्रिया का वर्णन कीजिए ?
3. प्रतीकात्मक अन्तर्क्रिया के संदर्भ में मीड के विचारों की व्याख्या कीजिए ?
4. प्रतीकात्मक अन्तर्क्रिया के संदर्भ में हरबर्ट ब्लूमर के विचारों का उल्लेख कीजिए ?

इकाई 5– स्वयं एवं समाज (Self and Society)

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 स्वयं एवं समाज का अर्थ

5.3 मै और मुझे का अर्थ

5.4 प्रतीको एवं अन्तकियाओं का समाज संदर्भ में अर्थ एवं महत्व

5.5 स्वयं एवं समाज

5.5.1 मीड का सिद्धान्त

5.6 सारांश

5.7 पारिभा"ाक 'ाब्दावली

5.8 अभ्यास/बोध प्रश्नों के उत्तर

5.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

5.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

5.11 निबंधात्मक प्रश्न

5.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आपके द्वारा संभव होगा–

- स्वयं व समाज की अवधारणा को समझना,
- मैं व मुझे को समझना
- सामान्यकृत अन्य को समझना,
- मीड के विचारो को स्वयं व समाज पर समाज संदर्भ में समझना,

5.1 प्रस्तावना

इस प्रस्तुत इकाई में आपको स्वयं एवं समाज के बारे में समझाया जायेगा कि किस प्रकार से व्यक्ति समाज में प्रतीकों व संकेतों आदि को प्रयोग करते हुये भाषा के सामाजिक पक्ष को समझने का कार्य करता है। समाज में ही मनुष्य अनेक अंन्तक्रियाए अन्य लोगों से अपनी जरूरतों के संदर्भ में करता है और अपनी आव"यकताओं को पूरा करता है। समाज के संपर्क से मानव का समाजीकरण होता है और वह समाज का क्रिया"ाील सदस्य बनता है। आगे मीड के विचारों को समाज संदर्भ में समझानें का प्रयास किया जायेगा। मीड ने स्वयं व समाज पर किस प्रकार अपने विचार व्यक्त किये तथा **मै व मुझे** की अवधारणा का प्रयोग किया व इन दोनों में भेद भी किया और **सामान्यकृत अन्य** की अवधारणा को भी समझाया। वह कहते है कि समाज के संपर्क के कारण बच्चा जो कुछ सीखता है वह पुनः अपने खेल के दौरान प्रकट करता है और अपना आत्म का विकास करता है। मीड आत्म के विकास में समाज को ज्यादा महत्व देता है कि समाज के सामान्यीकृत व्यवहार प्रत्येक व्यक्ति की आत्म चेतना को प्रभावित करते है जिससे उसके स्वयं का विकास होता है।

5.2 स्वयं एवं समाज का अर्थ

यहा पर हम स्वयं एवं समाज के अर्थ के बारे में आपको अवगत करायेगें कि किस प्रकार समाज में मानव समाज में अपने व्यवहार व अन्तक्रिया के द्वारा प्रतीको, संकेतो व चिन्हो आदि द्वारा अपने भाषा के सामाजिक पक्ष को समझाने का प्रयास करता है। **स्वय** वह धारणा है जो कि व्यक्ति समाज में संपर्क करके अन्तकिया करता है और सामाजिक संबधो के आधार पर अपनी राय बनाता है कि वह समाज रूपी आईने में अपने आपको देखकर कैसा महसूस करता है– अच्छा या बुरा। मै और मुझे की धारणा द्वारा वह अपना स्व का विकास करता है। जिससे उसका आत्म का विकास होता है। और वह अपनी अंतक्रियाओं को दूसरों द्वारा आकलन करके तय करता है।

जहां जीवन होता है वहां समाज भी होता है। व्यक्ति और समाज में काफी पारस्परिक निर्भरता पायी जाती है। जहां व्यक्ति ने एक–दूसरे के साथ सामाजिक संबध स्थापित कर समाज के निमार्ण में और विकास में सहायता प्रदान की वही समाज ने व्यक्ति का समाजीकरण कर उसके व्यक्तित्व के विकास में योग दिया है। व्यक्ति को संस्कृति से परिचित कराने में समाज ने सदैव महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। समाजषास्त्र में समाज शब्द का प्रयोग वि"ोष्ट अर्थ में किया है। यहा व्यक्ति व्यक्ति के बीच पाये जाने वाले सामाजिक संबधो के आधार पर निर्मित व्यवस्था को समाज कहा गया है। कुछ विद्धानों ने इसे अपने अनुसार परिभाषित किया है।

जार्ज सिमेल के अनुसार, समाज को उन व्यक्तियों का समूह माना है जो अन्तक्रिया द्वारा संबन्धित है।

गिडिंग्स ने कहा कि समाज स्वयं संघ है, संगठन है, औपचारिक संबधों का योग है, जिसमें सहयोग देने वाले व्यक्ति एक दूसरे के साथ जुडे हुए या सम्बद्ध है।

फेयरचाइल्ड के अनुसार, समाज व्यक्तियों का एक ऐसा समूह है जो अपने बहुत से प्रमुख हितों, जिनमें अनिवार्य रूप से स्वयं की रक्षा या भरण पोषण तथा स्वयं को स्थायित्व प्रदान करना सर्मिमिलत है को पूरा करने के लिए सहयोग करते है।

मैकाइवर एवं पेज ने समाज को सामाजिक संबधों के जाल या ताने – बाने के रूप में परिभाषित किया है। मैकाइवर एवं पेज ने संबधों की इस सदैव परिवर्तित होती रहने वाली जटिल व्यवस्था को समाज माना है। इस प्रकार विभिन्न विद्वानों ने अपने अनुसार समाज को परिभाषित किया है।

अतः स्पष्ट है कि सभी समाज"ाास्त्री समाज के लिए सामाजिक संबधों को आव"यक मानते है और वे ऐसे संबधों की जटिल व्यवस्था को ही समाज कहते है। समाज में सामाजिक संबधो को प्रधानता दी जाती है। यहा सामाजिक संबधो को समझ लेना आव"यक है।

सामाजिक संबध– समाजषास्त्र में जिन संबधों को प्रधानता दी जाती है उन्हे सामाजिक संबध कहा जाता है। सामाजिक संबधो के बिना समाज नही हो सकता है। जहां सामाजिक प्राणी पारस्परिक रूप से जागरूक रहते हुये और एक–दूसरे की अपेक्षाओं को ध्यान में रखते हुए व्यवहार करते है वही समाज पाया जाता है। **सामाजिक संबधों में दो तत्व आव"यक रूप से पाये जाते है– पारस्परिक जागरूकता व सामान्य जीवन में भागीदार होने की भावना।** सामाजिक संबध कई प्रकार के होते है जैसे– पति और पत्नी का, माता और पुत्र का, भाई और बहिन का, ग्राहक व दुकानदार का आदि। सामाजिक संबध कुछ आर्थिक आधार पर, कुछ राजनीतिक व धार्मिक व कुछ व्यक्तिक प्रकार के होते है। कुछ संबध प्रत्यक्ष तो कुछ अप्रत्यक्ष, कुछ शत्रुतापूर्ण तो कुछ मित्रतापूर्ण होते है। ये विभिन्न प्रकार के संबध पारस्परिक जागरूकता के कारण ही सामाजिक संबधों की श्रेणी में आते है। सामाजिक संबध व भौतिक संबध में प्रमुख अन्तर पारस्परिक जागरूकता का पाया जाता है। भौतिक संबध में पारस्परिक जागरूकता नही पायी जाती है। जैसे– एक टेबल पेन व किताबे रखी है इन सबका टेबल के साथ एक संबध अव"य है लेकिन उसमें मानसिक द"ाा का अभाव है। इसप्रकार स्वयं व समाज एक दूसरे से संबन्धित है और एक दूसरे को लाभ पहुचांते है। मनुष्य का स्व समाज से ही विकसित होता है।

5.3 मै और मुझे का अर्थ

गुप्ता एवं शर्मा (2014) मीड ने समाजीकरण व स्व व समाज सम्बन्धी अपने विचार "Mind, Self and Society" नामक अपनी कृति में प्रकट किये हैं। मीड यह मानते है कि व्यक्ति ही समाज का निर्माता है। जन्म के समय बच्चा एक जैविकीय व्यक्ति होता है, जिसमें बुद्धि का अभाव होता है। अतः वह आन्तरिक प्रेरणाओं से प्रेरित होकर ही क्रियायं करता है। धीरे–धीरे परिवार एवं अन्य समूहों के सम्पर्क के कारण बच्चे को यह समझ पैदा होने लगती है कि उससे लोग किस प्रकार के व्यवहार की अपेक्षा करते हैं और उसके व्यवहारों का क्या अर्थ लगाया जाता है। इस प्रकार बच्चे का 'स्व' व्यवहार से प्रभावित होने लगता है। मीड कहते है कि व्यक्ति में आत्म–चेतन का विकास किस प्रकार से होता है, इसे वह दो शब्दो के प्रयोग से समझाता है– **मैं (I)** तथा **मुझे (Me)।** इसलिए इस सिद्धान्त को **मैं और मुझे का सिद्धान्त** भी कहते है। मैं का अर्थ व्यक्ति द्वारा दूसरों की प्रति किये जाने वाले व्यवहार से है, तथा मुझे का अर्थ है व्यक्ति द्वारा किये गये व्यवहार पर दूसरों की प्रतिक्रिया जिसे व्यक्ति आन्तरीकृत करता है। 'मैं' और मुझे में अन्तः क्रिया के कारण ही 'स्व' का विकास होता है। प्रारम्भ में ये दोनों धारणाएं एक–दूसरे से अलग होती हैं, किन्तु परिवार एवं समाज के सम्पर्क के कारण उनमें समानता स्थापित होने लगती है और वे एक ही चीज के दो पहलू हो जाते है। व्यक्तित्व के मैं पक्ष को प्रत्यक्ष रूप से जानना अथवा अनुभव करना एक व्यक्ति के लिए कठिन होता है। इसकी अनुभूति व्यक्ति को तभी होती है जब वह किसी सामाजिक घटना के प्रति अपनी कोई व्यक्तिपरक तथा रचनात्मक पक्ष का प्रतिनिधित्व करता है। यह समाजीकरण की उपज है और इसका विकास समुदाय के दृष्टिकोण की प्रतिक्रिया स्वरूप होता है। दूसरे व्यक्ति उसे किस प्रकार से चाहते है यह भाव मुझे को प्रतिबिम्ति करता है। मुझे स्व के सामाजिक पक्ष का प्रतिनिधित्व करता है। इसका विकास आन्तरीकृत सामाजिक दृष्टिकोण द्धारा होता है जो एक व्यक्ति किसी सामाजिक स्थिति में अपनाता है। इन दोनों प्रकियाओं द्धारा स्व अथवा व्यक्तित्व का विकास होता है।

5.4 प्रतीकों एवं अन्तक्रियाओं का समाज संदर्भ में अर्थ व महत्व

किसी भी वस्तु में दो समय में होने वाली भिन्नता ही परिवर्तन कहलाती है। समाज परिवर्तन के दौर से हमे"ा गुजरता है। परिवर्तन प्रकृति का नियम है और यह परिवर्तन समाज में भाषा व प्रतीकों में भी होता रहता है। मनुष्य समाज में दूसरों से अपनी आव"यकताओं के लिए अन्तक्रिया करता रहता है, जिसमें वह भाषा व प्रतीाकों का प्रयोग करता है। आइए सबसे पहले प्रतीक व अन्तक्रिया को जानते है। आर0एन0मुकर्जी (2002) कोई क्रिया या वस्तु जो किसी अन्य क्रिया,वस्तु या विचार का प्रतिनिधित्व करती है वो प्रतीक कहलाती है। संस्कार, स्वप्न या मिथक के शब्दार्थ के क्षेत्रों में अति लघु अर्थ इकाई को प्रतीक

कहा जाता है। मनोवि"लेषण में किसी दमित अचेतन इच्छा को प्रतिनिधित्व करने वाला व्यवहार या वस्तु को प्रतीक कहा जाता है। विभिन्न विद्धानों ने प्रतीको के दो भेद बताये है– पहला **परिचयात्मक प्रतीकात्मकवाद** में मौखिक भाषण लिखना, टेलीग्राफ कोड, राष्ट्रीय झण्डा आदि वे प्रतीक है जिनसे किसी वस्तु की सूचना या परिचय में सुगमता हो जाती है दूसरा **संक्षिप्त प्रतीकात्मकवाद** अत्यन्त सरल प्रकार के होते है जैसे– टेलीग्राम भेजने के लिए एक वि"ोष प्रकार का टिक टिक शब्द एक वि"ोष प्रकार का प्रतीक बन जाता है तथा चुप रहने के लिए हाथ की उंगुली होठो पर रख लेना इस बात का संकेत / प्रतीक करता है कि अब बोलना नी है। सामाजिक जीवन में प्रतीकों का अत्यधिक महत्व होता है क्योंकि इनका कार्य सामाजिक व व्यक्तिगत व्यवहारों का संगठन और नियन्त्रण करना होता है (मुकर्जी, आर0एन0: 2002)। अब थोडा अन्तक्रिया को जानते है। जब व्यक्तियों की क्रियाएं एक दूसरे की क्रियाओं के सन्दर्भ में तथा उनसे प्रभावित होते हुए घटित होती है तो उस प्रक्रिया को अर्थात क्रिया के प्रत्युतर में क्रिया को अन्तः क्रिया कहते है। **मैरिल तथा एलड्रिज के अनुसार**, ''सामाजिक अन्तःक्रिया वह सामान्य प्रक्रिया है जिसमें दो या दो से अधिक व्यक्तियों में अर्थपूर्ण सम्पर्क की स्थापना होती है और जिसके फलस्वरूप उनके व्यवहार में थोडा–बहुत परिवर्तन न आ जाता है।

बोध प्रश्न–1

i) पुस्तक "Mind, self and society" किसकी है ?

.....

.....

ii) अन्तक्रिया क्या है ?

.....

.....

.....

.....

iii) स्व क्या है ?

.....

.....

.....

iv) समाज की कोई एक परिभाषा लिखिए ?

.....

.....

.....

5.5 स्व एवं समाज

मीड का सिद्धान्त

गुप्ता एवं शर्मा (2004) अमेरिका के ि"ाकागो वैचारिक परम्परा के एक अग्रणी दा"ार्निक और अर्थक्रियावादी मीड को समाजषास्त्र के क्षेत्र में एक नवीन परम्परा की आधारि"ाला रखने का गौरव प्राप्त है। मीड की प्रसिद्ध पुस्तक **"Mind, Self and Society"** सन् 1934 में उनकी मृत्यु के बाद प्रकाि"ात हुयी, उन्होनें सामाजिक मनोविज्ञान की एक नवीन समाज"ाास्त्रीय ढंग से व्याख्या की। इस पुस्तक में मीड ने पुर्णत समाज पर आधारित अनुभव, मानवीयसमूह जीवन में भाषा प्रतीक और संप्रेषण का महत्व भूमिका धारण की प्रक्रिया के माध्यम से उन तरीकों का जिनसे हमारे शब्द और मुखाभाव दूसरों में प्रतिक्रियाएं उत्पन्न करती है स्व की परावर्ती और प्रतिवर्ती प्रकृति तथा क्रिया की मुख्यता जैसे विषयों का गूढ वर्णन वि"लेषण किया है। मीड ने वेबर की क्रिया की धारणा तथा इसके समाज वैज्ञानिक बोध को समझाने के लिये आवेगों, स्थितियों की परिभाषाओं और निष्पादन के रूपों के आधार पर निर्मित विभिन्न प्रकार की क्रियाओं में अन्तर को भी स्पष्ट किया है। मीड एक दा"ार्निक के साथ साथ मनोवैज्ञानिक भी थे। एक दा"ार्निक के रूप में वे स्व के उदभव को समझने और समझाने में रूचि रखते थे। इसके लिए इन्होंनें स्व की उत्पत्ति की सामाजिक अन्तर्क्रियावादी व्याख्या प्रस्तुत की। एक मनोवैज्ञानिक के रूप में वे प"ाु और मानवीय व्यवहार की बेजौडता और अनूठेपन के लिए उसकी अन्तर्निहित सांकेतिक प्रवृति को महत्वपूर्ण बताया। व्यक्ति के समाजीकरण में मीड ने समाज की महत्ती भूमिका को इंगित करते हुए लिखा कि बालक को अपने बारे में सामाजिक अन्तर्क्रिया के द्धारा ही बोध होता है। इसी के द्धारा स्व की उत्पत्ति होती है। स्व का ज्ञान उसे दूसरे व्यक्तियों की भूमिकाओं को ग्रहण करने से ही होता है। मीड ने इन्हे सामान्यकृत अन्य कहा है।

मीड के अनुसार, **मै** एक ऐसे असमाजीकृत ि"ा"ाु को इंगित करता है जो नैसर्गिक जरूरतों और इच्छाओं का एक पूंज होता है। **मै** व्यक्ति के जैवकीय पक्ष को अभिव्यक्त करता है। इसके विपरीत **मुझे** सामाजिक स्वचेतन व्यक्ति का प्रतिनिधित्व करता है। जिसकी उत्पत्ति दूसरों के द्धारा स्वयं को देखने की

जानकारी से होती है अर्थात दूसरे व्यक्ति उसे किन निगाहों से देखते है उसी रूप में वह स्वयं को देखने लगता है। मीड ने मुझे की अवधारणा का प्रयोग सामाजिक **स्व** के लिये किया है। मीड के स्व संबधी विचार सी0एच0कूले से मिलते जुलते है जो उनके एक सहकर्मी रहे है। कूले की भांति मीड यह जानने के इच्छुक थे कि **स्व का** निमार्ण कैसे होता है। यह कैसे कार्य करता है तथा इसके निर्माण में दूसरे व्यक्तियों की क्या भूमिका है। जहां कूले ने इस प्रक्रिया को समझने के लिये **स्व के आत्मदर्पण** की अवधारणा का प्रयोग किया है वही मीड ने इसके लिये **मै, मुझे और मानस** की अवधारणाओं का प्रयोग किया है।

मीड के योगदान के प्रमुख आयाम उनकी पुस्तक माइण्ड, सेल्फ व सोसाइटी में प्रस्तुत किए गए हैं।

(1) **प्रतीकीकरण (Symbolization) :** क्रिया व अंतःक्रियाओं का निर्वाह प्रतीको के माध्यम से होता है। ये प्रतीक अर्मूत, मूर्त, मौखिक–भाषायी, लिखित भाषायी, सावयवी–अभाषायी, होते हैं।

(2) **'स्व' निर्माण** : स्व के निर्माण का प्रक्रियात्मक स्वरूप है। औरों की धारणा के अनुसार स्व की धारणा, स्थिति अनुरूप स्व की धारणा स्व द्वारा स्व की धारणा ये आयाम स्व को प्रवाही मानते हैं न कि उसे संरचनात्मक स्थायित्व। 'स्व' बदलता रहता है, वह प्रवाही है।

(3) **स्व–बोध व स्व नियन्त्रण** : व्यक्ति की अपनी पहचान होती है जो कि स्व–धारणा अथवा स्व बोध है। स्व बोध के अनेक स्तर हैं, भावगत (Emotive), विचारगत (Mental), शरीरगत (Pyhsical) स्थितिगत, (Situational), सोपानगत (Stages of life, Career)

(4) व्यक्ति अपनी क्रियाओं को स्वयं नियन्त्रित करता है। एक सी और एक ही स्थिति में विभिन्न व्यक्तियों के उसके नियन्त्रण का गुण, शैली व प्रकृति अलग–अलग होती हैं।

मीड (Mead) के योगदान को तीन अभ्युपगों के आधार पर समझा जा सकता है।

(1) सामाजिक यथार्थ को व्यक्ति, प्रतीकात्मक स्वरूप के माध्यम से समझता है।

(2) सामाजिक यथार्थ मनुष्य के नये प्रत्यक्षण के आधार बदलता रहता है।

(3) यह विश्व वस्तुपरक घटना है जो कि स्थायित्व के प्रतिमान व परिवर्तन की प्रक्रिया को चलाने व रोकने का कार्य करती है।

मीड में सोचने वाले व्यक्ति एवं सामाजिक शक्तियों के मध्य द्विभाजन को पाटने का प्रयास : किया गया है। मीड ने इस विचार का प्रतिपादन किया कि **स्व** एक सामाजिक इकाई है। जो कि सामाजिक अन्तक्रिया के माध्यम से निर्मित होती है। व्यक्ति समाज के माध्यम से मूल्यों और विचारों को आत्मसात

करते है। इन मूल्यों को वह अपने स्वप्रत्यक्षण का इस प्रकार अंग बना देता है कि उपयुक्त अवसरों पर वे सहज भाव से उभरते है और उपयुक्त भावनाओं के निर्माण के आधार पर उपयुक्त क्रिया कराने में मदद करते हैं। मनुष्य का स्व होता है जो कि समाजीकरण की प्रकिया में समाज में अन्तक्रिया द्धारा निर्मित होता है। और स्वं के बारे में अपनी धारणा बनाता है। इसलिए स्वं के लिए समाज महत्वपूर्ण है *(सिंधी,एन0के0: 2004)।* अतः आप यहा स्वं व समाज को मीड के विचारों की दृष्टि से समझ गये होगें।

बोध प्रश्न–2

i) मै और मुझे की धारणा से क्या तात्पर्य है

.....

.....

.....

.....

.....

ii) सामाजिक संबधों में कौन से दो तत्व पाये जाते है

.....

.....

.....

.....

.....

iii) मीड के योगदान को स्व व समाज संदर्भ में संक्षिप्त मे समझाइए।

.....

.....

.....

.....

5.6 सारांश

इस इकाई में आपने स्वयं व समाज के बारे में जाना है। कि किस प्रकार मीड स्वयं व समाज के बारे में विचार करके इसे समझाते है मीड ने **स्व व समाज** संबधी अपने विचार **"Mind, Self and Society"** नामक अपनी कृति में प्रकट किये हैं। मीड ने इस विचार का प्रतिपादन किया कि **स्व** एक सामाजिक इकाई है। जो कि सामाजिक अन्तक्रिया के माध्यम से निर्मित होती है। व्यक्ति समाज के माध्यम से मूल्यों और विचारों को आत्मसात करते है। इन मूल्यों को वह अपने स्वप्रत्यक्षण का इस प्रकार अंग बना देता है कि उपयुक्त अवसरों पर वे सहज भाव से उभरते है और उपयुक्त भावनाओं के निर्माण के आधार पर उपयुक्त क्रिया कराने में मदद करते हैं। मनुष्य का स्व होता है जो कि समाजीकरण की प्रकिया में निर्मित होता है। **स्व** के अन्तर्गत इगो, स्वबोध व सावयवी होते है। इसके माध्यम से व्यक्ति स्वयं की क्रिया के लिए वस्तु बन जाता है। वह स्वयं से ऐसे क्रिया कर सकता है जैसे किसी अन्य से करता है। अतः स्व विषय व वस्तु दोनों ही बन जाता है। यह अन्तर उसे जानवर से अलग करता है। व्यक्ति में अनेक स्व हो जाते है। स्व की कोई स्थायी संरचना नही होती है। उसकी अंतक्रियाओं में गत्यात्मकता होती है। हालांकि उसके व्यवहार में एक सीमा तक एकरूपता भी होती है। मीड ने **मै और मुझे** का भेद करके यह स्पष्ट किया कि मैं पूर्णरूपेण सामाजिक नही होता है। न ही वह पूर्ण निष्क्रिय अथवा स्वचालित होता है। मै स्थिति वि"व को परिवर्तित करता है। व्यक्ति हर स्थिति में वि"व को अपने ढंग से परिभाषित व निर्मित करता है। वह सीमित होता है। इस दृष्टि से हर क्रिया में एक तरह की मौलिकता है। मुझे सामाजिक स्व है मै आन्तरिक वास्वविक स्व है। मुझे में सामाजिक नियन्त्रण है वह मानदण्डों से निर्मित है एवं संचालित है। संगठित समुदाय व्यक्ति के स्व को एकता प्रदान करता है। जिसे सामान्यीकृत अन्य के आधार पर समझा जा सकता है। मीड यह मानते है कि 'स्व' के जन्म के बाद ही व्यक्ति सामाजिक अनुभव करता है। मीड ने उस प्रक्रिया का भी उल्लेख किया है जिसके द्वारा 'स्व' का विकास होता है और व्यक्ति तब दूसरों के विचारों को ग्रहण करता है। जन्म के समय बच्चा एक जैविकीय व्यक्ति होता है, जिसमें बुद्धि का अभाव होता है। अतः वह आन्तरिक प्रेरणाओं से प्रेरित होकर ही क्रियायें करता है। धीरे–धीरे परिवार एवं अन्य समूहों के सम्पर्क के कारण बच्चे को यह समझ पैदा होने लगती है कि उससे लोग किस प्रकार के व्यवहार की अपेक्षा करते हैं और उसके व्यवहारों का क्या अर्थ लगाया जाता है। इस प्रकार बच्चे का 'स्व' व्यवहार से प्रभावित होने लगता है। इसे ही वह '**सामान्यकृत अन्य (Generalized others)** कहता हैं सामान्यकृत अन्य का अर्थ है कि – किसी व्यक्ति की स्वयं के बारे में वह धारणा जो दूसरे लोग उसके बारे में रखते है। मीड ने बताया कि व्यक्ति में आत्म–चेतन का विकास किस प्रकार से होता है, **मैं (I)** तथा **मुझे (Me)** शब्दों का प्रयोग किया है। 'मैं' और मुझे में अन्तः क्रिया के कारण ही 'स्व' का विकास होता है। प्रारम्भ में

ये दोनों धारणाएं एक–दूसरे से अलग होती हैं, किन्तु परिवार एवं समाज के सम्पर्क के कारण उनमें समानता स्थापित होने लगती है और वे एक ही चीज के दो पहलू हो जाते है। अनुकरण, संकेत व भाषा के माध्यम से बच्चा दूसरों के व्यवहारों को ग्रहण करता है और उसमें विभिन्न प्रकार की भूमिकाओं को निभानें की क्षमताएं पैदा हो जाती है। जिसको मीड आत्म का विकास कहता है। इसप्रकार आप इस इकाई में स्व व समाज के संबध को भली भाति जान गये होगें।

5.7 पारिभाषिक शब्दावली

स्व– **स्व** वह धारणा है जो कि व्यक्ति समाज में संपर्क करके अन्तकिया करता है और सामाजिक संबधो के आधार पर अपनी राय बनाता है कि वह समाज रूपी आईने में अपने आपको देखकर कैसा महसूस करता है– अच्छा या बुरा। मै और मुझे की धारणा द्धारा वह अपना स्व का विकास करता है। जिससे उसका आत्म का विकास होता है। और वह अपनी अंतक्रियाओं को दूसरों द्धारा आकलन करके तय करता है।

अन्तक्रिया– कोई क्रिया जिसमें एक कर्ता की क्रिया से दूसरे कर्ता की क्रिया में अथवा उसमें परिवर्तन उत्पन्न होता है, तब वह अन्तक्रिया कहलाती है।

प्रतीक/संकेत– सामान्य अर्थो में कोई क्रिया या वस्तु जो किसी अन्य क्रिया,वस्तु या विचार का प्रतिनिधित्व करती है वो प्रतीक कहलाती है। अधिक वि"ाष्ट रूप में संस्कार, स्वप्न या मिथक के शब्दार्थ के क्षेत्रों में अति लघु अर्थ इकाई को प्रतीक कहा जाता है। मनोवि"लेषण में किसी दमित अचेतन इच्छा को प्रतिनिधित्व करने वाला व्यवहार या वस्तु को प्रतीक कहा जाता है।

प्रतीकात्मक अन्तर्क्रिया– भाषा अथवा संकेतात्मक भाव भंगिमाओं पर आधारित संप्रेषण एवं अन्तर्क्रिया के वि"ाष्ट रूप को प्रतीकात्मक अन्तर्क्रिया कहते है। यह मानव व्यवहार की एक वि"ाष्टता है। मानव का संपूर्ण सामाजिक जीवन संप्रेषण की इस वि"ाष्टता पर आधारित है।

परिवर्तन– किसी भी वस्तु में दो समय में होने वाली भिन्नता ही परिवर्तन कहलाती है।

समाजीकरण – समाजीकरण सीखने की एक आजन्म प्रक्रिया है जिसके द्धारा व्यक्ति समूह अथवा समाज की समय व स्थान सापेक्ष सामाजिक–सांस्कृतिक वि"ोषताओं को ग्रहण करता है, अपने व्यक्तित्व का विकास करता है जिससे वह समाज का क्रिया"ाील सदस्य बन सके। समाजीकरण द्धारा बच्चा सामाजिक प्रतिमानों को सीखकर उनके अनुरूप आचरण करता है इससे समाज में नियन्त्रण बना रहता है।

मैं तथा मुझे – **मैं** का अर्थ व्यक्ति द्धारा दूसरों के प्रति किये जाने वाले व्यवहार से है, तथा **मुझे** का अर्थ है व्यक्ति द्धारा किये गये व्यवहार पर दूसरों की प्रतिक्रिया जिसे व्यक्ति आन्तरीकृत करता है।

सामान्यकृत अन्य – किसी व्यक्ति की स्वयं के बारे में वह धारणा जो दूसरे लोग उसके बारे में रखते है।

5.8 अभ्यास/बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न–1

i) जी0 एच0 मीड

ii) कोई क्रिया जिसमें एक कर्ता की क्रिया से दूसरे कर्ता की क्रिया में अथवा उसमें परिवर्तन उत्पन्न होता है, तब वह अन्तक्रिया कहलाती है। तथा इस क्रिया को सामाजिक क्रिया तभी कहा जा सकता है जबकि इस क्रिया को करने वाले व्यक्ति या व्यक्तियों द्वारा लगाए गए व्यक्तिनिष्ठ अर्थ अर्थात प्रातीतिक अर्थ के कारण यह क्रिया दूसरे व्यक्तियों के व्यवहार द्वारा प्रभावित हो और उसी के अनुसार उसकी गतिविधि निर्धारित हो।

iii) स्व मौलिक रूप से एक सामाजिक संरचना है और यह सामाजिक अनुभवों के कारण पैदा होता है।

iv) फेयरचाइल्ड के अनुसार, समाज व्यक्तियों का एक ऐसा समूह है जो अपने बहुत से प्रमुख हितों, जिनमें अनिवार्य रूप से स्वयं की रक्षा या भरण पोषण तथा स्वयं को स्थायित्व प्रदान करना सम्मिलत है को पूरा करने के लिए सहयोग करते है।

बोध प्रश्न–2

i) मीड ने व्यक्ति में आत्म–चेतन को स्पष्ट करने के लिए **मैं (I) तथा मुझे (Me)** शब्दों का प्रयोग किया है। मैं का अर्थ व्यक्ति द्वारा दूसरों की प्रति किये जाने वाले व्यवहार से है, तथा मुझे का अर्थ है व्यक्ति द्वारा किये गये व्यवहार पर दूसरों की प्रतिक्रिया जिसे व्यक्ति आन्तरीकृत करता है। 'मैं' और मुझे में अन्तः क्रिया के कारण ही 'स्व' का विकास होता है।

ii) सामाजिक संबधों में दो तत्व आव"यक रूप से पाये जाते है– **पारस्परिक जागरूकता व सामान्य जीवन में भागीदार होने की भावना।**

iii) मीड ने समाजषास्त्र में कई प्रमुख सिद्धान्त दिये है। जिसमें स्व व समाज के संबध में उन्होनें अपनी पुस्तक "Mind Self and Society" में बताया कि व्यक्ति ही समाज का निर्माता है जिसमें दिमाग और 'स्व' होता है। जन्म के समय बच्चा एक जैविकीय व्यक्ति होता है। धीरे–धीरे परिवार एवं अन्य प्राथमिक व द्वितीयक समूहों के सम्पर्क के कारण बच्चा यह समझने लगता है कि उससे लोग किस प्रकार के व्यवहार

की अपेक्षा करते हैं और उसके व्यवहारों का क्या अर्थ लगाया जाता है। इस प्रकार बच्चे का 'स्व' व्यवहार से प्रभावित होने लगता है। इसे ही वह 'सामान्यकृत अन्य (Generalized others) कहता हैं। वह अपना स्व का विकास, समाज में अन्तक्रियाओं व उनके व्यवहार द्धारा निधार्रित करता है।

5.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

Young, Kimball, (1946) *Hand book of social psychology,* kegan paul, california

Aron, Raymond, (1970) *Main currents in sociological thought,* vol.1 & 2, Penguin books, London

Bottomore, T.B., (1969) *Socioloogy: A guide to problem and literature,* Allen and unvin, London

Johnson,Harry M, (1960), *Sociology,* Allied Publ., New Delhi

Mead,G.H. (1934) *Mind,Self and Society*, The University of Chicago press,chicago

गुप्ता एवं शर्मा, (2006) *समाजशास्त्र*, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा

मुकर्जी, आर0एन0, (2002) *समकालीन उच्चतर समाज"ाास्त्रीय सिद्धान्त,* विवेक प्रका"ान, दिल्ली

सिंधी, नरेन्द्र कुमार (2004) समाज"ाास्त्रीय सिद्धान्त– विवेचना एवं व्याख्या दिल्ली

कोजर लेविस ए 1971 मास्टर्स ऑफ सो"ायॉलाजिकल थॉट : आइडियाज इन हिस्टारिकल एण्ड सो"ाल कॉनटैक्स्ट, हरकोर्ट ब्रेस जोवैनोवि"व : न्यूयार्क

5.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

Coser, Lewis A, (1996) *Masters of Sociological Thought,* Rawat publication, Jaipur

Mead,G.H., "*A behavioristic account of the significant symbol*" Journal of philosophy, vol.19,p.160

Giddens, Anthony, (1993) *Sociology,* polity press, Cambridge

Mitchell, G Duncan, (1979) *A New Dictionary of Sociology,* Routledge & Kegan Paul, London

Huebner, Daniel (2014), *Becoming Mead,* the University of Chicago press, chicago

सिहं,जे0 पी0, (2008) समाजशास्त्र–अवधारणाएं एवं सिद्धान्त, पीएचआई लर्निंग नई दिल्ली

5.11 निबंधात्मक प्रश्न

5. अन्तर्क्रिया से आप क्या समझते है, इसकी विस्तार से व्याख्या कीजिए ?
6. प्रतीको का अर्थ स्पष्ट करते हुये सामाजिक अन्तर्क्रिया का वर्णन कीजिए ?
7. स्व व समाज के संदर्भ में मीड के विचारों की व्याख्या कीजिए ?
8. मीड के सिद्धान्तों का उल्लेख कीजिए ?

इकाई 6– समाजीकरण

(Socialization)

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 समाजीकरण का अर्थ, परिभाषा एवं उद्देश्य

6.3 समाजीकरण के स्तर एवं प्रकिया

6.4 समाजीकरण के प्रमुख अभिकरण

6.5 समाजीकरण के प्रमुख सिद्धांत

6.5.1 कूले का सिद्धांत

6.5.2 मीड का सिद्धांत

6.5.3 फायड का सिद्धांत

6.5.4 दुर्खीम का सिद्धांत

6.6 सारांश

6.7 पारिभाषिक शब्दावली

6.8 अभ्यास/बोध प्रश्नों के उत्तर

6.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

6.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

6.11 निबंधात्मक प्रश्न

6.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आपके द्वारा संभव होगा–

- समाजीकरण के अर्थ एवं परिभाषा को समझना,
- समाजीकरण एक आजन्म प्रक्रिया है इसके उददे"यों को जानना,
- समाजीकरण के प्रमुख स्तर एवं प्रक्रिया को समाज संदर्भ में समझना,
- समाजीकरण के प्रमुख अभिकरणों को जानना,
- समाजीकरण के प्रमुख सिद्धांतो को समाज संदर्भ में समझना।

6.1 प्रस्तावना

इस प्रस्तुत इकाई में आपको समाजीकरण के बारे में समझाया जायेगा कि किस प्रकार मानव f"i"u जन्म से लेकर मृत्यू तक उसका समाजीकरण होता है। समाजीकरण एक आजन्म समय व स्थान सापेक्ष सीखने की प्रक्रिया है जिसमें उसे एक संस्कृति से दूसरी संस्कृति से परिचित कराया जाता है और इस आजन्म प्रक्रिया में व्यक्ति को अपने समूह एवं समाज के मूल्यों, जनरीतियों, लोकाचारों, आद"ोर्ा एवं सामाजिक उदद"ेयों को सीखता है। समाज के संपर्क से मानव का समाजीकरण होता है और वह समाज का क्रिया"ाील सदस्य बनता है। सामाजिक संपर्क के अभाव में मानव की शरीर रचना कितनी ही सुन्दर क्यों न हो वह विकसित नहीं हो सकती। समाजीकरण के द्धारा ही शरीर रचना सामाजिक–सांस्कृतिक वि"ोषताओं को ग्रहण करने एवं उनसे अनुकूलन करने की क्षमता का विकास कर पाती है। इस इकाई में आगे समाजीकरण को स्पष्ट करते हुये इसके स्तर एवं प्रक्रिया तथा समाजीकरण किन प्रमुख संस्थाओं द्धारा होता है उससे परिचित कराया जायेगा साथ ही समाजीकरण के प्रमुख सिद्धांतो के बारे में भलिभांति आपको जानकारी दी जायेगी, जिससे आप समाजीकरण को समाज संदर्भ में समझ सके।

6.2 समाजीकरण का अर्थ एवं परिभाशा

यहा पर हम आपको समाजीकरण के अर्थ एवं परिभाषा के बारे में अवगत करायेगें कि किस प्रकार समाज में मानव f"i"u का जन्म से लेकर मृत्यू तक समाजीकरण होता है। समाजीकरण एक आजन्म प्रक्रिया है। जैसे मानव में भाषा का प्रयोग करने की क्षमता होती है जो समाज के संपर्क के कारण ही व्यक्ति समाज के रीति–रिवाजों, प्रथाओं, मूल्यों, वि"वासों, संस्कृति एवं सामाजिक गुणों को सीखता है और एक सामाजिक प्राणी का दर्जा प्राप्त करता है। सामाजिक सीख की इस प्रक्रिया को समाजीकरण कहते है समाजीकरण की प्रक्रिया प्राणी"ास्त्रीय प्राणी को सामाजिक प्राणी में बदल देती है। समाजषास्त्र में समाजीकरण नामक अवधारणा का प्रयोग उन प्रक्रियाओं के लिए किया जाता है जिनके द्धारा व्यक्ति को सामाजिक–सांस्कृतिक संसार से परिचित कराया जाता है। इस प्रक्रिया में संस्कृति को एक पीढी से दूसरी पीढी को हस्तान्तरित

किया जाता है इसमें व्यक्ति अपने समूह एवं समाज के मूल्यों, जनरीतियों, लोकाचारों, आद"ार्ों एवं सामाजिक उदद"ेयों को सीखता है। समाजीकरण को विभिन्न विद्धानों ने परिभाषित किया है–

टालकॉट पारसन्स के अनुसार, व्यक्ति द्धारा सामाजिक मूल्यों को सीखने और उन्हें आन्तरीकृत करने को ही समाजीकरण कहते है।

हेनरी जॉन्सन के अनुसार, समाजीकरण एक प्रकार की सीख है जो सीखने वाले को सामाजिक कार्य को करने के योग्य बनाती है।

हारालाम्बोस के अनुसार, वह प्रक्रिया जिसके द्धारा व्यक्ति अपने समाज की संस्कृति को सीखते है समाजीकरण के नाम से जानी जाती है।

ग्रीन के अनुसार, समाजीकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्धारा बच्चा सांस्कृतिक वि"ोषताओं, आत्मपन और व्यक्तित्व को प्राप्त करता है।

गिलिन एवं गिलिन के अनुसार, समाजीकरण से हमारा तात्पर्य उस प्रक्रिया से है जिसके द्धारा व्यक्ति, समूह में एक क्रिया"ाील सदस्य बनता है, समूह की कार्यविधियों से समन्वय स्थापित करता है, उसकी परम्पराओं का ध्यान रखता है और सामाजिक परिस्थितियों से अनुकूलन करके अपने साथियों के प्रति सहन"ाक्ति की भावना विकसित करता है।

अतः उपरोक्त उल्लेखित परिभाषाओं से स्पष्ट है कि समाजीकरण सीखने की एक आजन्म प्रक्रिया है जिसके द्धारा व्यक्ति समूह अथवा समाज की समय व स्थान सापेक्ष सामाजिक–सांस्कृतिक वि"ोषताओं को ग्रहण करता है, अपने व्यक्तित्व का विकास करता है जिससे वह समाज का क्रिया"ाील सदस्य बन सके। समाजीकरण द्धारा बच्चा सामाजिक प्रतिमानों को सीखकर उनके अनुरूप आचरण करता है इससे समाज में नियन्त्रण बना रहता है। अब हम समाजीकरण के उदद"ेयों के बारे में बात करते है।

समाजीकरण के उददेश्य–

ब्रूम तथा सेजनिक ने समाजीकरण के संदर्भ में **चार प्रमुख उददेश्यों** का उल्लेख किया जो कि निम्न है–

अ) आधारभूत नियमबद्धता का विकास– समाजीकरण का उदद"ेय समाज के भावी लक्ष्यों और सामाजिक मूल्यों को ध्यान में रखते हुये व्यवहार करना सीखना होता है। मानव की प्राकृतिक प्रेरणाएं उसे नियमहीन व्यवहार करने को प्रोत्साहित करती है लेकिन समाजीकरण के द्धारा उसको नियमबद्धता और

अनु"ाासन में रहना सीखाया जाता है। इस प्रक्रिया में व्यक्ति को अपने लक्ष्यों की प्राप्ति तत्काल ही करने पर जोर नहीं देती अपितु परिस्थिति के अनुसार लक्ष्यों को आगे के लिए स्थगित करना, छोड देना अथवा सं"ाोधित करना भी सिखाती है।

ब) आंकाक्षाओं की पूर्ति–समाजीकरण नियमबद्धता के साथ ही आंकाक्षाओं की पूर्ति भी करता है, अनु"ाासन व्यक्ति को कोई पुरस्कार नहीं देकर आंकाक्षाओं की पूर्ति में सहायक होता है। समाज सामान्य सांस्कृतिक मूल्यों का ही संचारण नहीं करता है वरन वि"ाष्ट आंकाक्षाओं भी पैदा करके व्यक्ति का समाजीकरण करता है। जैसे– धर्म कुछ लोगो में पुरोहित बनने की इच्छा पैदा करता है।

स) सामाजिक भ्मिकाओं को निभाने की सीख– समाजीकरण द्धारा व्यक्ति को अपनी सामाजिक भूमिका निभाने और उससे संबन्धित अभिवृतियों को सीखाने का कार्य भी किया जाता है। समूह की सदस्यता की मांग है कि व्यक्ति सामान्य योग्यता के साथ–साथ वि"ाष्ट भूमिकाओं को निभाने की योग्यता भी प्राप्त करें। व्यक्ति समाज में अनेक पद ग्रहण करता है तो कई लोगो के संपर्क में वह आता है प्रत्येक प्रस्थिति के अनुसार व्यक्ति को एक वि"ोष प्रकार की भूमिका निभानी होती है जो समाजीकरण के द्धारा ही सीखी जाती है।

द) क्षमताओं का विकास– समाजीकरण का उददे"य व्यक्ति में ऐसी क्षमताओं को पैदा करना होता है जिससे कि वह अपने को समाज के अनुकूलन बना ले। सरल समाजों के परम्परागत व्यवहार पीढी दर पीढी हस्तान्तरित होते रहते है और सामान्यतः अनुकरण के द्धारा उन्हें सीखा एवं दैनिक जीवन में प्रयोग में लाया जाता है किन्तु उच्च तकनीकी ज्ञान से परिपूर्ण समाजों में औपचारिक ि"ाक्षा द्धारा सामाजिक क्षमताओं का विकास करना समाजीकरण का प्रमुख कार्य है।

अतः आप यहा पर समाजीकरण के अर्थ, परिभाषा एवं उददे"य से भलिभाति परिचित हो गये होगें। अब हम आपको समाजीकरण के स्तर एवं प्रक्रिया के बारे में बताते है।

6.3 समाजीकरण के स्तर एवं प्रकिया

समाजीकरण के स्तर एवं प्रकिया–

गुप्ता एवं शर्मा (2014)समाजीकरण की प्रकिया बच्चे के जन्म के बाद से ही प्रारम्भ हो जाती है। पारसन्स कहते है कि बच्चा उस पत्थर के समान है जिसे जन्म के समय सामाजिक तालाब में फेक दिया जाता है जिसमें रहकर वह अपना समाजीकरण करता है और समाज का अंग बन जाता है। मानव शरीर की रचना अन्य प्राणियों से श्रेष्ठ है विकसित मस्तिष्क केन्द्रित की जाने वाली दृष्टि घुमायी जा सकने वाली गर्दन हाथ

की रचना और अंगूठे की वि"िाष्ट स्थिति आदि के कारण मानव में ही सभ्यता एवं संस्कृति के निर्माण की क्षमता है उसकी इसी वि"िाष्ठ संरचना के कारण ही उसमें सीखने के गुण पाये जाते है और सामाजिक सीख के द्वारा वह अपने व्यकित्व का विकास करता है सीखने का कार्य केवल समाज में ही संभव है। बच्चे का मस्तिष्क इतना कोमल होता है कि उसे किसी भी दि"ाा में मोडा जा सकता है। विभिन्न समयो व स्तरों में बच्चा विभिन्न प्रकार की बाते सिखता है और यह कार्य परिवार, पडौस, मित्र मंडली, स्कूल व द्वितीयक संस्थाओं द्वारा किया जाता है। समाजीकरण का कार्य विभिन्न स्तरो व सोपानो मे होता है जिनका उल्लेख विभिन्न विद्धानों ने निम्न किया है–

1. मौखिक अवस्था–

इस अवस्थाा मे f"ाु"ा अपना सुख दुख मुंह के माध्यम से व मुंह के हाव भाव से प्रकट करता है इसलिए इसे मौखिक अवस्था कहते है। इस अवस्था में बच्चा अपनी मां के संपर्क में रहता है। जब गर्भ में भ्रूण गर्म और आरामपूर्वक रहता है। जन्म के समय f"ाु"ा प्रथम संकट का सामना करता है, उसे सांस लेनी होती है पेट भरने के लिए काफी श्रम करना पडता है, उसे सर्दी गीलेपन और अन्य असुविधाओं से पीडा होती है वह रोता व चिल्लाता है, समाजीकरण का यह प्रथम चरण है जिसमें बच्चा मौखिक रूप से दूसरों पर निर्भर है। इस सोपान की अवधि लगभग एक डेढ वर्ष तक की होती है। पारसन्स कहते है कि परिवार के अन्य सदस्यों के लिए बच्चा एक संपदा से थोडा अधिक होता है इस अवस्था में बच्चा अपनी व अपनी मां की भूमिका में अन्तर नही कर पाता है। वह अपनी मां को पृथक नही समझता है इसमे माता और f"ाु"ा परस्पर मिले रहते है इस स्थिति को फ्रायड प्राथमिक परिचय कहते है।

2, शौच अवस्था –

यह समाजीकरण की दूसरी अवस्था है जिसमें यहा आयु लगभग डेढ–दो वर्ष की आयु से प्रारम्भ होकर तीन चार वर्ष की आयु तक चलती है। इस अवस्था में बच्चे से यह अपेक्षा की जाती है कि वह अपने आपको थोडा बहुत स्वयं संभाले। इस अवस्था में उसे शौच प्र"िाक्षण दिया जाता है। साथ ही हाथ साफ करना, कपडे मैले न करना आदि की भी उसे f"ाक्षा दी जाती है। इस अवस्था में बच्चा अपनी और अपनी मां की भूमिका को आन्तरीकृत करता है। सही व्यवहार करने पर उसे मां से प्यार और गलत व्यवहार करने पर दण्ड मिलता है। इस अवस्था में बच्चे के लिए वह साधक नेता के रूप में होती है। वह बच्चे को अपने परिवार व समाज के सामान्य मूल्यों से परिचित करवाती है तथा प्रेम भाव द्वारा उसे सीखाती चली जाती है। इसमें बच्चा परिवार व अन्य सदस्यों के संपर्क में आकर प्यार, क्रोध, स्नेह, विरोध और सहयोग के अनुसार अपने को ढालना सीखता है जिससे बच्चे में व्यक्तित्व के विविध गुण उत्पन्न होतें है। समाजीकरण की इस अवस्था में बच्चे को दूध छुडाते समय, शौच प्र"िाक्षण देते समय तथा उसे कष्ट उठाते देखकर मां को आनन्द नही मिलता, फिर भी उसके अन्तिम परिणामों को सोचकर वह अपने को सान्त्वना देती है। माता

की दुहरी भूमिका होने के कारण वह कुछ हद तक बालक को परिवार के अन्य सदस्यों के दबाव से बचा पाती है और वह अपनी भावात्मक भूमिका निभाती है इस अवस्था में बच्चा थोडा बहुत बोलने व चलने फिरने लगता है और उसके सामाजिक संबन्धों का विकास हो जाता है क्योंकि वह अब मां के अतिरिक्त अन्य सदस्यों के संपर्क में भी आता है।

3, इडिपल या तादात्मीकरण अवस्था–

यह अवस्था लगभग चार वर्ष की आयु से प्रारम्भ होकर बारह –तेरह वर्ष की आयु तक चलती है। इसमें बच्चा पूरे परिवार का सदस्य हो जाता है। इस अवस्था में वह यौनिक भेद देख लेता है उसे इसके बारे में थोडा ज्ञान होता है लेकिन उसे इसका पूरा ज्ञान नही होता है। धीरे–धीरे उसमें यौन भावना अव्यक्त रूप से विकसित होने लगती है। बच्चे से यह अपेक्षा की जाती है कि वह अपने लिंग के अनुसार अपने को ढाले। बच्चे को दिये जाने वाले खिलौने व वस्त्र उनके लिंग के अनुसार ही तय होते है। जिससे बच्चा लिंगभेद करना सीखता है। और अपने हमजोलियो के समूह में जाता है।

जानसन ने सफल तादात्मय के लिए निम्न परिस्थितियों का होना बताया है– 1. लडके को पिता व लडकी को मां का पूरा स्नेह मिले, 2. बच्चा परिवार या समूह में जिस सदस्य को अपना आद"र्ा मानता है उसका बच्चे से धनिष्ठ संबन्ध हो, 3. अन्य महत्वपूर्ण व्यक्ति वि"ोष रूप से माता लडके को अपने पिता को आद"र्ा मानने के लिए प्रोत्साहित करे, 4. पिता का मा से सम्मानपूर्ण व्यवहार हो। जानसन कहते है कि ये परिस्थितिया बच्चे में भावात्मक सुरक्षा उत्पन्न करेंगी और उसे कुण्ठा तथा तनावों से बचायेगी जो कि सफल समाजीकरण के लिए आव"यक है। तादात्मीकरण स्थापना दो रूपों में होती है– एक सामाजिक भूमिका से तादात्मीकरण और दूसरा सामाजिक समूह से तादात्मीकरण। सामाजिक भूमिका से तादात्मीकरण करने के लिए वह अपनी भूमिका को आन्तरीकृत करता है। उससे संबन्धित योग्यता को प्राप्त करने का प्रयत्न करता है जैसे– बालक पिता, भाई, संबन्धियों तथा परिवार के अन्य सदस्यों की आ"ाओं के अनुरूप भूमिका निभाना सीखता है। समूह से तादात्मीकरण करने के लिए वह परिवार, अपने लिंग के साथियों, स्कूल के साथियों व मित्रों के अनुरूप कार्य करता है।

4. कि"ाोरावस्था– कि"ाोरावस्था भारी तनाव का काल होती है। यह अवस्था प्रायः यौवनारम्भ के समय से शुरू हो जाती है जिसमें युवा बालक अथवा बालिका अपने माता पिता के नियन्त्रण से अधिकाधिक स्वतन्त्रता चाहते है वि"ोष रूप से यौन संबधी गतिविधियों में। क्योंकि बालक या बालिका के शरीर में कुछ स्वष्ट शारीरिक परिवर्तन होने लगते है। इन शारीरिक परिवर्तनों के कारण कि"ाोर के मन में एक तरफ स्वतन्त्रता की कामना त्रीव होती जाती है तथा दूसरी ओर वह स्वतन्त्रता से भयभीत होने लगता है। वह जीवन साथी का चुनाव और अपने व्यवसाय का चुनाव आदि के निर्णय उसे स्वयं ही लेने हो तो उसके सामने दुविधा अव"य आ जाती है क्योंकि उसके बाद उसे नयी स्थिति के अनुसार नये कार्य करने होते है।

उससे यह अपेक्षा भी की जाती है कि वह निर्णय करते समय पारिवारिक परम्पराओं और सांस्कृतिक मूल्यों को ध्यान में रखे। कि"ाोर पर लगाये गये इस प्रकार के नियन्त्रण उसके मनोभावों के अनुकूल होते है जिससे तनाव बराबर बना रहता है। कि"ाौरावस्था में बच्चा परिवार के अतिरिक्त पडोस, विद्यालय, खेल के साथियों और नवागन्तुकों के संपर्क में आता है इन सभी के विचारों एवं व्यवहारों से उसे समायोजन करना होता है। वह अपनी संस्कृति के अनेक निषेधों एवं यौन संबन्धी निषेधों का पालन करना सीखता है। इस अवस्था में उसे अनेक नयी परिस्थितियों का सामना करना पडता है और उसे कई नये–नये अनुभव होते है। कई समाजों में तो कि"ाोर को आर्थिक क्रियाओं में भी भाग लेना होता है। अपने आर्थिक जीवन में सफलता बहुत कुछ उसके समाजीकरण पर निर्भर है। इस अवस्था में सांस्कृतिक मूल्यों एवं व्यक्तिगत अनुभवों के द्वारा कि"ाोर में आत्म नियत्रंण की क्षमता पैदा होती है।

5. युवावस्था– युवावस्था में व्यक्ति को अनेक नये पद प्राप्त होते है और उनसे संबन्धित भूमिकाओं को उसे निभाना होता है। उसे एक पति, पिता, दामाद, अधिकारी आदि की प्रास्थितियां प्राप्त होती है और उनके अनुरूप भूमिकाएं भी निभानी होती है। इस अवस्था में वह परिवार तथा वाहय जगत में कई महत्वपूर्ण दायित्वों को निभाता है कभी कभी उसे भूमिका संघर्ष की स्थिति का सामना करना पडता है।

6. प्रौढावस्था– प्रौढावस्था में व्यक्ति पर सामाजिक दायित्व और बढ जाते है उस पर अपने बच्चों की ि"ाक्षा दीक्षा एवं विवाह आदि का भार पडता है उसे मां बाप के रूप में एवं आफिस में वरिष्ठ अधिकारी या सेवक के रूप में नये उत्तरदायित्व संभालने होते है।

7. वृद्धावस्था– वृद्धावस्था में व्यक्ति में शारीरिक, मानसिक व सामाजिक दृष्टि से कई परिवर्तन आ जाते है अब वह दादा, परदादा, श्वसुर, नाना आदि के रूप में कई नये पद ग्रहण करता है और उसके अनुरूप भूमिका भी निभाता है अगर नौकरी करता है तो वह सेवानिर्वत होकर नयी जीवन शैली में नयी चुनौतियों का सामना करना पडता है और पीढीगत चुनौतियों का भी सामना करना पडता है। अतः व्यक्ति का समाजीकरण आजन्म चलता है। आप यहा पर समाजीकरण के सोपानों को समक्ष गये होगें।

बोध प्रश्न–1

i) समाजीकरण का क्या अर्थ है ?

.....

.....

ii) समाजीकरण की कोई एक परिभाषा लिखिए ?

.....

.....

.....

iii) समाजीकरण प्रक्रिया का एक प्रमुख उददे"य लिखिए ?

.....

.....

.....

iv) समाजीकरण के प्रमुख स्तरों को लिखिए ?

.....

.....

.....

v) किस विद्धान ने समाजीकरण को 'समाज के नियमों के अनुसार सीख' के रूप में परिभाषित किया है ?

.....

.....

.....

vi) समाजीकरण की प्रक्रिया में सर्वाधिक योगदान होता है

अ) परिवार

ब) पडोस

स) नातेदारी

द) विघालय संस्था

हॉ / नही बताइए ?

vii) क्या समाजीकरण की प्रक्रिया आजन्म प्रक्रिया है ?

.....

6.4 समाजीकरण के प्रमुख अभिकरण

समाजीकरण के प्रमुख अभिकरण

मानव के समाजीकरण की प्रक्रिया आजन्म चलती रहती है इस प्रक्रिया में अनेक प्राथमिक व द्वितीयक संस्थाओं का योगदान होता है जिससे उसका समाजीकरण सही दि"ाा में हो सके। मानव समय समय पर अनेक बाते अपने जीवन में सीखता चला जाता है। विभिन्न विद्धानों द्धारा समाजीकरण के प्रमुख अभिकरण निम्न बताए गये है–

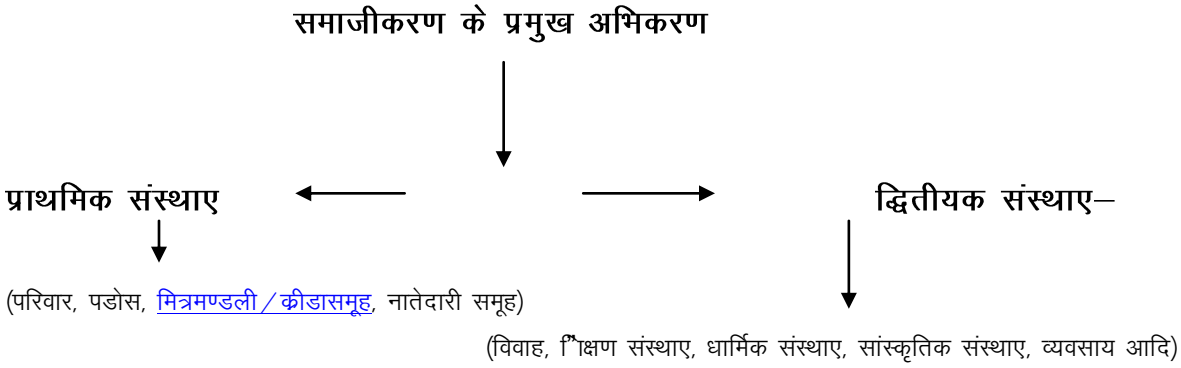

समाजीकरण के प्रमुख अभिकरण का उल्लेख निम्न है–

1. **परिवार**
2. **पडौस**
3. **कीडा समूह**
4. **नातेदारी समूह**
5. **विवाह**
6. **ि"ाक्षण संस्थाए**
7. **धार्मिक संस्थाए**
8. **आर्थिक संस्थाए**
9. **राजनीतिक संस्थाए**
10. **व्यवसाय समूह आदि**

उपरोक्त का विवरण निम्न प्रकार से है–

1. **परिवार**– परिवार का बच्चे का समाजीकरण करने में महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि बच्चा परिवार के संपर्क में ही सबसे पहले आता है। परिवार में ही उसे समाज के रीतिरिवाजों, लोकाचारों, प्रथाओं व संस्कृति का ज्ञान होता है साथ ही पति– पिता, पत्नी –माता, पुत्र– भाई व पुत्री–बहिन आदि का

ज्ञान होता है। परिवार एक सार्वभौमिक संस्था है। जैल्डिज ने छप्पन समाजों का मानव"ाास्त्रीय अध्ययन करके समाजीकरण में माता एवं पिता की भूमिका का उल्लेख किया और कहा कि माता – भावात्मक नेतृत्व व पिता– साधक नेतृत्व प्रदान करते है। पिता से बच्चा खेत व्यवसाय व नौकरी आदि के बारे में ज्ञान करता है और माता से घर आदि भावात्मक चीजें सीखता है जब पिता किसी गलत बात के लिए बच्चे को दण्ड देता है तो उस समय मां भावात्मक लगााव रखकर उसका समाजीकरण करती है। इस प्रकार बच्चे पर मां व पिता का प्रभाव सर्वाधिक पडता है। परिवार के अन्य सदस्य जैसे– भाई व बहनों का भी बच्चे के समाजीकरण पर गहरा प्रभाव पडता है। सदस्यों के पारस्परिक प्रेम, सहयोग, त्याग, अधिकार, बलिदान, सेवा, भाषा व आद"ार्ा आदि से बच्चे में भी सदगुण जन्म लेते है। अधिकार व दायित्व बच्चा परिवार में ही सीखता है। परिवार में जो कुछ बच्चा सीखता है वह उसके जीवन की स्थायी पूंजी होती है। लेकिन अगर परिवार विघटित है तो उसका बच्चे पर प्रतिकुल प्रभाव पडता है। अतः परिवार ही सर्वप्रथम बच्चे के समाजीकरण में महत्वपूर्ण है। अतः कहा जा सकता है कि परिवार ि"ा"ाू की प्रथम पाठ"ाला है।

2. कीडा समूह–

परिवार के बाद बच्चे का संपर्क कीडा समूह से होता है वह अपने मित्रों के साथ खेलता है, हॅसता है, बोलता है और कभी कभी समूह में लडाई भी करता है। कीडा के दौरान वह कभी जीतता है तो वह कभी हारता है। इस दौरान वह समूह के साथ अनुकूलन करना सीखता है कि दुसरो के साथ वह कैसा व्यवहार करे। अपनी प्रं"ासा व अपनी अवहेलना भी सुनना सीखता है। इस प्रकार कीडा समूह की प्रकिया समाजीकरण की प्रक्रिया को सफल बनाने में सहायक होती है। रिजमैन कहते है कि खेल समूह वर्तमान समय में समाजीकरण करने वाला एक महत्वपूर्ण समूह है क्योंकि आजकल व्यक्ति मार्ग द"ार्न एवं दि"ाानिर्दे"ा के लिए अपने हम उम्र के लोगों पर अधिक निर्भर करता है इसलिए व्यक्ति अपने निर्णयों के लिए मित्रों की सलाह को अधिक महत्व देता है।

3. **पडोस**– समाजीकरण में बच्चे के पडोस का महत्वपूर्ण स्थान होता है बच्चा जब चलना फिरना जान जाता है तो वह पडोस में भी जाना शुरू करता है पडोस के सदस्यों के द्धारा वह प्यार स्नेह व्यवहार करना सीखता है बच्चे अनजाने में ही पडोस से कई बाते सीख जाते है जैसे बच्चे के व्यवहार व प्यार द्धारा उसकी पडोस से प्रं"ासा व निन्दा भी होती है जिससे उसके समाजीकरण में आचरण की भावना पैदा होती है।
4. **नातेदारी समूह**– समाजीकरण में नातेदारी का स्थान महत्वपूर्ण होता है। व्यक्ति की नातेदारी दो संबधो– रक्तसंबधी व वैवाहिक संबधी होती है। इसमें बच्चा माता–पिता, चाचा–चाची, दादा दादी, भाई–बहिन आदि रि"तों को जानकर उनके प्रति कैसे व्यवहार किया जाता है उसको सीखता है।

तथा वैवाहिक नातेदारी में मामा–मामी, मौसी, नाना नानी आदि जो नातेदारी होती है उनको जानकर उनके प्रति अपनी अपेक्षा व व्यवहार को सीखता है। किसी नातेदारी में घनिष्ठ व हंसी मजाक संबध व किसी नातेदारी में परिहार संबध होतें है । अतः नातेदारी भी बच्चे के अच्छे समाजीकरण में अगर सही दि"ाा की ओर अपने कर्तव्य करे तो बच्चे का समाजीकरण अच्छा होता है।

5. **विवाह**– विवाह का भी व्यक्ति के समाजीकरण पर गहरा प्रभाव पडता है। विवाह के बाद लडके व लडकी को पति व पत्नी की भूमिका निभानी होती है। विवाह के बाद दोनो पर नये दायित्व आ जाते है तथा एक दूसरे के प्रति प्रेम व सम्पर्ण का भाव होता है आगे चलकर यही दोनो माता पिता, दादा दादी व नाना नानी आदि प्रस्थितियां ग्रहण करते है साथ ही दोनो वर व वधू पक्ष की नातेदारी को भी निभाना सीखता है। इस प्रकार व्यक्ति विवाह के माध्यम से प्रत्येक प्रस्थिति को आत्मसात कर उसकी भूमिका को निभाना सीखता है। जिसके परिणामस्वरूप व्यक्ति का समाजीकरण होता रहता है।

उपरोक्त प्राथमिक संस्थाओं के अतिरिक्त अनेंक द्वितोयक संस्थाऐं भी व्यक्ति के समाजीकरण में अपना योगदान करती है। आइए अब हम द्वितीयक संस्थाओं के योगदान को जानते है–

6. **f"ाक्षण संस्थाएं**– f"ाक्षण संस्थाओं का समाजीकरण में महत्वपूर्ण योगदान होता है। f"ाक्षण संस्थाओं में– स्कूल, कालेज एवं वि"वविधालय आदि संस्था आती है। f"ाक्षण संस्थाओं में बच्चा अपने अध्यापको के संपर्क में आकर कठिन परिश्रम करके ज्ञान व f"ाक्षा अर्जित करता है तथा किसी एक अध्यापक को अपना आद"ा मानता है उसके अनुसार अपने को ढालने की कौf"ा"ा करता है। साथ ही सहपाठियों के साथ व्यवहार व नवीन किताबों से ज्ञान अर्जित करता है। f"ाक्षा ही व्यक्ति की एक मात्र कुंजी होती है जो उसका चहुमुंखी विकास करती है। अतः बच्चे के समाजीकरण में f"ाक्षा उसे रोजगार देने के साथ ही उसे कैसे व्यहार व कैसा ज्ञान अर्जित करना है वह सीखाती है। जिससे उसका समाज में सही दि"ाा की ओर समाजीकरण होता है।
7. **धार्मिक संस्थाए**– व्यक्ति के जीवन पर धर्म का गहरा प्रभाव पडता है अपने धर्म के अनुरूप व्यक्ति आचरण, पूजा, पाठ, श्रद्धा, व्यवहार आदि सीखता है और अन्य धर्म के ग्रन्थ व उस धर्म से संबधित जानकारी प्राप्त करता है। धर्म व्यक्ति को अनु"ाासन में रहना सीखाता है। ई"वरीय भय एवं श्रद्धा के कारण वह नैतिकता तथा अन्य गुणों को ग्रहण करता है। स्वयं मैलोनॉवस्की कहते है कि संसार में मनुष्यों का कोई भी समूह धर्म के बिना नही रह सकता चाहे वह कितना भी जंगली क्यों

न हो। सभी धार्मिक संगठन अपने अनुयायियों में मानवीय गुणों को बढाने का कार्य करते है। इसप्रकार धार्मिक संस्थाए मनुष्यों का धर्म संदर्भ में समाजीकरण करती है।

8. **राजनीतिक संस्थाए**– राजनीतिक संस्थाओं के माध्यम से व्यक्ति राजनीति की बाते सिखता है। राज्य, सरकार, कानून, दल व पंचायत आदि राजनीति के संबध में व्यक्ति का समाजीकरण होता है। ताना"ाही व प्रजातन्त्रीय शासन में भिन्न –भिन्न प्रकार का समाजीकरण होता है। ताना"ाही सरकार में व्यक्ति के जीवन में सुरक्षा की भावना कम होती है जबकि प्रजातान्त्रिक राज्य में सरकार लोगो की भलाई के लिए अनेक कार्य करती है जिससे समाज में उन्नति हो सके और व्यक्तियों को व्यक्तित्व निर्माण के सुअवसर प्राप्त हो सके। जिससे व्यक्ति समाज व राजनीति के महत्वपूर्ण पहलुओ की सही जानकारी प्राप्त कर समाज में अपनी भूमिका निभाता है।
9. **आर्थिक संस्थाए**– व्यक्ति को आर्थिक संबधी जानकारी आर्थिक संस्थाओं के माध्यम से होती है। यह संस्थाए व्यक्ति को जीवन यापन के लिए समर्थ बनाती है। आर्थिक जीवन में प्रवे"ा करते ही व्यक्ति को अपने कारखानों, कार्यालय, व्यापारिक प्रतिष्ठान एवं दूसरे संगठनों में ऐसे बहुत से व्यक्तियों से अनूकुलन करना होता है जिनके आर्थिक उददे"य एक दूसरे से भिन्न होते है। इन समूहो के बीच सहयोग और समायोजन के साथ व्यक्ति को प्रतिस्पर्धा में भी कु"ाल बनना आव"यक होता है। वर्तमान में सामाजिक स्थिति का निर्धारण व्यक्ति की आर्थिक स्थिति से होने लगा है। व्यक्ति अपनी आर्थिक गतिविधियों जैसे– बाजार, मूल्य प्रणाली, रूपया व उत्पादन आदि की जानकारी प्राप्त कर सीखता है। जिसके परिणामस्वरूप आर्थिक संस्थाओं के द्धारा उसका समाजीकरण होता है।
10. **व्यवसाय समूह**– व्यक्ति जिस व्यवसाय में लगा होता है उसके मूंल्यों को भी ग्रहण करता है। वह व्यवसाय के दौरान अनेक व्यक्तियों के पदानुसार संपर्क में आता है। जिससे वह व्यावसायिक ज्ञान व गुण ग्रहण करता है तथा प्र"ाासनिक ढांचे से परिचित होता है और अपना समाजीकरण करता जाता है।*(अग्रवाल, जी0के0: 2016)*

अतः स्पष्ट है कि व्यक्ति का समाजीकरण अनेक संस्थाओं के द्धारा होता है जिससे उसके जन्म लेते ही उसका समाजीकरण शुरू हो जाता है और जीवन के विभिन्न पडाओं पर वह सीखता जाता है। वह जन्म से मृत्यू तक उसका समाजीकरण होता है जिसमें समाज द्धारा परिवार, पडौस, क्रीडा समूह, नातेदारी, विवाह, ि"ाक्षण संस्था, धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक व व्यावसायिक आदि संस्थाए अपनी भूमिका निभाती है। स्वयं डेविस कहते है कि व्यक्ति दो भिन्न प्रकार के संचरण की उपज होता है– आनुवं"ाक व सामाजिक। आनुवं"ाक में माता पिता के वाहकाणुओं, गुणसूत्रों एवं प्रजनन की क्रिया द्धारा व्यक्ति को शरीर एवं शारीरिक क्षमताएं प्राप्त होती है। वही दूसरी ओर सामाजिक में

सामाजिक सांस्कृतिक सीख तथा प्रतीकात्मक संवहन द्धारा व्यक्ति की सामाजिक वि"ोषताएं प्राप्त होती है। आनुवं"ाक व सामाजिक के द्धारा ही व्यक्ति का समाजीकरण होता जाता है। इसप्रकार आप यहा पर बच्चे का विभिन्न स्तरों पर समाजीकरण प्रमुख अभिकरणों अथवा संस्थाओं द्धारा होता है, से भलिभाति परिचित हो गये होगें।

6.5 समाजीकरण के प्रमुख सिद्धान्त

समाजीकरण के संदर्भ में विभिन्न विद्धानों ने व्यक्ति का समाजीकरण कैसे होता है उस संदर्भ में विद्धानों ने अपने विचारो द्धारा निम्न सिद्धान्त प्रतिपादित किये है, जिनका उल्लेख निम्न है–

1. कूले का सिद्धान्त (Cooley's Theory)

अमरीकरन समाज"ाास्त्री कूले ने अपनी पुस्तक ''**Human Nature and the Social Order**'' में अपने समाजीकरण सम्बन्धी सिद्धान्त को प्रस्तुत किया है। उनका सिद्धान्त ''आत्म दर्पण द"ार्न का सिद्धान्त'' (Looking-glass self Theory) के नाम से जाना जाता है। कूल ने अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन व्यक्ति और समाज के सम्बन्धों को स्पष्ट करने के सन्दर्भ में किया। उनका मत है कि समाज के सम्पर्क में आने पर ही व्यक्ति के 'आत्म का विकास होता है। समाज व्यक्ति के लिए दर्पण का कार्य करता है, वह उसमें अपनी छवि देखता है ओर समाज के लोग उसके बारे में क्या राय रखते है, उसी आधार पर वह अपने बारे में अपनी धारणा बनाता है। जिस प्रकार से हम आइना देखकर यह ज्ञात करते है कि हम अमुक पोषाक पहनने पर कैसे लगते है, बाल ठीक से संवारे हुए है या नहीं आदि, बालक भी समाज रूपी आइने में अपने आपको देखता है। समाज के लोग उसके बारे में क्या राय रखते है, इसी आधार पर वह अपने बारे में राय बनाता है। जिससे उसमें हीनता या श्रेष्ठता के भाव पैदा होते है। इस प्रकार व्यक्ति के स्वः का विकास दूसरों की प्रतिक्रिया से होता है।

हारटन तथा हण्ट कहते है कि कूले ने 'Looking glass Self" शब्द थेकरे की वेनिटी फेयर नामक कृति से लिया है। इनके अनुसार, संसार एक दर्पण है जो प्रत्येक व्यक्ति को उसका स्वयं का चेहरा प्रतिबिम्बत करता है। आप भौहें चढ़ाइये तो इसमें आप चिडचिड़े दिखायी देंगे। आप इसकी ओर तथा इसके साथ हंसिये तो यह आपका खुषमिजाज व कृपालु साथी होगा।''

कूले ने 'आत्म दर्पण द"ार्न' प्रक्रिया के तीन चरणों का उल्लेख किया है। –

- व्यक्ति यह सोचता है कि दुसरे उसके बारे में क्या सोचते है,

- दूसरों के निर्णय के आधार पर वह स्वयं अपने बारे में क्या सोचता है,
- मैं अपने बारे में सोचकर अपने को कैसा मानता हूं ,गर्व अनुभव करता हूं या ग्लानि।

इन तीनों बातों को स्पष्ट करने के लिए हॉर्टन व हण्ट ने एक उदाहरण द्वारा समक्षाया, मान लीजिए आप एक कमरे में प्रवे"ा करते हैं जहां कुछ व्यक्ति एक समूह में परस्पर बातें कर रहे हैं। आपके आते ही वे बहाना बनाकर वहां से चले जाते हैं ओर ऐसा कई बार होता है तो आपकों अपने बारे में हीनता की भावना महसूस होगी। इसके विपरीत, आपके कमरे में प्रवे"ा करने पर सभी व्यक्ति आपको घेर लेते है और आपसे चर्चा करना चाहते हैं तो आपको गर्व महसूस होगा। इस प्रकार दूसरे व्यक्ति हमारे प्रति जिस प्रकार की प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं हम अपने बारे में वैसी धारणा बनाते है। लेकिन कई बार ऐसा भी होता है कि दूसरे हमारे बारे में जो राय बनाते है उसे जिस रूप में हम सोचतें है उसमें तथा वास्तव में दूसरों द्वारा हमारे प्रति बनायी गयी धारणा में अन्तर होता है।

इस प्रकार कूले के अनुसार व्यक्ति का दूसरों से सम्पर्क होने से 'स्व' का निर्माण होता है जो कि समाजीकरण का प्रमुख आधार है। स्व के निर्माण के आधार पर ही व्यक्ति अपना मूल्यांकन करता है, वह अपने को हीन या श्रेष्ठ समझता है और समाजीकरण की दि"ाा तय करता है। व्यक्ति समाज का ही प्रतिबिम्ब है।

2. मीड का सिद्धान्त (Mead's Theory) –

मीड ने समाजीकरण सम्बन्धी अपने विचार "Mind, Self and Society" नामक अपनी कृति में प्रकट किये हैं। मीड यह मानते है कि व्यक्ति ही समाज का निर्माता है जिसमें दिमाग और 'स्व' होता है। 'स्व' मौलिक रूप से एक सामाजिक संरचना है और सामाजिक अनुभवों के कारण ही पैदा होता है। 'स्व' के जन्म के बाद ही व्यक्ति सामाजिक अनुभव करता है। मीड ने उस प्रक्रिया का भी उल्लेख किया है जिसके द्वारा 'स्व' का विकास होता है और व्यक्ति तब दूसरों के विचारों को ग्रहण करता है। जन्म के समय बच्चा एक जैविकीय व्यक्ति होता है, जिसमें बुद्धि का अभाव होता है। अतः वह आन्तरिक प्रेरणाओं से प्रेरित होकर ही क्रियायं करता है। धीरे–धीरे परिवार एवं अन्य समूहों के सम्पर्क के कारण बच्चे को यह समझ पैदा होने लगती है कि उससे लोग किस प्रकार के व्यवहार की अपेक्षा करते हैं और उसके व्यवहारों का क्या अर्थ लगाया जाता है। इस प्रकार बच्चे का 'स्व' व्यवहार से प्रभावित होने लगता है। इसे ही वह '**सामान्यकृत अन्य (Generalized others)** कहता हैं सामान्यकृत अन्य का अर्थ है कि – किसी व्यक्ति की स्वयं के बारे में वह धारणा जो दूसरे लोग उसके बारे में रखते है।

मीड ने बताया कि व्यक्ति में आत्म–चेतन का विकास किस प्रकार से होता है, **मैं (I)** तथा **मुझे (Me)** शब्दों का प्रयोग किया है। इसलिए इस सिद्धान्त को **मैं और मुझे का सिद्धान्त** भी कहते है। मैं का अर्थ व्यक्ति द्वारा दूसरों की प्रति किये जाने वाले व्यवहार से है, तथा मुझे का अर्थ है व्यक्ति द्वारा किये गये व्यवहार पर दूसरों की प्रतिक्रिया जिसे व्यक्ति आन्तरीकृत करता है। 'मैं' और मुझे में अन्तः क्रिया के कारण ही 'स्व' का विकास होता है। प्रारम्भ में ये दोनों धारणाएं एक–दूसरे से अलग होती हैं, किन्तु परिवार एवं समाज के सम्पर्क के कारण उनमें समानता स्थापित होने लगती है और वे एक ही चीज के दो पहलू हो जाते है। अनुकरण, संकेत व भाषा के माध्यम से बच्चा दूसरों के व्यवहारों को ग्रहण करता है और उसमें विभिन्न प्रकार की भूमिकाओं को निभानें की क्षमताएं पैदा हो जाती है। जिसको मीड आत्म का विकास कहता है। कूले अपने सिद्धान्त में व्यक्ति व समाज को समान रूप से महत्वपूर्ण मानते है लेकिन मीड समाज को ज्यादा महत्व देते है। कूले आत्म को एक धारणा मानते है जबकि मीड आत्म को स्वयं के बारे में चेतना मानते है। मीड का सिद्धांन्त समाजीकरण के लिए ज्यादा स्पष्ट प्रतीत होता है।

3. फायड का सिद्धान्त (Freud's Theory) –

फ्रायड नाम मनोवैज्ञानिक ने समाजीकरण का सिद्धान्त मानसिक क्रियाओं के आधार पर समझाया है। इनके अनुसार, मानव का समस्त व्यवहार लिबिडो अर्थात काम–प्रवृत्तियों से तय होता है। फ्रायड ने समाजीकृत आत्म की समाज"ास्त्रियों की अवधारणा को चुनौती दी और कहा कि 'स्व' एवं समाज में कोई ताल–मेल नहीं होता है। वह यह मानते हैं कि मानव व्यवहार का तार्किक पक्ष उसी प्रकार है जिस प्रकार किसी समुद्र में हिमखण्ड का बाहरी भाग होता हैं, जिस प्रकार हिमखण्ड का अधिकां"ा भाग पानी में रहता है उसी प्रकार मानव व्यवहार का अधिकां"ा भाग भी अनदेखा व अचेतन शक्तियों द्वारा संचालित होता है। फ्रायड ने 'स्व' को 'इड (Id), 'अहम' (Ego) और 'पराअहम्' (Super ego) इन तीन भागों में बांटा। 'इड' अहम् की मूल–प्रवृत्तियों, प्रेरणाओं, असमाजीकृत इच्छाओं एवं स्वार्थो का योग है। इड के सामने नैतिक–अनैतिक, अच्छे–बुरे का कोई प्रष्न नहीं होता है। यह पा"ाविक प्रवृति के निकट है जो किसी न किसी प्रकार सन्तुष्टि चाहता हैं 'अहम' (Ego) स्व का चेतन एवं तार्किक पक्ष है जो व्यक्ति को समाजिक परिस्थितियों के अनुकूल व्यवहार करने का निर्दे"ा देता है और 'इड' पर नियन्त्रण रखता है। 'अहम्' भी 'इड' के समान नैतिक–अनैतिक, प्रेम व घृणा को अधिक महत्व तो नहीं देता फिर भी यह अधिक व्यावहारिक है क्योंकि यह 'इड' को परिस्थितियों के अनुकूल होने पर ही अपनी इच्छा की पूर्ति की स्वीकृति देता हैं। पराअह्म (Super ego) सामाजिक मूल्यों एवं आाद"ोर्ा का संयोग है जिसे व्यक्ति ने आत्मसात् कर रखा है और जो उसकी आन्तरात्मा का निर्माण करते है। जैसें– यदि एक व्यक्ति बहुत भूखा है उसे खाना चाहिए तो यह भूख इड कहलाती है, अब अहम् कहेगा कि यदि खाना चाहिए तो मेहनत कर पैसा कमाकर

खाओ और न मिले तो चोरी करके खाओं लेकिन पराअह्म कहेगा कि चोरी करना पाप है अनैतिक है व सामाजिक मूल्यों के विपरीत है। अत : ऐसा मत करो। इसप्रकार अहम् व इड सामाजिक परिस्थितियों में सामंजस्य स्थापित करने का प्रयत्न करता है लेकिन पराअह्म विवके और सामाजिक मूल्यों को प्रकट करता है। जो कि व्यक्ति के समाजीकरण का प्रमुख आधार है।

फ्राइड कहते है कि इड और पराअहम् में सदैव संघर्ष पाया जाता है, क्योंकि समाज यौन इच्छाओं और आक्रमण भावनाओं पर प्रतिबन्ध लगाता है। सामान्यतः इड उस संघर्ष में हार जाता है, किन्तु कभी–कभी वह पराअहम् की अवहेलना भी कर देता है और व्यक्ति समाज–विरोधी कार्य कर बैठता है। इस प्रकार फ्रयड स्व और समाज को एक–दूसरे के पूरक न मानकर परस्पर विरोधी मानता है। फ्राइड के अनुसार 'इड– व –पराअहम् के पारस्पकि संघर्ष की प्रक्रिया से ही व्यक्ति का समाजीकरण होता है। बचपन में व्यक्ति जब सामाजिक व्यवहार से परिचित नहीं होता है तो 'इड' से प्रभावित होकर व्यवहार करता है। दूसरे लोगों के संपर्क में आने पर उसे इस बात का ज्ञान होता है कि अपनी आव"यकता किस प्रकार पूरी की जानी चाहिऐं, यही अहम् के विकास की स्थिति हैं अन्य व्यक्ति के सम्पर्क से ही वह सामाजिक मूल्यों एवं आद"र्ो से परिचित होता है, वह यह जानने लगता है कि समाज किस प्रकार के व्यवहार को स्वीकार व अस्वीकार करता है। नैतिक व अनैतिक समझता है। वइ 'इड' ओर 'अहम' की बात को ठुकरा कर जितना पराअहम् आचरण करता है, उतना ही उसका समाजीकरण सफल माना जाता है। इस प्रकार आप यहा यह समझ गये होंगे कि कूले व मीड आत्म को सामाजिक अन्तक्रिया का परिणाम मानते है लेकिन फ्रायड समाजीकरण को मानसिक क्रियाओं का परिणाम मानते है। फ्रायड ने मानव व्यक्तित्व को इड अहम् व पराअहम् में जिस प्रकार विभाजित किया है उसे हम आनुभाविक प्रयोग के आधार पर सिद्ध नहीं कर सकते। अतः यह सभ्यता से परे एवं काल्पनिक अधिक लगता है।

4, दुर्खीम का सिद्धान्त – दुर्खीम ने समाजीकरण संबधी विचार **"Sociology and philosophy" कृति** में प्रतिपादित किये। दुर्खीम ने समाजीकरण संबधी विचारों को **सामूहिक प्रतिनिधित्व तथा सामूहिक चेतना** के आधार पर स्पष्ट किया और बताया कि व्यक्ति द्धारा सामाजिक प्रतिनिधानों का आन्तरीकरण करना ही समाजीकरण है। प्रत्येक समाज में कुछ विचार, धारणाएं व भावनाएं ऐसी होती है जिसे सभी सदस्य स्वीकार करते है क्योंकि ये सभी के द्धारा मान्य होते है और सारे समूह का प्रतिनिधित्व करते है शुरूआत में इनका संबध व्यक्तित्व चेतना से होता है लेकिन सभी लोगों की पारस्परिक अन्तक्रिया के कारण सामूहिक चेतना का निर्माण होता है जो कि सामूहिक प्रतिनिधिानों को जन्म देती है जैसे– सामाजिक परम्परा, धर्म, रीतिरिवाज, प्रथाएं, मूल्य एवं आद"र्ा सामूहिक आद"र्ा है। समूह के सभी लोग इनका पालन करते है। सामूहिक प्रतिनिधानों का पालन करना व्यक्ति अपना दायित्व समक्षते है इनके पीछे

नैतिकता का दबाव होता है इनकी अवहेलना करने पर सामूहिक प्रतिक्रिया होती है, दण्ड की व्यवस्था की जाती है। व्यक्ति द्धारा सामूहिक प्रतिनिधानों को सीखता है आत्मसात् करता है और उनके अनुरूप आचरण करता है जिससे परिणामस्वरूप व्यक्ति का समाजीकरण होता जाता है। सामूहिक प्रतिनिधान वे विचार या व्यवहार है जिन्हें सारे समूह की स्वीकृति प्राप्त होती है जो सामूहिक चेतना के प्रतीक हो, संपूर्ण समाज में समान रूप से व्यापत हो तथा जो व्यक्तियों पर नियंत्रण बनाए रखते हो। सामाजिक प्रतिनिधानों का दवाब उसमें सामाजिक गुणों का विकास करता है *(गुप्ता एवं शर्मा: 2014)* । इस प्रकार आप यहा पर समाजीकरण के प्रमुख सिंद्धान्तो को व्यक्ति के समाजीकरण के संदर्भ मे भलीभाति समक्ष गये होगें।

बोध प्रश्न–2

i) समाजीरण से क्या तात्पर्य है

.....

.....

.....

.....

.....

ii) समाजीकरण के स्तर में परिवार का क्या योगदान है

.....

.....

.....

.....

.....

iii) समाजीकरण में शैक्षिणिक संस्थाओं का क्या योगदान है

.....

.....

.....

.....

iv) मीड का समाजीकरण सिद्धांत संक्षिप्त मे बताइए।

.....

.....

.....

.....

v) कुछ प्रमुख समाजीकरण के सिद्धांतो के नामों का उल्लेख संक्षिप्त में कीजिए।

.....

.....

.....

6.6 सारांश

इस इकाई में आपने समाजीकरण के बारे में जाना है। समाजीकरण एक सामाजिक–मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है जिसके द्धारा हम समाज के सक्रिय सदस्य बनते है। इस प्रक्रिया में व्यक्ति समाज के मानदंडो और मूल्यों के आन्तरीकरण के साथ–साथ अपनी सामाजिक भूमिकाओं को सम्पादन करना सीखता है। इसी प्रक्रिया के द्धारा स्वः का विकास होता है। इस प्रक्रिया में परिवार, क्रीडा समूह, नातेदारी, विद्यालय आदि संस्थाओं द्धारा अपने जीवन के विभिन्न समयान्तरालों पर व्यक्ति सीखता जाता है। व्यक्ति को सीखने की क्षमता सामाजिक संपर्क से ही संभव होती है। स्वयं स्टीवर्ट एवं गिलिन ने समाजीकरण के तीन आव"यक तत्व बताये है–अन्तक्रिया, भावात्मक स्वीकृति और संचार या भाषा। समाजीकरण एक आजन्म प्रक्रिया है। जिसमें समाजीकरण के सोपानों में मौखिक अवस्था, शौच अवस्था, तादात्मीकरण अवस्था, कि"ाोरावस्था, युवावस्था, प्रौढावस्था व वृद्धावस्था आदि जीवन के सोपान होते है जिसमें व्यक्ति प्रत्येक सोपानो पर सीखता जाता है। साथ ही आपको समाजीकरण के विभिन्न विद्धानों द्धारा प्रतिपादित सिद्धांन्तों के बारे में बताया गया है। जिसमें बताया गया कि व्यक्ति अपने स्वं का विकास, व्यवहार व दूसरों की प्रतिक्रिया से कैसें प्रभावित होता है। इस प्रकार हम समझ सकते है कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और वह समाजीकरण की प्रक्रिया द्धारा समूह अथवा समाज की सामाजिक–सांस्कृतिक वि"ोषताओं को ग्रहण करता है अपने व्यक्तित्व का विकास करता है और समाज का क्रिया"ाील सदस्य बनता है। समाजीकरण द्धारा बच्चा सामाजिक प्रतिमानों को सीखकर उनके अनुरूप आचरण करता है जिससे समाज में नियन्त्रण बना रहता है। लेकिन अगर

व्यक्ति का समाजीकरण गलत तरीको या गलत संगत आदि कारणों से घटित हो तो समाजीकरण की दि"ाा भी बदल जाती है। इसलिए सफल समाजीकरण के लिए समाज में विभिन्न संस्थाए अपना योगदान देती है।

6.7 पारिभाषिक शब्दावली

समाजीकरण – समाजीकरण सीखने की एक आजन्म प्रक्रिया है जिसके द्धारा व्यक्ति समूह अथवा समाज की समय व स्थान सापेक्ष सामाजिक–सांस्कृतिक वि"ोषताओं को ग्रहण करता है, अपने व्यक्तित्व का विकास करता है जिससे वह समाज का क्रिया"ाील सदस्य बन सके। समाजीकरण द्धारा बच्चा सामाजिक प्रतिमानों को सीखकर उनके अनुरूप आचरण करता है इससे समाज में नियन्त्रण बना रहता है।

आजन्म प्रक्रिया – आजन्म प्रक्रिया वह है जो जन्म से लेकर मृत्यू तक चलने वाली प्रक्रिया है।

मौखिक अवस्था– ि"ा"ाू अपना सुख–दुख मुंह के माध्यम से व मुंह के हाव–भाव से प्रकट करता है उस अवस्था को मौखिक अवस्था कहते है। इस अवस्था में बच्चा परिवार में मां के अतिरिक्त किसी को नही जानता है।

नातेदारी– नातेदारी दो प्रकार से बनती है– रक्त संबधी व विवाह संबधी, रक्त संबधी में भाई–बहिन, माता पिता आदि होते है जो कि रक्त व वं"ा के आधार पर बनती है तथा विवाह संबधी में वर व वधु का विवाह होने के उपरान्त दोनो पक्ष की बनती है जैसे– जीजा, साली व श्वसुर तथा नन्द व देवर आदि।

मैं तथा मुझे – **मैं** का अर्थ व्यक्ति द्धारा दूसरों के प्रति किये जाने वाले व्यवहार से है, तथा **मुझे** का अर्थ है व्यक्ति द्धारा किये गये व्यवहार पर दूसरों की प्रतिक्रिया जिसे व्यक्ति आन्तरीकृत करता है।

सामान्यकृत अन्य – किसी व्यक्ति की स्वयं के बारे में वह धारणा जो दूसरे लोग उसके बारे में रखते है।

परिवर्तन– किसी भी वस्तु में दो समय में होने वाली भिन्नता ही परिवर्तन कहलाती है।

नकारात्मक समाजीकरण– व्यक्ति कई बार समाज द्धारा अस्वीकृत व्यवहारों को सीखता है जैसे– एक बच्चा चोरी करना व गाली देना अगर सीखता है तो उसे नकारात्मक समाजीकरण कहते है।

6.8 अभ्यास/बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध पश्न–1

i) समाजीकरण सीखने की एक आजन्म प्रक्रिया है जिसके द्धारा व्यक्ति समूह अथवा समाज की समय व स्थान सापेक्ष सामाजिक–सांस्कृतिक वि"ोषताओं को ग्रहण करता है, अपने व्यक्तित्व का विकास करता है जिससे वह समाज का क्रिया"ाील सदस्य बन सके।

ii) ग्रीन के अनुसार, समाजीकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्धारा बच्चा सांस्कृतिक वि"ोषताओं, आत्मपन और व्यक्तित्व को प्राप्त करता है।

iii) समाजीकरण के प्रमुख उदद"ोयों में से एक उदद"ोय बच्चे के अन्दर आधारभूत नियमबद्धता का विकास करना है।

iv) समाजीकरण में प्रमुख स्तर– मौखिक अवस्था, शौच अवस्था, इडिपल या तादात्मीकरण, कि"ाोरावस्था, युवावस्था, प्रौढावस्था व वृदावस्था है।

v) हेनरी जॉन्सन

vi) परिवार

vii) हॉ

बोध प्रश्न–2

i) समाजीकरण सीखने की एक आजन्म प्रक्रिया है जिसके द्धारा व्यक्ति समूह अथवा समाज की समय व स्थान सापेक्ष सामाजिक–सांस्कृतिक वि"ोषताओं को ग्रहण करता है, अपने व्यक्तित्व का विकास करता है जिससे वह समाज का क्रिया"ाील सदस्य बन सके। समाजीकरण द्धारा बच्चा सामाजिक प्रतिमानों को सीखकर उनके अनुरूप आचरण करता है इससे समाज में नियन्त्रण बना रहता है।

ii) परिवार एक सार्वभौमिक संस्था है। परिवार का बच्चे के समाजीकरण करने में महत्वपूर्ण स्थान होता है क्योंकि बच्चा सर्वप्रथम परिवार के संपर्क में ही सबसे पहले आता है। परिवार से ही वह प्यार, दुलार, डांट आदि अपने कार्य के प्रति सीखता है। परिवार में ही उसे समाज के रीतिरिवाजों, लोकाचारों, प्रथाओं व संस्कृति का ज्ञान होता है साथ ही पिता, माता, भाई व बहिन आदि नातेदारी का ज्ञान होता है। अतः समाजीकरण में परिवार उसकी प्रथम पाठ"ाला होती है।

iii) ि"ाक्षण संस्थाओं द्धारा व्यक्ति के समाजीकरण में ि"ाक्षा संबधी योगदान होता है। ि"ाक्षण संस्थाओं में– स्कूल, कालेज, वि"वविधालय व शोध केन्द्र आदि संस्था आती है। ि"ाक्षण संस्थाओं में बच्चा अपने अध्यापको के संपर्क में आकर कठिन परिश्रम करके ज्ञान व ि"ाक्षा अर्जित करता है। साथ ही सहपाठियों के साथ व्यवहार व नवीन किताबों से ज्ञान अर्जित करता है। अतः बच्चे के समाजीकरण में ि"ाक्षा उसे रोजगार देने के साथ ही उसे कैसे व्वहार व कैसा ज्ञान अर्जित करना होता है वह सीखाती है। जिससे उसका समाज में सही दि"ाा की ओर समाजीकरण हो सके।

iv) मीड ने समाजीकरण सम्बन्धी अपने विचार "Mind Self and Society" नामक कृति में प्रकट किये और बताया कि व्यक्ति ही समाज का निर्माता है जिसमें दिमाग और 'स्व' होता है। जन्म के समय बच्चा एक जैविकीय व्यक्ति होता है। धीरे–धीरे परिवार एवं अन्य समूहों के सम्पर्क के कारण बच्चे को यह समझ पैदा होने लगती है कि उससे लोग किस प्रकार के व्यवहार की अपेक्षा करते हैं और उसके व्यवहारों का क्या अर्थ लगाया जाता है। इस प्रकार बच्चे का 'स्व' व्यवहार से प्रभावित होने लगता है। इसे ही वह 'सामान्यकृत अन्य (Generalized others) कहता हैं। मीड ने व्यक्ति में आत्म–चेतन को स्पष्ट करने के लिए मैं (I) तथा मुझे (Me) शब्दों का प्रयोग किया है। मैं का अर्थ व्यक्ति द्वारा दूसरों की प्रति किये जाने वाले व्यवहार से है, तथा मुझे का अर्थ है व्यक्ति द्वारा किये गये व्यवहार पर दूसरों की प्रतिक्रिया जिसे व्यक्ति आन्तरीकृत करता है। 'मैं' और मुझे में अन्तः क्रिया के कारण ही 'स्व' का विकास होकर उसका आत्म का विकास होता है जिससे वह अपना समाजीकरण करता है।

v) समाजीकरण के प्रमुख सिंद्धान्त निम्न है–

कूले का सिद्धान्त– आत्म दर्पण द"ार्न का सिद्धान्त
मीड का सिंद्धान्त– मै तथा मुझे का सिद्धान्त
फ्रायड का सिद्धान्त– मानसिक क्रियाओं का समाजीकरण का सिद्धान्त
दुर्खीम का सिद्धान्त– सामूहिक प्रतिनिधित्व व सामूहिक चेतना का सिद्धान्त आदि।

6.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

Young, Kimball, (1946) *Hand book of social psychology,* kegan paul, california

Aron, Raymond, (1970) *Main currents in sociological thought,* vol.1 &

2, Penguin books, London

Bottomore, T.B., (1969) *Socioloogy: A guide to problem and literature,* Allen and unvin, London

Johnson,Harry M, (1960), *Sociology,* Allied Publ., New Delhi

Durkheim, Emile (1974) *Sociology and philosophy*, The free press, Newyork

Mead,G.H. (1934) *Mind,Self and Society*, The University of Chicago press,chicago

गुप्ता एवं शर्मा, (2006) *समाजशास्त्र*, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा

कोजर लेविस ए 1971 मास्टर्स ऑफ सो"ायॉलाजिकल थॉट : आइडियाज इन हिस्टारिकल एण्ड सो"ाल कॉनटैक्स्ट, हरकोर्ट ब्रेस जोवैनोवि"व : न्यूयार्क

6.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

Coser, Lewis A, (1996) *Masters of Sociological Thought,* Rawat publication, Jaipur
Giddens, Anthony, (1993) *Sociology,* polity press, Cambridge
Mitchell, G Duncan, (1979) *A New Dictionary of Sociology,* Routledge & Kegan Paul, London
Huebner, Daniel (2014), *Becoming Mead,* the University of Chicago press, chicago
सिहं,जे0 पी0, (2008) समाजशास्त्र–अवधारणाएं एवं सिद्धान्त, पीएचआई लर्निंग नई दिल्ली

श्रीनिवास,एम0एन0 (1991) आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन, राजकमल प्रका"ान, दिल्ली

6.11 निबंधात्मक प्रश्न

- समाजीकरण से आप क्या समझते है, समाजीकरण के प्रमुख सिद्धांतो की व्याख्या कीजिए ?
- समाजीकरण का अर्थ स्पष्ट करते हुये इसके प्रमुख चरणों का वर्णन कीजिए ?
- समाजीकरण के प्रमुख साधनों/अभिकरणों की व्याख्या कीजिए ?
- समाजीकरण को परिभाषित करते हुये इसके प्रमुख उदद"यों का उल्लेख कीजिए ?

इकाई 7 – समाजिक क्रिया की अवधारणा

(Concept of Social Action)

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 टालकॉट पारसन्स का परिचय

7.3 सामाजिक क्रिया से संबन्धित विभिन्न विद्वानों के विचार

7.3.1 विल्फ्रेडो पेरेटो

7.3.2 मैक्स वेबर

7.4 टालकॉट पारसंस का सामाजिक क्रिया का सिद्धांत

7.5 पारसन्स के सामाजिक क्रिया के सिद्धांत से अभिप्रेरण तथा मूल्य

7.6 सामाजिक क्रिया की रुपरेखा

7.7 सारांश

7.8 पारिभाषिक शब्दावली

7.9 अभ्यास/बोध प्रश्नों के उत्तर

7.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

7.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

7.12 निबंधात्मक प्रष्न

7.0 उद्देश्य–

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप जान पाएँगें कि

1. **समाजिक क्रिया का क्या अर्थ है?**
2. **समाजिक क्रिया के प्रकार, विभिन्न विद्वानों– पैरेटो, मैक्स वेबर द्वारा किया है।**
3. **टालकॉट पारसंस क सामाजिक क्रिया के सिद्धांत क्या है?**

7.1 प्रस्तावना–

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। सामाजिक प्राणी के रूप में विभिन्न आवष्यकताँए होती है। इन आवष्यकताओं की पूर्ति के लिए व्यक्ति को कुछ न कुछ प्रयास करना पड़ता है जिसे समाजषास्त्रीय अवधारणा में ''सामाजिक क्रिया'' (Social Action) कहा जाता है। लेकिन सामाजिक क्रिया एकान्त में नहीं होती बल्कि एक सामाजिक परिस्थति में होती है जहाँ विभिन्न व्यक्तियों को देखते है, प्रभावित होते हैं। साथ ही एक लक्ष्य एवं अनुषासन होता है। अतः सामाजिक क्रिया के लिए सामाजिक परिस्थिति होता है जहाँ व्यक्तियों के व्यवहार क्रिया करने वाले को प्रभावित करते हैं, इसी से प्रेरित होकर क्रिया करते हैं।

7.2 टालकॉट पारसंस का परिचय–

पारसंस का जन्म अमेरिका में सन् 1902 में हुआ था। 1924 में उन्होंने एम्हार्ट कॉलेज से स्नातक की परीक्षा उत्तीर्ण की। इसके बाद, हैडलबर्ग विष्वविद्यालय (जर्मनी) से डॉक्ट्रेट किया और इसके बाद लंदन में रहकर **मैलिनॉस्की** के साथ आदिवासियों पर काम किया। जर्मनी और लंदन ने यानी यूरोप ने पारसंस के युवा बौद्धिक जीवन को बहुत अधिक प्रभावित किया। सन् 1927 से लेकर 1931 तक वे हारवर्ड विष्वविद्यालय, अमेरिका में अर्थषास्त्र के अध्यापक रहे और इसी विष्वविद्यालय में 1944 में वे समाजषास्त्र के प्रोफेसर हो गये।

पारसंस का उद्देश्य समाजषास्त्र में ऐसे सिद्धांतो का निर्माण करना था जिससे सही सामाजिक स्थिति की वैज्ञानिक पड़ताल हो सके। वे ऐसी अवधारणाओं को बनाना चाहते थे जो अमूर्त हो और जिनके माध्यम से सामाजिक व्यवस्था को समझा जा सके। इसके लिये उन्होंने अपनी सबसे पहली पुस्तक दि स्ट्रक्चर ऑफ सोषल एक्षन () को सन् 1937 में प्रस्तुत किया जिसमें क्रिया सिद्धान्त को रखा। इस सिद्धांत में उन्होंने यूरोप के कई विचारकों (दुर्खीम, वेबर, मार्क्स, परेटो और मार्षल) के विचारों को समन्वित करते हुए क्रिया सिद्धांत को प्रस्तुत किया। इसमें उन्होंने कहा कि मनु''य जब किसी क्रिया को करता है तो वह साधन और साध्य में विकल्प रखता है और इस विकल्प का प्रयोग करके ही वह क्रिया करता है। यहाँ पहली बार **पारसंस** ने तीन अमूर्त अवधारणाओं को रखा। ये अवधारणाएँ है :

1. **क्रिया सिद्धान्त (Action Theory)**
2. **सामाजिक व्यवस्था (Social System)**
3. **प्रकार्यवाद (Functionalism)**

सन् 1937 में पहली पुस्तक आने के बाद **पारसंस** लगातार 40 वर्षों तक लिखते रहे और कई पुस्तकें के अलावा दि सोषल सिस्टम (The Social System) जैसी महत्वपूर्ण पुस्तक को प्रस्तुत किया और इन सभी कृतियों में पारसंस ने अपने संरचनात्मक प्रकार्यवाद (Structural Functionalism) को विकसित किया।

7.3 सामाजिक क्रिया से सम्बन्धित विभिन्न विद्वानों के विचार –

कर्ता अर्थात् क्रिया करने वाला व्यक्ति की विभिन्न आवष्यकताएँ होती हैं जैसे–आर्थिक आवष्यकताएँ, जैविकीय आवश्यकताएँ, मनोवैज्ञानिक आवष्यकताएँ, सामाजिक आवष्यकताएँ आदि। इन विभिन्न आवष्यकताओं की पूर्ति के लिए व्यक्ति को कुछ–न–कुछ प्रयत्न करना पड़ता है। जिन्हें समाजषास्त्रीय भाषा में **"क्रिया"** (Action) कहा जाता है। समाजषास्त्र में क्रिया और व्यवहार के बीच सर्वप्रथम अन्तर **मैक्स**

वेबर ने स्थापित किया। समाजषास्त्र के क्षेत्र में सामाजिक क्रिया की एक लम्बी परम्परा देखने को मिलती है। डॉन मार्टिन्डल के अनुसार सामाजिक व्यवहारवाद की तीन मुख्य शाखाएँ हैं–

1ण् सामाजिक क्रिया का सिद्धान्त (Social Action Theory)

2ण् सुझाव व नकल का सिद्धान्त (Suggestion and Imitation Theory)

3ण् प्रतीकात्मक अन्तः क्रिया का सिद्धान्त (Symbolic Interaction Theory)

स्प''टतः सामाजिक क्रिया का सिद्धान्त सामाजिक व्यवहारवाद की तीन महत्वपूर्ण 'ााखाओं में से एक है। समाजषास्त्र के क्षेत्र में सामाजिक क्रिया सिद्धान्त के समर्थकों में दुर्खीम, परेटो, मैक्स वेबर एवं टालकॉट पारसंस आते हैं।

7.3.1 विल्फ्रेडो पेरेटो–

सामाजिक क्रिया की अवधारणा के संदर्भ में सर्वप्रथम अल्फ्रेड मार्षल का नाम आता है लेकिन समाजषास्त्र के क्षेत्र में कई विद्वान **विल्फ्रेडो पेरेटो** को महत्वपूर्ण मानते है क्योंकि इन्होंने इसकी विस्तृत चर्चा प्रथम बार की।

पेरेटो ने सामाजिक क्रिया को दो भागों में बाँटा है–

1ण् तार्किक क्रिया (Logical Action)

2ण् अतार्किक क्रिया (Non-logical Action)

इनके अनुसार, **तार्किक क्रिया वे हैं जिनके साधन एवॅ साध्य के बीच तार्किक अर्थात् वस्तुनिष्ठ तालमेल होता है जैसे– एक व्यक्ति धनी बनना चाहता है और इसके लिए व्यापार का रास्ता अपनाता है तो यह तार्किक क्रिया है। अतार्किक क्रिया वे हैं जिनके साधन एवं साध्य के बीच कोई तार्किक अर्थात् वस्तुनिष्ठ तालमेल नहीं होता ह।**

इन्होंने अतार्किक क्रिया के दो संघटक तत्वों की चर्चा अपनी पुस्तक **"ट्रीटीज ऑन जेनरल सोशियोलॉजी"** में की है–

विशि''ट चालक–

विषिष्ट चालक स्थिर तत्व है, जिसका सम्बन्ध मनुष्य की उस प्रवृत्ति से है, जिसके द्वारा वह विभिन्न वस्तुओं अथवा द''ाओं के बीच एक विषेष सम्बन्ध जोड़ने का प्रयत्न करता है।

भ्रान्त तर्क–

भ्रान्त तर्क में विलक्षण सिद्धान्त है (Ingenious Theories) जिनके आधार पर व्यक्ति अपने व्यवहारों के औचित्य को प्रमाणित करता है।

वशिष्ट चालक (Residuè) के सम्बन्ध में पेरेटो का कहना है कि विशिष्ट चालक संवेगों का प्रकटीकरण है (Residues are manifestation Sentiments)। तात्पर्य यह है कि विशिष्ट चालक एक प्रकार की अमूर्त धारण है जिसे मूल्य प्रवृत्तियों और संवेगों का परिणाम कहा जो सकता है। जिस प्रकार तापक्रम का चढ़ना और अतरना पारे के चढ़ने औश्र उतरने से स्पष्ट होता है। उसी प्रकार संवेग भी **वशिष्ट** चालक द्वारा स्पष्ट होता है। आगे पैरेटो कहते हैं कि मानव व्यवहार के पीछे पाये जाने वाले बल (Force) को ही विष्टि चालक कहते हैं।

विशिष्ट चालक दो प्रकार का होता है– एक क्षणिक और दूसरा स्थायी।

स्थायी **वशिष्ट**चालक, वे हैं जो समय–समय पर मानव व्यवहार में उपस्थित होते हैं। पैरेटो के अनुसार, स्थायी **वशिष्ट**चालक ही वास्तविक **वशिष्ट**चालक है।

वशिष्टचालक की चर्चा करते हुए इनका कहना है कि सामान्यतः इसकी संख्या 50 है। पर इन्होंने इसे मुख्यतः छः (6) भागों में विभिक्त किया है। वे हैंः–

1. **सामूहिकता के स्थायित्व के वशिष्टचालक(Residues of the Persistence of Aggregate)**
2. **संयोजन के वशिष्टचालक(Residues of Combination)**
3. **सामाजिकता से सम्बन्धित वशिष्टचालक(Residues of Sociability)**
4. **व्यक्तित्व के संगठन के वशिष्टचालक(Residues of Integrity of Personality)**
5. **बाह्य क्रियाओं द्वारा संवेगों की अभिव्यक्ति के वशिष्टचालक(Residues of expression of Sentiments Through overt Action)**
6. **"काम" सम्बन्धी विशि"ट चालक(Residues of Sex)**

1ण्सामूहिकता के स्थायित्व के विशि"ट चालक(Residues of the Persistence of Aggregate)–

पेरेटो ने **सामूहिकता के स्थायित्व वशिष्ट चालक(Residues of the Persistence of Aggregate)** की चर्चा करते हुए कहा है कि इसमें वे विषि"ट चालक हैं जो किसी भी परिवर्तन के विरूद्ध व्यक्ति को तैयार करते हैं। यानि, जो व्यक्ति इस प्रकार का परिवर्तन नहीं चाहते हैं फलतः समाज में एकता और स्थिरता बनी रहती है।

2ण् संयोजन के वशिष्ट चालक(Residues of Combination)–

Residues of Combination की चर्चा करते हुए **पेरेटो** का कहना है कि इसमें वे विषि"ट प्रकार की प्रेरणाएँ हैं जो दो वस्तुओं को भौतिक या मानसिक आधार पर मिलाने का प्रयत्न करती है। ये दोनों वस्तुएँ परस्पर समान भी हो सकती हैं और असमान भी। असमान बातों में Combination का उदाहरण यह है

कि अंग्रेज 13 की संख्या को अषुभ मानते हैं, जबकि 13 की संख्या और Misfortune में कोई संबंध नहीं है। दूसरी आरे दो समान बातों में Combination होने विज्ञान का विकास होता है, जैसे– स्टीफेन्स ने खौलते हुए पानी के भाप से केतली के ढक्कन को उठते देखा और उसके दिमाग में Steam engine बनाने का विचार आया। इसी तरह नए–नए वैज्ञानिक आवि''कार इन्हीं Combination of two likes के कारण होते हैं।

3ण सामाजिकता से सम्बन्धित विशि''ट चालक(Residues of Sociability)– त्मेपकनमे वि ैवबपंइपसपजल के संबंध में **पेरेटो** का कहना है कि इस प्रकार के विषि''ट चालक व्यक्ति को इस बात की ि''ाक्षा देते हैं कि वह ऐसा व्यवहार करें जो समाज के हित में हो। तात्पर्य यह है कि अगर कोई व्यक्ति, समानता, न्याय, प्रेस, स्नेह आदि।

4ण्व्यक्तित्व के संगठन के विशि''ट चालक(Residues of Integrity of Personality)–

इस श्रेणी के वि''िाष्ट चालकों में पेरेटो ने उन प्रेरणाओं का उल्लेख किया जो व्यतिव के विभिन्न तत्वों को संगठित करती है। इन्हीं विषि''ट चालकों के प्रभाव से हम ऐसी सभी दषाओं का विरोध करते हैं जो व्यक्तित्व सम्बन्धी संगठन को न''ट करने वाली होती हैं तथा उन दषाओं को स्वीकार करते हैं जिनसे व्यक्तित्व के अधिक संगठित बनने की सम्भावना हो। यह सभी चालक वे हैं जो व्यतिव को संगठित रखने के उद्दे''य से समाज के सन्तुलन में होने वाले किसी भी परिवर्तन का विरोध करते हैं।

5ण्बाह्य क्रियाओं द्वारा संवेगों की अभिव्यक्ति के वशिष्ट चालक(Residues of expression of Sentiments Through overt Action)–

इस श्रेणी में **पेरेटो** ने उन विषि''ट चालकों को सम्मिलित किया है जो व्यक्ति को अपने संवेगों को बाह्य क्रियाओं द्वारा अभिव्यक्त करने की प्रेरणा देते हैं। उन्हें दो उप–वर्गों में विभाजित किया गया है। पहले उप–वर्ग में परेटो ने उन विषि''ट चालकों का उल्लेख किया जो सामूहिक जीवन में व्यक्ति के संवेगात्मक व्यवहारों को स्प''ट करते हैं। उदाहरण के लिए कोई कार्यक्रम पसन्द आने पर दर्षकों द्वारा ताली बजाना अथवा कार्यक्रम पसन्द न आने पर बीच में ही उठकर चले जाना, शोर मचाना या विरोध प्रद''ार्ित करना इसी तरह के विषि''ट चालक हैं। दूसरा उप–वर्ग उन चालकों से सम्बन्धित है जिनके द्वारा व्यक्ति विभिन्न क्रियाओं के द्वारा ईष्वर के प्रति अपनी धार्मिक आस्थाओं को प्रकट करता है।

6ण"काम" सम्बन्धी विशि''ट चालक(Residues of Sex)–

पेरेटो का कथन है कि संसार के प्रत्येक धर्म ने काम सन्तु''िट के लिए कुछ नि''ाधों तथा नियन्त्रणों को प्रभावपूर्ण बनाने का प्रयत्न किया है लेकिन फिर भी काम सम्बन्धी वयवहारों का विस्तार प्रत्येक मानव–समूह की विषे''ाता है। इसका कारण वे विषि''ट चालक हैं जो काम सम्बन्धी भावनाओं को उत्पन्न और प्रेरित करते हैं। साधारणतया काम सम्बन्धी विषि''ट चालकों को वैयक्तिक समझा जाता है जेकिन परेटो ने इनसे उत्पन्न व्यवहारों के सामाजिक प्रभाव की चर्चा करते हुए इनकी व्यापकता को स्प''ट किया। यह चालक

जहाँ एक ओर यौन सम्बन्धी व्यवहारों के प्रेरक होते हैं, वहीं दूसरी ओर यह पाँचवीं श्रेणी के विषि''ट चालकों से संयुक्त होकर यौन नैतिकता को विकसित करने ही भी प्रेरणा प्रदान करते हैं।

वास्तव में, प्रत्येक समाज में विषि''ट चालक हमारे व्यवहारों का निर्धारण करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं लेकिन विभिन्न समूहों और विभिन्न व्यक्तियों में इन विषि''ट चालकों के प्रभाव की सीमा अलग–अलग हो सकती है। इसका तात्पर्य है कि कुछ लोगों के व्यवहार "संयोजन के विषि''ट चालकों" से अधिक प्रभावित होते हैं जबकि कुछ लोगों को "व्यक्तित्व के संगठन के विषि''ट चालक" अधिक प्रभावित कर सकते हैं। इससे स्प''ट होता है कि व्यक्ति के व्यवहारों पर विषि''ट चालकों का प्रभाव बहुत–कुछ सामाजिक दषाओं तथा समय कारक (ज्पउम थ्ंबजवत) से प्रभावित होता है। **पेरेटो** ने स्प''ट किया कि यद्यपि विषि''ट चालकों का कोई तार्किक–प्रयोगात्मक आधार नहीं होता लेकिन मानव व्यवहारों को प्रभावित करने में इनकी एक महत्वपूर्ण भूमिका होती है। उदाहरण के लिए सामाजिकता से सम्बन्धित विषि''ट चालक व्यक्ति में मानवीय गुणों को प्रोत्साहन देकर व्यक्ति को समाज के अनुरूप बनाते हैं जबकि संयोजन के विषि''ट चालक हमें विभिन्न घटनाओं के बीच एक तार्किक सम्बन्ध जोड़ने की प्रेरणा देकर मानसिक सन्तुि''ट प्रदान करते हैं। सच तो यह है कि इसी तरह के विषि''ट चालक विभिन्न प्रकार के विष्वासों को प्रभावपूर्ण बनाकर उनके माध्यम से घटनाओं की एक सरल व्याख्या प्रस्तुत करने का आधार प्रदान करते हैं। सामाजिक व्यवस्था के सन्तुलन को बनाये रखने में भी विषि''ट चालकों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। सामाजिक व्यवस्था एक बड़ी सीमा तक व्यक्तित्व के संगठन पर आधारित है। जिस समाज में व्यक्तियों का व्यक्तित्व अधिक संगठित होता है, वहाँ सामाजिक व्यवस्था उतनी ही सन्तुलित और प्रभावपूर्ण देखने को मिलती है। विषि''ट चालक लोगों को अपने व्यक्तित्व में नैतिक मूल्यों का समावेष करने और सामाजिक मूल्यों से भिन्न व्यवहार का तिरस्कार करने की प्रेरणा देते हैं। यह कार्य तार्किक आधार पर उतने व्यवस्थित रूप से नहीं किया जा सकता जितना कि विषि''ट चालकों से प्राप्त प्रेरणाओं की सहायता से किया जा सकता है।

7.3.2 मैक्स वेबर

जर्मन समाजषास्त्री **मैक्स वेबर** वह प्रमुख सामाजिक विचारक है जिन्हें आधुनिक समाजषास्त्र के जनकों में से एक माना जाता है। मैक्स वेबर का जन्म जर्मनी में उस समय हुआ जिस समय **बिस्मार्क** का 'ाासन था। साथ ही उस समय जर्मनी में एक ओर ऐतिहासिक पद्धति पर जोर दिया जा रहा था तो दूसरी ओर आदर्षवादी विचारधारा काफी जोरों पर भी। वेबर ने कानून, अर्थषास्त्र तथा समाजषास्त्र का व्यापक अध्ययन कर जिन व्यवस्थित विचारों को प्रस्तुत किया उनका सामाजिक विचारधारा के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है। अब्राहम मार्गन के अनुसार जर्मनी में जिन विचारकों ने समाजषास्त्र को समृद्ध किया उनमें **मैक्स वेबर** सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। मैक्स वेबर के समय जर्मनी में मार्क्सवाद पूरी तरह छाया हुआ था। **जेटलिन(Zeitlin)** का कहना है कि इन्हीं मार्क्सवादियों के साथ गहन एवं विस्तृत बातचीत करते–करते **मैक्स वेबर** अर्थषास्त्री से समाजषास्त्री बन गये।

मैक्स वेबर के लेखों में उनकी चिन्तन की विविधता तथा गहराई की एक स्प''ट झलक देखने को मिलती है। ऐसा प्रतीत होता है कि वेबर ने अपने जीवन काल में विभिन्न क्षेत्रों से संबंधित अनुभव संचित

किए जिस कारण उनकी सम्पूर्ण रचनाओं में विविधता देखने को मिलती है। वेबर उन प्रारम्भिक समाजषास्त्रियों में से एक हैं जिन्होंने सामाजिक घटनाओं का अध्ययन करने के लिए एक पृथक वैज्ञानिक आधार प्रस्तुत किया। इनके अनुसार सामाजिक घटनाओं के अध्ययन में भी वैज्ञानिक मानदण्ड को बनाये रखना सम्भव है, पर यह तभी हो सकता है जब हम सभी तरह की घटनाओं का अध्ययन न करके समाजषास्त्र में मानवीय संबंधों एवं मानवीय क्रियाओं का ही अध्ययन करें। स्प''टतः वेबर ने समाजषास्त्र को नये सिरे से परिभा''ात करके इसकी अध्ययन वस्तु तथा अध्ययन पद्धति को स्प''ट किया।

वेबर के अनुसार समाजषास्त्र वह विज्ञान है जो सामाजिक क्रिया का व्याख्यात्मक बोध इस तरह करने का प्रयास करता है जिससे सामाजिक क्रिया संबंधी गतिविधियों एवं परिणामों के कारण संबंधी विवेचना तक पहुँचा जा सके। इसे स्प''ट करते हुए इनका कहना है कि किसी भी क्रिया को तभी समझाा जा सकता है जब उस क्रिया को करने वाले व्यक्ति के द्वारा लगाये गये आत्मनि''ठ (नइरमबजपअम) अर्थ का पता लगाया जाये। स्प''टतः इन्होने सामाजिक क्रिया को समाजषास्त्र का मूल अध्ययन वि''ाय माना और इसे समझने के लिए स्वयं कर्त्ता के द्वारा लगाये गये अर्थ को जानने पर बल दिया।

मैक्स वेबर का सामाजिक क्रिया का सिद्धान्त (Social Action Theory of Max Weber)–

मैक्स वेबर ने समाजषास्त्र में सामाजिक क्रिया के अध्ययन पर बल दिया है। इनके अनुसार समाजषास्त्र वह विज्ञान है जो सामाजिक क्रिया का अर्थपूर्ण बोध कराने का प्रयास करता है जिससे कि उसकी गतिविधि तथा परिणामों का कारण सहित व्याख्या प्रस्तुत की जा सके। स्पष्टतः वेबर सामाजिक क्रिया को आधारभूत परमाणु (Atom) मानते है जिस पर समाज का अस्तित्व टिका हुआ है। इसी कारण **रेमण्ड एरन** ने **वेबर** के समाजषास्त्र में सामाजिक क्रिया की अवधारणा को एक अस्तित्ववादी अवधारणा कहा है।

सामाजिक क्रिया के संबंध में वेबर का कहना है कि किसी भी क्रिया को सामाजिक क्रिया तभी कहा जा सकता है जब इस क्रिया को करने वाले व्यक्तियों के द्वारा लगाये गये आत्मनि''ठ अर्थ के कारण यह क्रिया दूसरे व्यक्तियों के व्यवहार द्वारा प्रभावित हो तथा उसी के अनुसार इसकी गतिविधि निर्धारित हो स्प''टतः वेबर के अनुसार सामाजिक क्रिया अर्थपूर्ण होती है और यह किसी बाह्य क्रिया के रूप में प्रकट होती है। वेबर साफ 'ाब्दों में कहा है कि हर क्रिया सामाजिक क्रिया नहीं है बल्कि किसी भी क्रिया को सामाजिक क्रिया मानने से पूर्व चार बातों पर ध्यान देना आवष्यक है।

प्रथमतः, सामाजिक क्रिया दूसरे व्यक्तियों के भूत, वर्तमान या भावी व्यवहार द्वारा प्रभावित हो सकती है। जैसे–किसी ने किसी के साथ दुर्व्यवहार किया और उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप यदि वह उसके साथ मारपीट करता है तो वेबर के अनुसार यह सामाजिक क्रिया है। उसी तरह यदि कोई विद्यार्थी ण्।ैण् पदाधिकारी बनने के लिए प्रतियोगिता की तैयारी करता है तो उसकी यह क्रिया भी सामाजिक क्रिया के अन्तर्गत आती है। स्प''टतः सामाजिक क्रिया कहलाने के लिए भूत, वर्तमान या भवि''य की घटनाओं से जुड़ा होना जरूरी है।

द्वितीय, वेबर का कहना है कि अकेले में या किसी जड़ पदार्थ के सामने की गई क्रिया सामाजिक क्रिया नहीं है। सामाजिक क्रिया कहलाने के लिए एक सामाजिक परिवेष होना जरूरी है। इनके अनुसार अकेले में बैठकर मूर्ति के सामने पूजा करना सामाजिक क्रिया नहीं है लेकिन यदि कोई व्यक्ति पूजा कर

रहा है और, दूसरा व्यक्ति उससे पूजा करता रहा है तो वह सामाजिक क्रिया है क्योंकि यहाँ दोनों के व्यवहार एक–दूसरे को प्रभावित कर रहे हैं।

तृतीय, वेबर का कहना है कि केवल सम्पर्क मात्र से ही सामाजिक क्रिया नहीं हो जाती। दरअसल, सामाजिक क्रिया के लिए अर्न्तक्रिया का होना आवष्यक है। जैसे– दो व्यक्ति बस में एक जगह समान सीट पर बैठें और किसी कारणवष आपस में टकरा जाएँ तो यह तब तक सामाजिक क्रिया नहीं हो सकती जब तक कि एक दूसरे को देखकर वे मुस्कुरा न दें, क्षमा याचना न कर दें, आदि–आदि। स्प''टतः सामाजिक क्रिया के लिए सम्पर्क के साथ–साथ संचार का होना भी आवष्यक है।

चतुर्थतः, वेबर का यह कहना है कि बहुत से व्यक्तियों के द्वारा की जानेवाली एक सी क्रिया को तब तक सामाजिक क्रिया नहीं कहा जा सकता है जब तक कि वे एक दूसरे को प्रभावित न कर दें। यहाँ वेबर का स्प''ट 'ाब्दों में कहना है कि मात्र अनुकरण (Emutation) करता है या उनके आदर्षो पर चलता है तो यह सामाजिक क्रिया है।

ऊपर की चर्चाओं से स्प''ट है कि वेबर के अनुसार, सामाजिक क्रिया के लिए एक सामाजिक परिवेष का होना आवष्यक है। हर क्रिया के पीछे प्रेरणा (Motive) होती है जो क्रिया करने को प्रेरित करती है। इसे अर्थपूर्ण होना चाहिए और साथ ही यह भी स्प''ट है कि बिना अर्न्तक्रिया के सामाजिक क्रिया का अस्तित्व नहीं होता। वेबर का यह भी कहना है कि हर क्रिया के पीछे कोई प्रेरणा (Motive) होती है जिसे वेबर ने उस क्रिया का कारण माना है। वेबर सामाजिक क्रिया के अध्ययन में उसी प्रेरणा का पता लगाने पर बल देते हैं। स्पष्टतः वेबर सामाजिक क्रिया के उस अर्थ को महत्व नहीं देते हैं जो बाहरी व्यक्तियों के द्वारा लगाया जाता है, बल्कि उनका कहना है कर्त्ता अपनी क्रिया का जो अर्थ लगाता है उसे जानना समाजषास्त्रियों का काम है।

वेबर ने सामाजिक क्रिया को चार भागों में बाँटा है। वे हैं–

1. **तार्किक क्रिया**
2. **मूल्यात्मक क्रिया**
3. **प्रभावात्मक क्रिया (भावानात्मक क्रिया)**
4. **परम्परागत क्रिया**

तार्किक क्रिया वेबर के अनुसार, उस क्रिया को कहते हैं जब कोई कर्त्ता अपने लक्ष्य का निर्धारण तथा उसे प्राप्त करने के लिए विभिन्न साधनों का चुनाव अपनी क्षमता एवं विवेक के अनुसार करता है। यदि कोई कर्त्ता अपने लक्ष्य तथा साधनों के बीच संतुलन नहीं रखता है तो इस क्रिया को तार्किक क्रिया नहीं कहा जा सकता है। जैसे–एक व्यक्ति धनी बनना चाहता है और अगर इसके लिए व्यवसाय करता है तो उसकी यह क्रिया तार्किक कहलायेगी। पर यदि वह डकैती या तस्करी करता है तो उसकी यह क्रिया तार्किक नहीं कहलायेगी क्योंकि धनी बनने के लिए उसने जिन साधनों को अपनाया है वह समाज में स्वीकृत नहीं हैं।

दूसरे प्रकार की क्रिया को स्प''ट करते हुए अब्राह्म और मॉर्गन ने लिखा है कि इस प्रकार की क्रिया में कर्त्ता किसी लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए साधनों का तर्कपूर्ण उपयोग तो करता है पर जिन लक्ष्यों का चुनाव वह करता है वे विषे''ा मूल्य पर आधारित होते हैं जैसे– किसी डूबते हुए जहाज के साथ उसका कप्तान स्वयं भी डूब जाने का निर्णय लेते है तो उसकी वह क्रिया एक विषे''ा मूल्य से सम्बन्धित है। ऐसा इसलिए कि जहाज छोड़कर निकल जाने से लोग उसे सम्मानपूर्ण दृ''ट से नहीं देखेगें। इसी मूल्य से

प्रभावित होकर यदि वह जहाज नहीं छोड़ता है तो उसकी यह क्रिया मूल्यात्मक क्रिया कहलाती है। इस तरह वे समस्त क्रियायाँ जो नैतिक, धार्मिक या आदर्षात्मक आचारों पर की जाती है वे इसी श्रेणी में आती है। जैसे– ईष्वर का भजन करना, दान पुण्य करना या हिन्दुओं के द्वारा अपनी ही जाति में विवाह करना आदि।

तीसरे प्रकार की क्रिया प्रभावात्मक (Affectual) क्रिया हैं जो प्रेम, दया, सहानुभूति आदि से प्रभावित होकर की जाती है। इसके साथ ही यदि क्रोध एवं घृणा से प्रभावित होकर भी क्रियाएँ की जाती है तो वे इसी श्रेणी में आती है। जैसे– खेल के मैदान में यदि एक खिलाड़ी दूसरे खिलाड़ी को चोट पहुँचाकर भी मैच जीतना चाहता है तो उसे प्रभावात्मक क्रिया कहेंगे। इसी तरह यदि एक व्यक्ति किसी डूबते हुए व्यक्ति को रस्सी फेंककर उसे डूबने से बचाने का प्रयास करता है तो उसे प्रभावात्मक क्रिया कहेंगे। स्प''टतः यह कहा जा सकता है कि इस तरह की क्रियाओं में आवेग का तत्व होता है।

परम्परागत क्रिया के अन्तर्गत वे क्रियाएँ आती हैं जिनका संबंध परम्पराओं, प्रथाओं रीति–रिवाजों आदि से होता है। इस तरह की क्रिया में तार्किकता का अभाव पाया जाता है। दरअसल, ऐसी क्रियाएँ परम्पराओं के निर्वाह के लिए की जाती है। जैसे माता–पिता द्वारा बच्चों की पालन–पो''ाण करना, समाज में बड़ों की इज्जत करना, अतिथि सत्कार करना आदि क्रियाएँ इसी श्रेणी में आती है।

यद्यपि **वेबर** ने अपने सामाजिक क्रिया के सिद्धान्त को व्यवस्थित ढ़ग से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है लेकिन फिर भी यह आलोचनाओं से मुक्त नहीं है। **रेमण्ड एरन (Raymend Aron)** ने लिखा है कि **वेबर** ने सामाजिक क्रियाओं की अवधारणा को सामाजिक जीवन में प्रयुक्त होने वाले एक अमूर्त अवधारणा के रूप में प्रस्तुत किया है। इस कारण इसका वैषयिक विष्ले''ाण कर पाना कठिन हो गया है। द्वितीय, वेबर ने सामाजिक क्रिया की अवधारणा में आत्मनि''ठ ैubjective) अर्थ को तो स्प''ट किया है पर उन्होंने सामाजिक क्रिया की वस्तुनि''ठता ¼Objectivity) पर विषे''ा ध्यान नहीं दिया है। साथ ही, आधुनिक विष्व की एक प्रमुख विषे''ाता तार्किकीकरण (Rationalization) की है। फलस्वरूप तार्किक क्रियाओं का क्षेत्र विस्तृत होता जा रहा है, अतः तार्किक क्रियाओं के अध्ययन पर अब ज्यादा ध्यान देने की आवष्यकता हैं।

ऊपर की चर्चाओं के आधार पर नि''क''ातः यह कहा जा सकता है कि समाजषास्त्र के अल्प विकसित स्तर में अध्ययन विषय का मूल वि''ाय–वस्तु बनाकर प्रस्तुत किया जो अपने आप में एक महत्वपूर्ण योगदान है। वेबर के इस सामाजिक क्रिया का प्रभाव हमें **पारसन्स** की सामाजिक क्रिया के सिद्धान्त पर भी देखने का मिलता है जो इस सिद्धान्त की महत्ता को और ज्यादा स्प''ट करता है।

7.4 टॉलकट पारसंस का सामाजिक क्रिया का सिद्धान्त (Social Action Theory of Talcott Parsons)-

टॉलकट पारसंस (ज्ंसबवजज च्तेवदे) ने **1937** में अपनी पुस्तक **'The Structure of Social Action'** में सर्वप्रथम अपने सामाजिक क्रिया सम्बन्धी विचारों का स्प''ट उल्लेख किया। यह सामाजिक क्रिया का सिद्धान्त ही पारसंस की समाजषास्त्रीय विचारधारा का सर्वप्रमुख अंग है। **पारसंस** ने अपने सामाजिक क्रिया के सिद्धान्त को विष्ले''ाणात्मक रूप में प्रस्तुत किया और उनका यही सिद्धान्त बाद में सामाजिक व्यवस्था सिद्धान्त के रूप में हमारे समक्ष आया।

वे एक ऐसे सिद्धान्त का निर्माण करना चाहते थे जो विष्ले''णात्मक यथार्थवाद से सम्बन्धित हो। उनके द्वारा जिस सामाजिक व्यवस्था के सिद्धान्त का निर्माण किया गया है, वह सामाजिक क्रिया पर ही आधारित है। पारसंस के सिद्धान्त निर्माण का उद्देष्य विष्ले''णात्मक यथार्थवाद (Analytical Realism) को जानना था। उनका उद्देष्य था कि आनुभविकता के पीछे जो यथार्थवाद है, उसे उजागर किया जाये।

उन्होंने विष्ले''णोपरान्त इन समाज वैज्ञानिकों को तीन पृथक्–पृथक् अवधारणाओं के अन्तर्गत रखा–

1ण **उपयोगितावाद (tilitarianism)**

2ण **प्रत्यक्षयवाद (Positivism)**

3ण **आदशवाद (Ideslism**)

1. उपयोगितावाद (tilitarianism)

उपयोगितावाद के अन्तर्गत क्लास्किल अर्थषास्त्री **मार्शल, रिकार्डो तथा एड्म स्मिथ** आदि आते हैं। उपयोगितावादियों ने यह तर्क दिया कि व्यक्ति बाजार में वस्तुओं का तोलमोल उनकी उपयोगिता के आधार पर करते हैं। **पारसंस** को उपयोगितावादियों का यह दृ''टकोण रास नहीं आया और उनको ऐसा आभास हुआ कि उपयोगितावादी अवधारणा के माध्यम से किसी सर्वसम्मत समाज की कल्पना असम्भव है क्योंकि उपयोगितावाद समाज में गला–काट प्रतियोगिता को जन्म देती है।

2. प्रत्यक्षवाद (Positivism)

प्रत्यक्षवाद के अनतर्गत **पारसंस** ने **पेरेटो, दुर्खीम, मेक्स वेबर** आदि की सैद्धान्तिक अवधारणाओं का विष्ले''ाण किया। प्रत्यक्षवाद की मान्यता है कि जिस प्रकार भौतिक घटनाओं के सम्बन्ध होते हैं वैसे ही सम्बन्ध सामाजिक घटनाओं में पाये जाते हैं। **पारसंस** को प्रत्यक्षवादियों का यह मत स्वीकार नहीं था कि भौतिक घटनाओं की भांति ही हम सामाजिक घटनाओं के सम्बन्धों को भी देख सकते हैं। फिर भी, उनको प्रत्यक्षवादियों की "तार्किकता" अच्छी लगी।

3. आदर्शवाद (Idealism)

पारसंस ने इसका भी विष्ले''ाण किया और इस नि''क''र्ा पर पहुंचे कि आदर्षवाद समाजषास्त्रीय सिद्धान्तों का निष्चित आधार नहीं बन सकता क्योंकि व्यक्ति का सामाजिक जीवन कभी–कभी विचारों की धारा से कट जाता है। समाजषास्त्रीय सिद्धान्तों के निर्माण के क्षेत्र में **पारसंस** ने संष्लेषण या एकीकरण का कार्य किया है। उन्होंने उपयोगितावाद, प्रत्यक्षवाद और आदर्षवाद से बहुत कुछ उधार लिया है और उनका सामाजिक क्रिया की सिद्धान्त इन तीनों का समन्वित स्वरूप है।

सामाजिक क्रिया का अर्थ एवं परिभा''ाा (Meaning and Definition of Social Action½

पारसंस ने अपनी पुस्तक **'The Structure of Social Action'** और **शिल्स (Shils)** के साथ लिखी गयी अपनी पुस्तक **'Towards and Theory of Social'** में स्प''ट किया है कि सामाजिक क्रिया

का सिद्धान्त एक स्वैच्छिक सिद्धान्त है। यह सिद्धान्त स्वैच्छिक इस कारण है कि कर्ता (Actor) अपने लक्ष्य (ळवंस) हासिल करने के लिए मौजूद विकल्पों में उसे जो उचित दिखाई देता है, उसे वह अपनाता है। **पारसंस** का मानना है कि **"सामाजिक क्रिया कर्ता परिस्थिति व्यवस्था (Actor Situation System) में वह प्रक्रिया है जिसका कि अकेले कर्ता के लिए या सामूहिक रूप में उस समूह के कुछ व्यक्तियों के लिए प्रेरणात्मक महत्व होता है।"**

प्रत्येक क्रिया को सम्पन्न करने के लिए किसी–न–किसी कर्ता की आवष्यकता होती है। कर्ता कोई एक व्यक्ति या अपने व्यक्ति भी हो सकते हैं। क्रिया का स्वरूप व प्रकृति क्या होगी, यह उस समय की परिस्थिति पर निर्भर है। अलग–अलग परिस्थितियों में कर्ता की क्रियाएं भी भिन्न–भिन्न होंगी। कर्ता किसी उद्देष्य की प्राप्ति या प्रेरणा से प्रेरित होकर ही क्रिया करता है। समाजषास्त्र के अनुसार, **"उद्देश्य निहित गतिविधि ही क्रिया है।"(Action is a goal directed activity)**। प्रेरणा का जन्म 'ारीर से, समाज से और संस्कृति से हो सकता है।

इस प्रकार **पारसंस** का सामाजिक क्रिया का स्वैच्छिक सिद्धान्त उपयोगितावाद, प्रत्यक्षवाद और आदर्षवाद को अपने अन्दर समाहित कर लेता है। **पारसंस** ने सामाजिक क्रिया के स्वैच्छिक सिद्धान्त में उपयोगितावाद, प्रत्यक्षवाद और आदर्षवाद की आलोचना करने के पश्चात् स्प''ट रूप से यह मत व्यक्त किया कि इन तीनों अवधारणाओं का उपयोग प्रकार्यवादी सिद्धान्त के निर्माण में होना चाहिए। **पारसंस** सामाजिक क्रिया के सिद्धान्त निर्माण में इस नि''क''र्ा पर पहुंचे कि **सामाजिक स्थिति में कर्ता अपनी इच्छा (Voluntary) से निर्णय लेता है।**

पारसंस ने उपने सिद्धान्त निर्माण में वेबर से बहुत कुछ उधार लिया है। वेबर के अनुसार क्रिया वह है जिसके पीछे कर्ता का अपना अर्थ (टमतेजमीमद) निहित होता है। इसी आधार पर **पारसंस** ने कहा है कि क्रिया करने का अर्थ कर्ता स्वयं परिभा''ित करता है। पारसंस ने सामाजिक क्रिया का परिभा''ित करते हुए लिखा है, **"सामाजिक क्रिया वह गतिविधि है जिसका उद्देश्य किसी न किसी लक्ष्य को प्राप्त करना होता है।"**

उपरोक्त परिभा''ाा से यह नि''क''र्ा निकला कि **जब कर्ता लक्ष्य प्राप्ति के उद्देश्य से कोई गतिविधि करता है तब वह सामाजिक क्रिया बन जाती है।** निम्न सूत्र से यह बात और अधिक स्प''ट हो जाएगी–

सामाजिक क्रिया = गतिविधि + लक्ष्य

यदि किसी क्रिया से लक्ष्य को हटा दिया जाए तो वह सामाजिक क्रिया न बनकर मात्र एक गतिविधि रह जाएगी। जैसे–

सामाजिक क्रिया – लक्ष्य = गतिविधि

7.5 पारसंस के सामाजिक क्रिया के सिद्धान्त में अभिप्रेरण तथा मूल्य (Motivation and Values in Parsons' Theory of Social Action)

पारसंस के अनुसार कर्ता के समक्ष क्रिया सम्पादन के दौरान अनेक अभिप्रेरण और मूल्य होते हैं जिनका प्रभाव क्रिया की दषा पर निष्चित रूप से पड़ता है। **पारसंस** ने निम्नलिखित तीन प्रकार के अभिप्रेरण और मूल्यों की चर्चा की है–

अभिप्रेरण के प्रकार–

1. **संज्ञानात्मक अभिप्रेरण(Cognitive Motivation)**–
   इन अभिप्रेरणों द्वारा क्रिया से जुड़ी सूचनाएं कर्ता को उपलब्ध करायी जाती हैं।
2. **संवेगात्मक अभिप्रेरण (Cathatic Motivation)**–
   ये ऐसे अभिप्रेरण हैं जिनके साथ कर्ता का संवेगात्मक लगाव होता है। जैसे रमेष का तीर्थ यात्रा के दौरान मात्र पूजा–पाठ से जुड़े रहना तथा सैर सपाटे से अपने आप को दूर रखना।
3. **मूल्यांकनात्मक अभिप्रेरण (Evaluative Motivation)**–
   इन अभिप्रेरणों द्वारा कर्ता अपने द्वारा की जाने वाली क्रिया का हानि–लाभ की दृ"ट से मूल्यांकन करता है।

मूल्यों के प्रकार–

सामाजिक क्रिया के सम्पादन से पूर्व कर्ता क्रिया से सम्बन्धित मूल्यों को देखता है क्योंकि **पारसंस** का मत है कि कर्ता के ऊपर व्यक्तिगत और समूह के मूल्यों के भी निम्नलिखित तीन प्रकार बतलाये हैं–

1. **संज्ञानात्मक (Congnitive)**– इन मूल्यों के द्वारा कर्ता क्रिया का वस्तुनि"ठता से मूल्यांकन करता है।
2. **प्रशंसात्मक (Appreciative)**– इन मूल्यों के आधार पर व्यक्ति की समूह और समाज द्वारा प्रषंसा की जाती है।
3. **नैतिक (Moral)**– इन मूल्यों के आधार पर क्रिया के नैतिकता के स्तर का मूल्यांकन किया जाता है। इन मूल्यों का सम्बन्ध नैतिकता से होता है।

पारसंस ने अपने सैद्धान्तीकरण में उपयोगितावाद, प्रत्यक्षवाद तथा आदर्षवाद का समन्वय किया है। **पारसंस** के अनुसार सामाजिक क्रिया का उद्देष्य कुछ नि"चत अवस्थाओं में लक्ष्य प्राप्ति होता है। इन निष्चित अवस्थाओं में अभिप्रेरण और मूल्यों की भूमिका अत्यधिक महत्व–पूर्ण होती है।

क्रिया की संषोधित अवधारणा में पारसन्स ने यह स्प"ट किया कि सामाजिक क्रिया मुख्यतः व्यवस्था की तीन उप–व्यवस्थाओं से प्रभावित होती है। यह –व्यवस्थाएँ इस प्रकार हैं :

- **सामाजिक क्रिया एवं प्रतिमान**– पारसन्स ने स्प"ट किया कि कर्त्ता जब विषे"ा परिस्थितियों में अपने लक्ष्य और साधनों का चयन करता है जब उसकी चेतना सामाजिक प्रतिमानों से प्रभावित होती है। लक्ष्य और साधनों का चयन जिन प्रतिमानित विकल्पों से प्रभावित होता है, उन्हें पारसन्स ने पाँच युग्मों में विभाजित करके स्प"ट किया है। प्रतिमानित विकल्पों के यह युग्म अथवा जोड़े इस प्रकार है, सार्वभौमिकता बनाम व्यक्तिवादिता, विषि"टता बनाम मिश्रित, विषि"टता बनाम मिश्रित,

रागात्मक नि''पक्षता बनाम रागात्मकता, अर्जित बनाम प्रदत,समूह केन्द्रता बनाम स्व–केन्द्रता। इन प्रतिमानित विकल्पों के द्वारा पारसन्स ने यह स्प''ट किया कि कर्त्ता द्वारा की जाने वाली क्रिया स्वेच्छाचारी नहीं होती बल्कि उस पर सामाजिक नियन्त्रण का एक स्प''ट प्रभाव होता है। इनकी विस्तृत विवेचना हम 'प्रतिमानित विकल्प' की आगामी विवेचना में करेंगे।

- **सामाजिक क्रिया तथा अन्य क्रिया–व्यवस्थाएँ**– पारसन्स तथा एडवर्ड षिल्स ने अपनी पुस्तक 'टुवर्डस ए जनरल थियोरी ऑफ एक्षन' में स्प''ट किया कि व्यक्ति अथवा कर्त्ता द्वारा की जाने वाली क्रियाओं के कार्य–कारण के रुप में कुछ प्रेरणाओं का विषे''ा स्थान होता है। यह प्रेरणाएँ मुख्य रुप से तीन हैः

  ज्ञानात्मक प्रेरणा– वह प्रेरणा है जिसमें व्यक्ति तथ्यों और विष्वासों का निर्धारण उचित की भावना अथवा किसी अन्य प्रकार के ज्ञान के आधार पर करता है। दूसरे 'ाब्दों में यह कहा जा सकता है कि जब व्यक्ति की क्रिया किसी जिज्ञासा, विष्वास, अथवा उपलब्ध ज्ञान से प्रभावित होती है तब इसे ज्ञानात्मक प्रेरणा से प्रेरित होने वाली सामाजिक क्रिया कहा जाता है।

  भावनात्मक प्रेरणा– वह दूसरी प्रेरणा है जो कर्त्ता द्वारा की जाने वाली क्रिया का आधार होती है। इस प्रेरणा से प्रभावित सामाजिक क्रियाएँ विवेक या तर्क पर आधारित नहीं होती है।

  मूल्यांकन प्रेरणा– विषुद्ध रुप से वैज्ञानिक दृ''टकोण पर आधारित होती है। तथा इसमें विष्वास या भावना का कोई समावेष नहीं होता। यह प्रेरणा कर्त्ता को किसी भी क्रिया को करने से पहले परिस्थितियों का तटस्थ मूल्यांकन करने के लिए प्रेरित करती है। पारसन्स और षिल्स ने बतलाया कि भिन्न–भिन्न परिस्थितियों और अवसरों पर विभिन्न कर्त्ताओं की क्रियाएँ इनमें से अलग–अलग प्रेरणाओं से संचालित हो सकती है। अथवा एक ही कर्त्ता विभिन्न अवसरों पर इन तीनों तरह की प्रेरणाओं से प्रभावित हो सकता है। इतना अवष्य है कि कोई भी कर्त्ता जब अनेक लक्ष्यों और साधनों में से कुछ विषे''ा लक्ष्यों तथा साधनों का चयन करके कोई क्रिया करता हैं तब वह इन्हीं प्रेरणाओं में से होकर गुजरता है।

- **सामाजिक क्रिया तथा भूमिका–व्यवस्थाएँ**– पारसन्स के मतानुसार समाज में कोई क्रिया करते समय कर्त्ता की अपनी विषि''ट भूमिकाएँ होती है। इन भूमिकाओं का कर्त्ता द्वारा की जाने वाली क्रियाओं के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण स्थान हैं। यही कारण है कि पारसन्स ने व्यक्ति को केवल कर्त्ता के रुप में ही स्वीकार नहीं किया। बल्कि उनके अनुसार व्यक्ति भूमिका धारक भी होता है। उदाहरण के लिए परिवार में क्रिया करने वाला व्यक्ति एक पिता, पुत्र अथवा भाई की भूमिका का भी धारक होता है। तथा उसके द्वारा की जाने वाली क्रियाओं पर उसकी भूमिका का स्प''ट प्रभाव पड़ता हैं। सामाजिक क्रिया और भूमिका व्यवस्था के सह संबंध का उल्लेख करते हुये पारसन्स ने भूमिका व्यवस्था को दो भागों में विभाजित किया है।

  पहली भूमिका व्यवस्था वह है, जिसमें कर्त्ता जिन अनव्यक्ति के बीच रहकर क्रिया करता है। वो उनकी क्रियाओं से प्रभावित होता है। कोई भी क्रिया करने से पहले वह अवष्य सोचता हैं कि दूसरे कर्त्ता के साथ किस तरह का व्यवहार करने से उसका व्यवहार अन्य कर्त्ता के व्यवहार के समान बन सकता हैं। इस क्रिया को पारसन्स ने तकनीकी भूमिका व्यवहार का नाम दिया।

  दूसरी भूमिका व्यवस्था कर्त्ता के उन वास्तविक व्यवहारों से सम्बन्धित हैं जो कर्त्ता अनव्यक्तियों के साथ करता हैं। इसके द्वारा पारसन्स ने यह बतलाया कि कोई भी सामाजिक क्रिया

करने से पहले प्रत्येक कर्त्ता अन्य कर्त्ताओं से प्रभावित होता है। तथा अन्य कर्त्ताओं को प्रभावित करता हैं।

सामाजिक क्रिया के अन्तर्गत पारसन्स ने विषे"ा रुप से पॉच तत्वों को माना हैं। जो तत्व है–

1. कर्त्ताओं की बहुलता,
2. लक्ष्यों की अनेकता,
3. साधनों की विविधता,परिस्थितियाँ तथा
4. उत्प्रेरण।

अपनी पुस्तक सोषल सिस्टम में पारसन्स ने पुनः स्प"ट किया हैं कि सामाजिक क्रिया को सामाजिक व्यवस्था की एक प्रमुख इकाई के रुप में ही स्वीकार किया जा सकता हैं, उन्होंने लिखा है कि समाज की व्यवस्था मानवीय क्रिया व्यवस्था की एक प्रमुख उप–व्यवस्था हैं। पारसन्स का कथन हैं कि प्रत्येक समाज व्यवस्था इसलिए बनी रहती है कि कर्त्ता समाज के मूल्यों और सामाजिक प्रतिमानों से प्रभावित होकर ही कोई क्रिया करता हैं।

7.6 साामाजिक क्रिया की रूपरेखा (Outline of Social Action)–

इसके अन्तर्गत पारसंस ने निम्न रूपरेखा प्रस्तुत की है जिससे कि सामाजिक क्रिया की अवधारणा व्याख्या अत्यधिक सरल रूप में स्प"ट हो जाती है–

1ण **कर्ता/सामूहिकता (Actor/Collectivity)**

2. **लक्ष्य (Goal)**
3. **स्थिति/द"ाा (Situation)**– इसके अन्तर्गत दो स्थितियां आती हैं–
   अ–भौतिक (Physical) तथा
   ब–अभौतिक (Non Physical)।
4. **कर्ता की स्थिति के विशय में अभिस्थापना (Actor's Orientation to situation)**– **इसके अन्तर्गत मानक और मूल्य (Norms and Values) आते हैं।**
5. **कर्ता के अभिप्रेरण (Actor's Motivation)**– **इनको पारसंस ने तीन भागों में विभक्त किया है–**
   अ–संज्ञानात्मक अभिप्रेरण (Cognitive Motivation)
   ब–संवेगात्मक अभिप्रेरण (Cathatic Motivation)
   स–मूल्यांकनात्मक अभिप्रेरण (Evaluative Motivation)
6. **मूल्य अभिस्थापन (Value Orientation)**–**इनको भी पारसंस ने तीन भागों में विभाजित किया है–**
   अ–संज्ञानात्मक अभिस्थापन(Cognitive Orientation)
   ब–iz"kaLkkRed अभिस्थापन (Appreciative Orientation)
   स–नैतिक अभिस्थापन (Moral Orientation)

चित्र :– पारसन्स का सामाजिक क्रिया

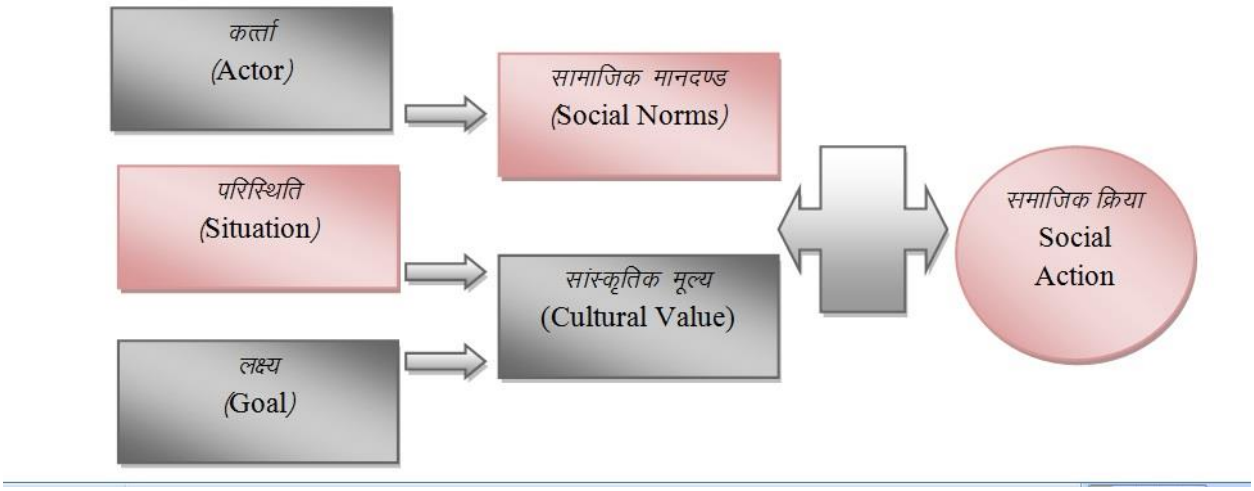

पारसंस ने अपने सैद्धान्तीकरण में उपयोगितावाद, प्रत्यक्षवाद तथा आद"वाद का समन्वय किया है। **पारसंस** के अनुसार सामाजिक क्रिया का उद्दे"य कुछ नि"चत अवस्थाओं में लक्ष्य प्राप्ति होता है। इन नि"चत अवस्थाओं में अभिप्रेरण और मूल्यों की भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण होती है।

पारसंस का सामाजिक क्रिया का स्वैच्छिक सिद्धान्त विभिन्न अवधारणाओं का समन्वय है। इस सिद्धान्त का प्रमुख आधार कर्ता या सामूहिकता है। कोई भी क्रिया बिना अभिप्रेरण और मूल्य के नहीं होती है क्योंकि बिना अभिप्रेरण और मूल्य के कर्ता अपने लक्ष्य को नहीं प्राप्त कर सकता है। पारसंस ने कर्ता द्वारा की जाने वाली इन क्रियाओं को किसी भी व्यवस्था के संदर्भ में यूनिट एक्ट्स (Unit Acts) हैं। यूनिट एक्ट्स (Unit Acts) के पीछे लक्ष्य और अभिप्रेरण होते हैं तथा भौतिक और अभौतिक परिस्थितियां अनिवार्य रूप से होती हैं।

7.7 सारां"ा –

इस इकाई के अध्ययन से आप जान चुके हैं कि सामाजिक क्रिया क्या है। पैरेटो ने सामाजिक क्रिया के दो प्रकार की चर्चा की है। मैक्स वेबर के अनुसार, सामाजिक क्रिया की अवधारणा तथा इसके प्रकार। साथ ही पारसंस के सामाजिक क्रिया का सिद्धांत, पारसंस ने सामाजिक क्रिया में किन तत्वों को समावे"ा किया है।

7.8 पारिभाशिक शब्दावली–

वि"ाष्ट चालक (Residues) – पैरेटो के अनुसार, मनुष्य की अधिकां"ा क्रिया कुछ चालकों पर निर्भर होती है। पैरेटो ने इन्हीं चालकों को विषिष्ट चालक कहा है। इनकी प्रकृति बहुत कुछ संवेगों से मिलती जुलती होती है। इसी कारण वि"ाष्ट चालकों को संवेगों की अभिव्यक्ति के रुप में देखा जाता है।

भ्रान्त तर्क (Derivations)– पेरैटो ने अपने सामाजिक क्रिया के वि"लेषण क्रम में भ्रांत तर्क की चर्चा की। जब कर्ता कोई अतार्किक क्रिया करता है तो अपने क्रिया को सही साबित करने के लिए भ्रान्त तर्क

का सहारा लेता है, जिससे यह क्रिया का औचित्य साबित हो सके। इसी प्रकार के तर्क को भ्रान्त तर्क कहा जाता है।

7.9 अभ्यास/बोध प्रश्नों के उत्तर

1. पैरेटो के अनुसार, सामाजिक क्रिया कितने प्रकार के हैं?
(क) एक (ख) दो
(ग) तीन (घ) चार

2. समाजषास्त्र, सामाजिक क्रिया का व्याख्यात्मक बोध कराने वाला विज्ञान है, किसने कहा?
(क) हरबर्ट स्पेन्सर (ख) पैरेटो
(ग) मैक्स वेबर (घ) पारसन्स

3. मैक्स वेबर के अनुसार, सामाजिक क्रिया कितने प्रकार के हैं?
(क) दो (ख) तीन
(ग) चार (घ) पॉच

4. सामाजिक क्रिया का स्वैच्छिक सिद्धांत किसने प्रस्तुत किया है?
(क) मैक्स वेबर (ख) पारसंस
(ग) पारसंस (घ) पैरेटो

5. इनमें से कौन सामाजिक क्रिया के व्यक्तिनि"ठ अर्थ पर जोर देते हैं?
(क) मैक्स वेबर (ख) पारसंस
(ग) पैरेटो (घ) दुर्खीम

6. सामाजिक क्रिया को सम्पन्न होने के लिए इनमें से कौन कर्ता परिस्थिति एवं प्रेरणा को आव"यक मानते हैं?
(क) मैक्स वेबर (ख) पैरेटो
(ग) दर्खीम (घ) पारसंस

7- पारसन्स के अनुसारक्रिया के तत्वहैं–
d- कर्ता ग. परिस्थिति
ख. लक्ष्य घ. उपरोक्त सभी

उत्तर– 1–ख, 2–ग, 3–ग, 4–ख, 5–क, 6–घ ।

7-10 संदर्भ ग्रंथ सूची–

(1) शम्भूलाल दोषी एवं मधुसूदन त्रिवेदी, उच्चतर समाजषासत्रीय सिद्धान्त (1997) रावत पब्लिकेषन्स, जयपुर एवं नई दिल्ली, च. 40.150
(2) एस. एल. दोषी एवं पी. सी. जैन, सामाजिक विचारक (1997), सामाजिक विचारक, रावत पब्लिकेषन्स, जयपुर एवं नई दिल्ली, च. 100.350
(3) डा. शीबा सिद्दीकी, आधुनिक एवं उत्तर आधुनिक समाजषास्त्रीय सिद्धान्त (2012) विवेक प्रकाषन, जवाहर नगर, दिल्ली, च. 24–30
(4) डा. एम. एम. लवानिया एवं शषी के. जैन, सैद्धान्तिक समाजषास्त्र (1998), रिसर्च पब्लिकेषन्स, जयपुर, च. 129.175
(5) एस. एस. पाण्डेय, टीएमएच, च. 16ण्1ए 16ण्9
(6) डा0 अफरोज एकबाल, भारत में सामाजिक परिवर्तन दषा एवं दिषा,ल्यूसेंट पटना, च 1. 55

7.11 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री–

(1) M. Francis Abraham, Modern Sociological Theory, Oxford University, Press Bombay, Calcutta, Madras (1982) —P- 40-88
(2) Sujit Kumar Choudhary, Thinkers and Theories in Sociology — P 181-220

7-12 निबन्धात्मक प्रश्न–

(1) सामाजिक क्रिया की अवधारणा को परिभाषित करते हुए बतायें कि पैरेटो ने सामाजिक क्रिया के कितने प्रकार बताए हैं?
(2) पैरेटो के अनुसार अतार्किक क्रिया के क्या कारण हैं?
(3) मैक्स वेबर के अनुसार, सामाजिक क्रिया कितने प्रकार के होते हैं? वर्णन करें।
(4) पारसंस द्वारा स्थापित सामाजिक क्रिया के सिद्धान्त का वर्णन करें।
(5) सामाजिक क्रिया के सिद्धांत में पारसंस का योगदान दर्शाइए। इस सिद्धांत की क्या मर्यादाएँ हैं?

इकाई 8 – संरचनात्मक–प्रकार्यवाद एवं प्रतिमान चर

(Structural-Functionalism And Pattern Variable)

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 पारसंस के अनुसार संरचना तथा व्यवस्था

8.3 पारसंस के अनुसार सामाजिक व्यवस्था की पूर्व आव"यकताएँ

8.4 प्रतिमान चर

8.5 आलोचनात्मक मूल्याकंन

8.6 सारांश

8.7 पारिभाषिक शब्दावली

8.8 अभ्यास/बोध प्रश्नों के उत्तर

8.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

8.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

8.11 निबंधात्मक प्रष्न

23.0 उद्देश्य–

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप जान पायेगें कि

1. **प्रकार्यवाद क्या है ?**
2. **टालकट पारसन्स के सामाजिक संरचना के चार प्रमुख प्रारुपों क्या है?**
3. **प्रकार्यवाद से सम्बन्धित विभिन्न विद्धानों के विचार क्या है ?**
4. **पारसन्स द्वारा दिये हुए प्रकार्यात्मक पूर्व आव"यकताएं क्या हैं?**
5. **प्रतिमान चर की अवधारणा क्या हैं?**

प्रकार्यवाद के क्षेत्र में टैलकॉट पारसन्स का बहुत ही महत्वपूर्ण योगदान रहा है। वे एक ऐसे समाजशास्त्री थे जिन्होंने स्पेन्सर एवं दुर्खीम के प्रकार्यवाद को मालिनॉस्की एवं रैडक्लिफ–ब्राउन के मानवशास्त्रीय साहित्य से निकालते हुए इसे फिर से समाजशास्त्र में स्थापित किया। पारसन्स का विचार है कि समाज का सही अध्ययन संरचात्मक–प्रकार्यात्मक(Structural Functional) दृ"टकोण से ही संभव

है। सामाजिक व्यवस्थता की यथार्थकता को तबतक भली–भाँति नहीं समझा जा सकता जबतक कि उनको गठित करने वाली इकाइयों के प्रकार्यों को अच्छी तरह समझ नहीं लिया जाय।

23.1 प्रस्तावना–

प्रकार्यवाद से तात्पर्य वैसे दृ"टकोण से है जो मानता है, कि समाज की जो भी इकाई है या जो भी इकाई अस्तित्व में है उसका समाज के लिए कोई सकारात्मक योगदान होता है। प्रकार्यवाद के क्षेत्र में टॉलकट पारसन्स (ज्ंसबवजज च्तेवदे) का बहुत ही महत्वपूर्ण योगदान रहा है। वे एक ऐसे समाजषास्त्री थे जिन्होने स्पेन्सर एवं **दुर्खीम** के प्रकार्यवाद को **मैलिनोस्की** एवं रेडक्लिफ– ब्राउन के मानव 'ाास्त्र साहित्य से निकालते हुए इसे फिर से समाजषास्त्र में स्थापित किया। पारसन्स का विचार है कि समाज का सही अध्ययन संरचनात्मक–प्रकार्यात्मक (जतनबजनतंस. निदबजपवदंस) दृ"टकोण से ही सम्भव है। समाजिक व्यवस्था की यथार्थता को तब तक भली–भांती नहीं समझा जा सकता जबतक कि उनको गठित करने वाली इकाईयों के प्रकार्यों को अच्छी तरह समझ नहीं लिया जाये।

23.2 पारसन्स के अनुसार सामाजिक संरचना तथा व्यवस्था

पारसन्स के अनुसार सामाजिक संरचना या व्यवस्था के अध्ययन से हमें यही ज्ञात होता है कि इसके अंतर्गत अनेक परस्पर सम्बन्धित इकाइयाँ हैं जो सम्पूर्ण व्यवस्था या संरचना को एक निश्चित प्रतिरुप प्रदान करती हैं। पारसन्स के अनुसार उन अन्तःसम्बन्धित इकाइयों के अध्ययन का उत्तम तरीका यह है कि इन्हें सामान्यीकृत संरचनात्मक–प्रकार्यात्मक व्यवस्था के रुप में देखा जाय। समाज व्यवस्था को हमें एक गतिषील व्यवस्था के रुप में देखना चाहिए।

समाजषास्त्र में सामाजिक व्यवस्था की अवधारणा अत्यन्त महत्वपूर्ण है। क्योंकि सामाजिक व्यवस्था के दो भाग माने जाते हैं। प्रथम सामाजिक संरचना, द्वितीय प्रकार्य। अतः सामाजिक व्यवस्था को भी समझना आवष्यक है। मानव जीवन के क्रम और निरन्तरता को बनाए रखने के लिये समाज का महत्वपूर्ण योगदान हैं। इसीलिए मानव जीवन के अस्तित्व एवं प्रगति के लिये सामाजिक व्यवस्था आवष्यक है। व्यवस्था का अभिप्राय उस क्रमबद्धता से है जो किसी संरचना के विभिन्न इकाईयों के मध्य एक निष्चित प्रकार्यात्मक आधार पर पायी जाती हैं व्यवस्था को निम्नलिखित बिन्दुओं से समझा जा सकता है।

- व्यवस्था का निर्माण एक से अधिक इकाइयों से होता हैं और ये सभी इकाइयां क्रमबद्ध रुप में एक–दूसरे से जुड़ी होती है।
- व्यवस्था का संबंध एक संरचना से होता है। संरचना के बिना व्यवस्था नहीं हो सकती।
- व्यवस्था एक ऐसी स्थिति का बोध कराती है। जिसमें विभिन्न तत्व अनेकता से एकता के स्वरुप को स्प"ट करती है।
- व्यवस्था के निर्णायक अनेक इकाइयों एक–दूसरे से इस प्रकार अर्न्तसम्बन्धित होती हैं कि वे प्रकार्यात्मक आधार पर महत्वपूर्ण होती हैं।

- व्यवस्था में परिवर्तनषीलता होती है क्योंकि व्यवस्था का संबंध आवष्यकता पूर्ति से होता हैं। और व्यक्तियों की आवष्यकता में परिवर्तन होते रहने से व्यवस्था की संरचना में परिवर्तन होता रहता है।
- व्यवस्था कुछ इकाइयों का संयोग मात्र नही हैं, अपितु इसे व्यवस्था तभी कह जा सकता है जब वह समाज के लिए उपयोगी है।

एम.ई. जोन्स ने लिखा है सामाजिक व्यवस्था वह स्थिति हैं जिसमें समाज के विभिन्न क्रियाषील इकाईयां एक–दूसरे से तथा सम्पूर्ण समाज के साथ अपूर्ण ढंग से जुड़कर कार्य करती है। जोन्स की परिभा"ाा से यह स्प"ट होता हैं कि सामाजिक व्यवस्था में केवल सहयोग का ही समावेष होना आवष्यक नहीं है। समाज में वस्तुतः सहयोग और संघ"ार्ा सभी प्रकार के तत्व क्रियाषील रहते है। लेकिन सामाजिक व्यवस्था का आषय उस स्थिति से लगाया जाता है जिसमें प्रत्येक भाग को एक–दूसरे से अर्न्तक्रिया करने और अपने सामाजिक हितों को पूरा करने के अधिकतम अवसर प्राप्त हो सके।

पारसन्स ने सामाजिक व्यवस्था को परिभा"ात करते हुए लिखा है '' एक सामाजिक परिस्थिति में जिसका की एक भौतिक तथा एक पर्यावरणीय संबंधी पक्ष होता है। जब अनेक व्यक्ति कर्त्ता सामन्यतः स्वीकृत सांस्कृतिक प्रतीकों की व्यवस्था के अन्तर्गत आदर्ष लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये अन्तःक्रिया कर रहे होते है तब इसी स्थिति को हम सामाजिक व्यवस्था कहते हैं।'' पारसन्स आगे लिखते है, ''सामाजिक व्यवस्था क्रिया की एक संगठित प्रणाली है, जिसमें बहुत से कार्यकर्त्ताओं की अन्तःक्रियाओं का समावेष होता है।''

सामाजिक व्यवस्था में अनेक वैयक्तिक कर्त्ताओं के बीच 'अन्तःक्रियाएँ' होती हैं जिनका एक 'आदर्ष लक्ष्य' होता है। सामाजिक व्यवस्था का सम्बन्ध अनुकूल परिस्थितियों के सन्तुलन से होता है, जिसके अन्तर्गत सामाजिक व्यवस्था को संगठित रखने के लिए कुछ स्वीकृत सांस्कृतिक प्रतीकों के अनुसार ही अन्तःक्रिया की जाती है। पारसन्स की सामाजिक व्यवस्था को इन पक्षों में समझा जा सकता है–प्रथम पक्ष वह है, जिसके द्वारा सामाजिक व्यवस्था का निर्माण होता है, जिसे संरचनात्मक पक्ष कहा जाता है। दूसरा पक्ष यह है, जो अनेक संस्थाओं के माध्यम से सामाजिक व्यवस्था को समाज उपयोगी बनाता है और स्थायित्व प्रदान करता है जिसे संस्थात्मक पक्ष कहते हैं।

पारसन्स सामाजिक व्यवस्था में तीन तत्वों पर विषे"ा बल देते हैं–

- सामाजिक क्रिया
- कर्त्ता
- प्रस्थिति एवं भूमिका।

चार्ल्स पी. लूमीस ने सामाजिक व्यवस्था को समाज में पाई जाने वाली एक आन्तरिक स्थिति माना है और बताया है कि इसके लिए आन्तरिकरण का अध्ययन आवष्यक है, जिनमें सामाजिक प्रक्रियाओं की गतिषीलता ही सामाजिक उन्नति तथा उसके स्थायित्व को

बनाये रखने में मदद करती है। सामाजिक व्यवस्था में पायी जाने वाली सामाजिक अन्तःक्रियाओं के परिणामस्वरुप सामाजिक सम्बन्ध स्थापित होते हैं। चार्ल्स लूमीस के अनुसार सामाजिक व्यवस्था के नौ महत्वपूर्ण तथ्य है। इसका वर्णन उन्होंन अपनी पुस्तक सोषल सिस्टम में की है। जो निम्नलिखित हैं–

- **विश्वास और ज्ञान**
- **भावनाऐं**
- **लक्ष्य**
- **आदर्श नियम**
- **प्रस्थिति एवं भूमिका**
- **पद**
- **'ाक्ति अथवा सत्ता**
- **मान्यताऐं**
- **सुविधा**

सामाजिक व्यवस्था के व्यवस्था के विषे"ताओं को निम्नलिखित बिन्दुओं पर समझा जा सकता हैं।

- सामाजिक व्यवस्था में एक से अधिक कर्त्ता व्यक्ति होते हैं जो अधिकतम संतु"ि"ट के लिये प्रेरित होकर अन्तःक्रिया करते है। व्यक्तियों की अन्तःक्रिया को एक सूत्र में पिरोने का काम व्यवस्था के मूल्य और प्रतिमान करते हैं।
- सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत विभिन्न तत्वों में जो एकता पायी जाती हैं। उसका आधार प्रकार्यात्मक संबंध होता है।
- सामाजिक व्यवस्था में अन्तःक्रिया करने वाले व्यक्ति व्यवस्था के मूल्यों के प्रति सहमति रखते हैं।
- सामाजिक व्यवस्था में अनूकूलन का गुण होता हैं इसके दो पक्ष हैं। प्रथम – सामाजिक व्यवस्था जड़ और स्थिर नहीं हैं अथवा ये गतिषील होती है। द्वितीय– इस गतिषीलता के कारण इसका अनूकूलन बाहय परिस्थितियों से होता रहता है।
- सामाजिक व्यवस्था यह मानकर चलती है कि समाज में निरन्तरता और सतर्कता होती है। यद्यपि सामाजिक व्यवस्था की इकाइयां परिवर्तनषील होती है। लेकिन इससे संपूर्ण व्यवस्था की संरचना और इसके प्रकार्यों में कोई अन्तर नही आता।
- सामाजिक व्यवस्था की एक प्रमुख विषे"ाता साम्यवास्था है अर्थात व्यवस्था की यह प्रकृति होती है। कि वे अपनी यथास्थिति को बनाए रखे।
- सामाजिक व्यवस्था एक सामाजिक परिस्थिति में जिसका की एक भौतिक तथा एक पर्यावरणीय संबंधी पक्ष होता है। जब अनेक व्यक्ति कर्त्ता सामन्यतः स्वीकृत सांस्कृतिक प्रतीकों की व्यवस्था के अन्तर्गत आदर्ष लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये अन्तःक्रिया कर रहे होते है तब इसी स्थिति को हम सामाजिक व्यवस्था कहते हैं।
- सामाजिक व्यवस्था में संतुलन एवं क्रमबद्धता होती है।

- प्रत्येक सामाजिक व्यवस्था की एक निष्चित सीमा होती है।
- प्रत्येक सामाजिक व्यवस्था की सामाजिक, संस्कृतिक परिस्थितियों के अन्तर्गत व्यक्ति के व्यवहारों पर नियत्रंण रखने के लिए आदर्ष नियमों की एक व्यवस्था होती हैं।

8.3 पारसन्स के अनुसार सामाजिक संरचना के चार प्रमुख प्रारुप

टालकट पारसन्स ने अपनी सामाजिक संरचना के चार प्रमुख प्रारुपों का उल्लेख किया है। चार प्रकार के सामाजिक मूल्यों पर आधारित है–

- **सार्वभौमिक सामाजिक मूल्य**
- **विशि"ट सामाजिक मूल्य**
- **अर्जित सामाजिक मूल्य**
- **प्रदत सामाजिक मूल्य**

पारसन्स का मानना है कि सार्वभौमिक सामाजिक मूल्य वो होते है। जो कि समस्त समाजों में व्यापक रुप से पाये जाते है। और सभी व्यक्यिों पर लागू होते है। इसके विपरीत विषि"ट सामाजिक मूल्य किन्हीं विषे"ा सामाजिक सम्बन्धों पर आधारित होते हैं। अर्जित सामाजिक मूल्य वे होते हैं जिन्हें एक व्यक्ति अपने प्रत्यन्नो द्वारा प्राप्त करता हैं। जबकि पंरपरा द्वारा निर्धारित पदों से सम्बन्धित मूल्य, प्रदत सामाजिक मूल्य कहे जाते हैं। इन्हीं चार सामाजिक मूल्यों के आधार पर पारसन्स ने सामाजिक संरचना के चार प्रारुपों को समझाया हैं

1. **सार्वभौमिक अर्जित प्रतिमान**– सामाजिक संरचना के इस प्रथम प्रतिमान में सार्वभौमिक एवं अर्जित प्रकार के सामाजिक मूल्यों का समावेष होता है। सार्वभौमिक मूल्यों में समाज में नातेदारी, समुदाय, प्रजाति अथवा वर्ग आदि के सम्बन्ध प्रभावित होते है। इन मूल्यों के कारण व्यक्ति को कुछ निष्चित पदों की प्राप्ति होती है। लेकिन इनसे समाज की गतिषीलता में कमी आती है। एवं रुढ़िवादिता में वृद्धि होती है। इसके विपरीत अर्जित सामाजिक मूल्यों को व्यक्ति अपने परिश्रम से प्राप्त करता हैं। अतः अर्जित मूल्य व्यक्तिगत एवं सामूहिक अर्जन को प्राप्त करते हैं। इससे प्रथा एवं परम्परा का विषे"ा प्रभाव नहीं रहता । पूंजीवादी अर्थव्यवस्था अर्जित मूल्यों का एक उदाहरण हैं। जिसमें धन के अर्जन एवं संचय को काफी महत्व दिया जाता है। इस प्रकार इन दोनों प्रकार के सामाजिक मूल्यों के संयोग से सार्वभौमिक अर्जित प्रतिमान का निर्माण होता है। पारसन्स के अनुसार औद्योगिक समाजों की संरचना इस प्रकार के प्रतिमानों का उदाहरण है इस प्रकार के समाजों की संरचना में वर्ग व्यवस्था पायी जाती है। जो कि सार्वभौमिक मूल्यों पर आधारित है।साथ ही अर्जित मूल्यों का भी महत्व होता है।
2. **सार्वभौमिक प्रदत प्रतिमान**– पारसन्स के अनुसार सामाजिक संरचना के इस प्रतिमान में सार्वभौमिक मूल्य तो वही होते है। जिनका उल्लेख प्रथम प्रतिमान में हैं लेकिन इनमें अर्जित मूल्यों का स्थान प्रदत मूल्य ले लेते है। इसमें अतीत तथा भवि"य से संबंधित दोनों प्रकार के आदर्ष प्रतिमान में संयुक्त रुप से सम्मिलित रहते है। आदर्षों के चुनाव में रुढियों और परम्पराओं को विषे"ा महत्व नहीं दिया जाता। फलस्वरुप व्यक्तियों के समक्ष आदर्षों की अधिकता रहती है। साथ ही परिस्थितियों के अनुसार इनमें परिवर्तन भी होता रहता है। पारसन्स ने इस प्रकार के प्रतिमान

का उदाहरण '' आधुनिक वैज्ञानिक समाजों' का दिया है जिनमें दोनों प्रकार के मूल्यों का समावेष हैं।

3. **विशि"ट–अर्जित प्रतिमान**– इस प्रकार के प्रतिमान में सार्वभौमिक मूल्यों की अपेक्षा विषि"ट सामाजिक मूल्यों की प्रमुखता रहती है। ये सामाजिक मूल्य विषे"ा सामाजिक सम्बन्धों पर आधारित होते है, जो पारलौकिक भी हो सकते है। इसके साथ अर्जित मूल्यों का समावेष कर सामाजिक संरचना के इस प्रतिमान को प्रस्तुत किया गया है। पारसन्स के अनुसार प्राचीन भारतीय व चीनी सामाजिक संरचना को इस श्रेणी के प्रतिमान में रखा जा सकता है। मैक्स बेबर ने कन्फ्यूषियन चीनी सामाजिक संरचना का जो चित्र प्रस्तुत किया है, वह भी इसी श्रेणी के अन्तर्गत आता है।
4. **विशि"ट–प्रदत प्रतिमान**– पारसन्स के अनुसार सामाजिक संरचना का अन्तिम प्रारुप विषि"ट एवं प्रदत सामाजिक मूल्यों के संयोग से बना है। इस प्रकार के सामाजिक संरचना में रक्त–सम्बन्ध और स्थानीय समुदायों पर आधारित समूह पाये जाते हैं। नैतिकता का महत्व इस प्रकार की संरचना की एक विषे"ाता है।यहाँ विषि"ट वैयक्तिक गुणों को विषे"ा महत्व दिया जाता है। पारसन्स के अनुसार स्पेन की सामाजिक संरचना इसका श्रे"ठ उदाहरण है।

सामाजिक संरचना का अभिप्राय उस स्वरुप से है, जो समाज के विभिन्न अंगों के संयुक्त होने के उपरान्त एक निष्चित क्रमबद्धता के रुप में विकसित होता है। समाज के विभिन्न अंगों की प्रकृति एक–दूसरे से भिन्न है अतः प्रकृति के अनुसार ही सामाजिक संरचना के अनेक रुप हैं।

आधुनिक समाजशास्त्र में संरचनात्मक प्रकार्यवाद का वैज्ञानिक आधार प्रदान करने का महत्वपूर्ण श्रेय पारसन्स के शि"य आर0 के0 मर्टन को जाता है।

मर्टन के प्रकार्यवादी विचारों पर मानवशास्त्री मालिनॉफस्की , रैडक्लिफ–ब्राउन, क्लाइड क्लकहॉन आदि का काफी प्रभाव है।

टैलकॉट पारसन्स, आर0 के0 मर्टन, डेविस, स्मेलसर इत्यादि प्रकार्यवादियों ने सामाजिक व्यवस्था को दो स्तरों पर देखने का प्रयास किया है– एक संरचना के स्तर पर और दूसरा प्रकार्य के स्तर पर। यहाँ हम सामाजिक व्यवस्था के दोनों स्तरों पर बारी–बारी से विचार करना चाहेगें।

सामान्यतः सामाजिक व्यवस्था से तात्पर्य किसी बहुत बड़े सामाजिक समूह की व्यवस्था से है। उसी अर्थ में हम हिन्दू समाज, मुस्लिम समाज, या सिक्ख समाज की बात करते हैं। कभी–कभी तो हम उससे भी बड़ी सामाजिक व्यवस्था को ध्यान में रखकर इस शब्द का प्रयोग करते हैं, जैसे– भारतीय समाज, चीनी समाज, अमरीकी समाज इत्यादि। सामाजिक व्यवस्था का यह अर्थ गलत नहीं है, लेकिन मात्र यही अर्थ है, यह भी सही नहीं है। मात्र दो व्यक्ति भी सामाजिक समूह का निर्माण कर सकते हैं और उस समूह को भी सामाजिक व्यवस्था कहा जा सकता है, जैसे– मूल परिवार एक सामाजिक व्यवस्था है।

पारसन्स ने समस्त समाज को एक सामाजिक व्यवस्था के रुप में देखने का प्रयास किया है। यहाँ इस वि"ाय पर कुछ लिखने के पहले पाठकों को यह याद दिलाना आवश्यक है कि पारसन्स ने समाज को मकीवर एवं पेज की तरह परिभाषित करने का प्रयास नहीं किया है, बल्कि समाज को एक मूर्त व्यवस्था के रुप में देखने का प्रयास किया है। पारसन्स ने समाज की व्याख्या जिस रुप में

प्रस्तुत करने का प्रयास किया है, उसे ही ध्यान में रखकर जॉनसन ने अपनी पुस्तक Sociology में विस्तारपूर्वक समाज की चर्चा की है।

पारसन्स की सामाजिक व्यवस्था के सिद्धान्त को ठीक से समझने के लिए उनके सामाजिक क्रिया सिद्धान्त (Theory of Action) को समझ लेना आवष्यक है। उन्होंने 'क्रिया' ;।बजपवदद्ध 'ाब्द का प्रयोग सामाजिक व्यवहार ै;वबपंस ठमींअपवनतद्ध के पर्यायवाची के रुप में किया है। सामाजिक क्रिया किसे कहते हैं यह समझने के लिए सामाजिक क्रिया की संरचना ै;जतनबजनतम वि वबंपस ।बजपवदद्ध को समझना आवष्यक है।

टॉलकट पारसंस (Talcott Parsons) ने **1937** में अपनी पुस्तक **'The Structure of Social Action'** में सर्वप्रथम अपने सामाजिक क्रिया सम्बन्धी विचारों का स्पष्ट उल्लेख किया। यह सामाजिक क्रिया का सिद्धान्त ही पारसंस की समाजषास्त्रीय विचारधारा का सर्वप्रमुख अंग है। **पारसंस** ने अपने सामाजिक क्रिया के सिद्धान्त को विष्ले"ाणात्मक रूप में प्रस्तुत किया और उनका यही सिद्धान्त बाद में सामाजिक व्यवस्था सिद्धान्त के रूप में हमारे समक्ष आया।

वे एक ऐसे सिद्धान्त का निर्माण करना चाहते थे जो विष्ले"ाणात्मक यथार्थवाद से सम्बन्धित हो। उनके द्वारा जिस सामाजिक व्यवस्था के सिद्धान्त का निर्माण किया गया है, वह सामाजिक क्रिया पर ही आधारित है। पारसंस के सिद्धान्त निर्माण का उद्देष्य विष्ले"ाणात्मक यथार्थवाद (।दंसलजपबंस त्मंसपेउ) को जानना था। उनका उद्देष्य था कि आनुभविकता के पीछे जो यथार्थवाद है, उसे उजागर किया जाये।

उन्होंने विष्ले"ाणोपरान्त इन समाज वैज्ञानिकों को तीन पृथक्–पृथक् अवधारणाओं के अन्तर्गत रखा–

1. **उपयोगितावाद (Utilitarianism)**
2. **प्रत्यक्षयवाद (Positivism)**
3. **आदर्शवाद (Ideslism)**

1. उपयोगितावाद (Utilitarianism)

उपयोगितावाद के अन्तर्गत क्लास्किल अर्थ"ाास्त्री **मा"र्ल, रिकार्डो तथा एड्म स्मिथ** आदि आते हैं। उपयोगितावादियों ने यह तर्क दिया कि व्यक्ति बाजार में वस्तुओं का तोलमोल उनकी उपयोगिता के आधार पर करते हैं। **पारसंस** को उपयोगितावादियों का यह दृ"टिकोण रास नहीं आया और उनको ऐसा आभास हुआ कि उपयोगितावादी अवधारणा के माध्यम से किसी सर्वसम्मत समाज की कल्पना असम्भव है क्योंकि उपयोगितावाद समाज में गला–काट प्रतियोगिता को जन्म देती है।

2- प्रत्यक्षवाद (Positivism)

प्रत्यक्षवाद के अनतर्गत **पारसंस** ने **पेरेटो, दुर्खीम, मेक्स वेबर** आदि की सैद्धान्तिक अवधारणाओं का विष्ले"ाण किया। प्रत्यक्षवाद की मान्यता है कि जिस प्रकार भौतिक घटनाओं के सम्बन्ध होते हैं वैसे ही सम्बन्ध सामाजिक घटनाओं में पाये जाते हैं। **पारसंस** को प्रत्यक्षवादियों का यह मत स्वीकार

नहीं था कि भौतिक घटनाओं की भांति ही हम सामाजिक घटनाओं के सम्बन्धों को भी देख सकते हैं। फिर भी, उनको प्रत्यक्षवादियों की "तार्किकता" अच्छी लगी।

3. आदर्शवाद (Idealism)

पारसंस ने इसका भी विष्ले"ाण किया और इस नि"क"र्ा पर पहुंचे कि आद"ार्वाद समाजषास्त्रीय सिद्धान्तों का निष्चित आधार नहीं बन सकता क्योंकि व्यक्ति का सामाजिक जीवन कभी–कभी विचारों की धारा से कट जाता है। समाज"ाास्त्रीय सिद्धान्तों के निर्माण के क्षेत्र में **पारसंस** ने संष्ले"ाण या एकीकरण का कार्य किया है। उन्होंने उपयोगितावाद, प्रत्यक्षवाद और आदर्षवाद से बहुत कुछ उधार लिया है और उनका सामाजिक क्रिया की सिद्धान्त इन तीनों का समन्वित स्वरूप है।

पारसंस ने अपनी पुस्तक **'The Structure of Social Action'** और **शिल्स (Shil)** के साथ लिखी गयी अपनी पुस्तक **' ज्वूंतके ंदक जीमवतल वि ेवबपंसश** में स्प"ट किया है कि सामाजिक क्रिया का सिद्धान्त एक स्वैच्छिक सिद्धान्त है। यह सिद्धान्त स्वैच्छिक इस कारण है कि कर्ता (Actor) अपने लक्ष्य (Goal) हासिल करने के लिए मौजूद विकल्पों में उसे जो उचित दिखाई देता है, उसे वह अपनाता है। **पारसंस** का मानना है कि **"सामाजिक क्रिया कर्ता परिस्थिति व्यवस्था (Actor Situation System) में वह प्रक्रिया है जिसका कि अकेले कर्ता के लिए या सामूहिक रूप में उस समूह के कुछ व्यक्तियों के लिए प्रेरणात्मक महत्व होता है।"**

प्रत्येक क्रिया को सम्पन्न करने के लिए किसी–न–किसी कर्ता की आवष्यकता होती है। कर्ता कोई एक व्यक्ति या अपने व्यक्ति भी हो सकते हैं। क्रिया का स्वरूप व प्रकृति क्या होगी, यह उस समय की परिस्थिति पर निर्भर है। अलग–अलग परिस्थितियों में कर्ता की क्रियाएं भी भिन्न–भिन्न होंगी। कर्ता किसी उद्देष्य की प्राप्ति या प्रेरणा से प्रेरित होकर ही क्रिया करता है। समाजषास्त्र के अनुसार, **"उद्दे"य निहित गतिविधि ही क्रिया है।"(Action is a goal directed activity)**। प्रेरणा का जन्म 'ारीर से, समाज से और संस्कृति से हो सकता है।

इस प्रकार **पारसंस** का सामाजिक क्रिया का स्वैच्छिक सिद्धान्त उपयोगितावाद, प्रत्यक्षवाद और आदर्षवाद को अपने अन्दर समाहित कर लेता है। **पारसंस** ने सामाजिक क्रिया के स्वैच्छिक सिद्धान्त में उपयोगितावाद, प्रत्यक्षवाद और आद"ार्वाद की आलोचना करने के पश्चात् स्प"ट रूप से यह मत व्यक्त किया कि इन तीनों अवधारणाओं का उपयोग प्रकार्यवादी सिद्धान्त के निर्माण में होना चाहिए। **पारसंस** सामाजिक क्रिया के सिद्धान्त निर्माण में इस नि"क"र्ा पर पहुंचे कि **सामाजिक स्थिति में कर्ता अपनी इच्छा (Voluntary) से निर्णय लेता है।**

पारसंस ने उपने सिद्धान्त निर्माण में वेबर से बहुत कुछ उधार लिया है। वेबर के अनुसार क्रिया वह है जिसके पीछे कर्ता का अपना अर्थ (Verstehen) निहित होता है। इसी आधार पर **पारसंस** ने कहा है कि क्रिया करने का अर्थ कर्ता स्वयं परिभा"ित करता है। पारसंस ने सामाजिक क्रिया का परिभा"ित करते हुए लिखा है, **"सामाजिक क्रिया वह गतिविधि है जिसका उद्देश्य किसी न किसी लक्ष्य को प्राप्त करना होता है।"**

उपरोक्त परिभा"ा से यह नि"क"र्ा निकला कि **जब कर्ता लक्ष्य प्राप्ति के उद्दे"य से कोई गतिविधि करता है तब वह सामाजिक क्रिया बन जाती है।** निम्न सूत्र से यह बात और अधिक स्प"ट हो जाएगी–

सामाजिक क्रिया = गतिविधि + लक्ष्य

यदि किसी क्रिया से लक्ष्य को हटा दिया जाए तो वह सामाजिक क्रिया न बनकर मात्र एक गतिविधि रह जाएगी। जैसे–

सामाजिक क्रिया – लक्ष्य = गतिविधि

पारसंस के अनुसार कर्ता के समक्ष क्रिया सम्पादन के दौरान अनेक अभिप्रेरण और मूल्य होते हैं जिनका प्रभाव क्रिया की द"ा पर निष्चित रूप से पड़ता है। **पारसंस** ने निम्नलिखित तीन प्रकार के अभिप्रेरण और मूल्यों की चर्चा की है–

अभिप्रेरण के प्रकार–

1. **संज्ञानात्मक अभिप्रेरण(Cognitive Motivation)**– इन अभिप्रेरणों द्वारा क्रिया से जुड़ी सूचनाएं कर्ता को उपलब्ध करायी जाती हैं।
2. **संवेगात्मक अभिप्रेरण (Cathatic Motivation)**– ये ऐसे अभिप्रेरण हैं जिनके साथ कर्ता का संवेगात्मक लगाव होता है। जैसे रमेष का तीर्थ यात्रा के दौरान मात्र पूजा–पाठ से जुड़े रहना तथा सैर सपाटे से अपने आप को दूर रखना।
3. **मूल्यांकनात्मक अभिप्रेरण (Evaluative Motivation)**– इन अभिप्रेरणों द्वारा कर्ता अपने द्वारा की जाने वाली क्रिया का हानि–लाभ की दृ"ट से मूल्यांकन करता है।

मूल्यों के प्रकार–

सामाजिक क्रिया के सम्पादन से पूर्व कर्ता क्रिया से सम्बन्धित मूल्यों को देखता है क्योंकि **पारसंस** का मत है कि कर्ता के ऊपर व्यक्तिगत और समूह के मूल्यों के भी निम्नलिखित तीन प्रकार बतलाये हैं–

1. **संज्ञानात्मक (Congnitive)**– इन मूल्यों के द्वारा कर्ता क्रिया का वस्तुनि"ठता से मूल्यांकन करता है।
2. **प्रशंसात्मक (Appreciative)**– इन मूल्यों के आधार पर व्यक्ति की समूह और समाज द्वारा प्रषंसा की जाती है।
3. **नैतिक (Moral)**– इन मूल्यों के आधार पर क्रिया के नैतिकता के स्तर का मूल्यांकन किया जाता है। इन मूल्यों का सम्बन्ध नैतिकता से होता है।

पारसंस ने अपने सैद्धान्तीकरण में उपयोगितावाद, प्रत्यक्षवाद तथा आदर्षवाद का समन्वय किया है। **पारसंस** के अनुसार सामाजिक क्रिया का उद्देष्य कुछ निष्चित अवस्थाओं में लक्ष्य प्राप्ति होता है। इन निष्चित अवस्थाओं में अभिप्रेरण और मूल्यों की भूमिका अत्यधिक महत्व–पूर्ण होती है।

साामाजिक क्रिया की रूपरेखा (Outline of Social Action)–

इसके अन्तर्गत पारसंस ने निम्न रूपरेखा प्रस्तुत की है जिससे कि सामाजिक क्रिया की अवधारणा व्याख्या अत्यधिक सरल रूप में स्प"ट हो जाती है–

1. कर्ता/सामूहिकता (Actor/Collectivity)
2. लक्ष्य (Goal)
3. स्थिति/द"ाा (Situation)– इसके अन्तर्गत दो स्थितियां आती हैं–
   अ–भौतिक (Physical) तथा
   ब–अभौतिक (Non Physical)।
4. कर्ता की स्थिति के वि"ाय में अभिस्थापना (Actor's Orientation to situation)– इसके अन्तर्गत मानक और मूल्य (Norms and Values) आते हैं।
5. कर्ता के अभिप्रेरण (Actor's Motivation)– इनको पारसंस ने तीन भागों में विभक्त किया है–
   अ–संज्ञानात्मक अभिप्रेरण (Cognitive Motivation)
   ब–संवेगात्मक अभिप्रेरण (Cathatic Motivation)
   स–मूल्यांकनात्मक अभिप्रेरण (Evaluative Motivation)
6. मूल्य अभिस्थापन (Value Orientation)–इनको भी पारसंस ने तीन भागों में विभाजित किया है–
   अ–संज्ञानात्मक अभिस्थापन(Cognitive Orientation)
   ब–प्रषंसात्मक अभिस्थापन (Appreciative Orientation)
   स–नैतिक अभिस्थापन (Moral Orientation)

पारसंस ने अपने सैद्धान्तीकरण में उपयोगितावाद, प्रत्यक्षवाद तथा आदर्षवाद का समन्वय किया है। **पारसंस** के अनुसार सामाजिक क्रिया का उद्देष्य कुछ नि"चित अवस्थाओं में लक्ष्य प्राप्ति होता है। इन निष्चित अवस्थाओं में अभिप्रेरण और मूल्यों की भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण होती है।

पारसंस का सामाजिक क्रिया का स्वैच्छिक सिद्धान्त विभिन्न अवधारणाओं का समन्वय है। इस सिद्धान्त का प्रमुख आधार कर्ता या सामूहिकता है। कोई भी क्रिया बिना अभिप्रेरण और मूल्य के नहीं होती है क्योंकि बिना अभिप्रेरण और मूल्य के कर्ता अपने लक्ष्य को नहीं प्राप्त कर सकता है। पारसंस ने कर्ता द्वारा की जाने वाली इन क्रियाओं को किसी भी व्यवस्था के संदर्भ में यूनिट एक्ट्स (Unit Acts) हैं। यूनिट एक्ट्स (Unit Acts) के पीछे लक्ष्य और अभिप्रेरण होते हैं तथा भौतिक और अभौतिक परिस्थितियां अनिवार्य रूप से होती हैं।

सामाजिक व्यवस्था की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा है कि सामाजिक व्यवस्था एक ऐसी परिस्थिति में जिसका की कम–से–कम एक भौतिक या पर्यावरण संबंधी पहलू हो। अपनी इच्छाओं एवं आवश्यकताओं की पूर्ति को प्रवृति से प्रेरित एकाधिक व्यक्तिक कर्त्ताओं का एक–दूसरे के साथ अर्न्तक्रियाओं के फलस्वरुप उत्पन्न होती है। इन अर्न्तक्रियाओं में लगे हुए व्यक्तियों का पारस्परिक संबंध तथा उनकी परिस्थितियों के संबंध, सांस्कृतिक रुप में संरचित तथा स्वीकृत प्रतीकों की एक व्यवस्था द्वारा परिभा"ात एवं मध्य स्थित होती है।

समाज व्यवस्था के तीन महत्वपूर्ण अंग हैं।

1.व्यक्तित्व व्यवस्था

2. सांस्कृतिक व्यवस्था

3. सामाजिक व्यवस्था

ये तीनों आपस में अर्न्तनिहित एवं अर्न्तसंबंधित होते हैं। इन तीनों में से किसी एक के अभाव में की समाज व्यवस्था की कल्पना नही की जा सकती है।

पारसन्स का यह भी कहना है कि किसी भी समाज–व्यवस्था को बने रहने के लिए यह आवश्यक है कि उसकी कुछ पूर्व आवश्यकताओं की पूर्ति की जाय।

8.4 पारसन्स के अनुसार सामाजिक व्यवस्था की पूर्व आवश्यकताएँ

1.जैविकीय पूर्व आवश्यकताएँ

2. सांस्कृतिक पूर्व आवश्यकताएँ

3. प्रकार्यात्मक पूर्व आवश्यकताएँ

जैविकीय पूर्व आवश्यकताएँ– इसमें तीन बातें शामिल की जाती हैं–

- समाज में पर्याप्त संख्या में सदस्य हो।
- लोगों में जननक की व्यवस्था होनी चाहिये।
- कर्त्ता को अपनी बुनियादी आवश्यकताओं को पूरा करने के बाद भी समय और शक्ति मिलती हो, ताकि वह समाज व्यवस्था में भाग ले सके।

सांस्कृतिक पूर्व आवश्यकताएँ– इसके भी तीन बिन्दु हैं–

- समाज में एक भा"ाा होनी चाहिये।
- प्रतीक व्यवस्था सुदृढ़ होनी चाहिये।
- संचार–व्यवस्था सुदृढ़ होनी चाहिये।

प्रकार्यात्मक पूर्व आवश्यकताएँ– इसमें निम्नांकित तीन बातें होती हैं–

- बहुत से लोग अनुशासन में रहना चाहते हैं।
- लोगों मे निषेधात्मक नियन्त्रण की भावना हो अर्थात् जो लोग नियम भंग करते हों उनकी रोकथाम के लिए व्यवस्था में उचित क्षमता हो।
- लोगों में स्वीकारात्मक कार्यों के प्रति सद्भावना हो अर्थात् जो समाज के लिए उचित कार्य करते हैं, उन्हें मदद करने के लिए लोग तैयार रहते हों।

जब इन सब 'ार्तो को कोई समाज पूरा करेगा तभी कोई समाज व्यवस्था क्रियान्वित होगी, जिसमें स्थायी और व्यवस्थित अन्तर्व्यवस्था होगी।

प्रकार्यात्मक पूर्व आवश्यकताओं पर पारसन्स ने विशेष बल दिया है और इसके अन्तर्गत केवल उन्हीं पूर्व आवश्यकताओं की चर्चा उन्होंने की है जो सार्वभौमिक रुप से मौजूद हो तथा जिसकी पूर्ति वैज्ञानिक तरीके से की जा सकती है। ये चार है इसकी पूर्ति किसी भी समाज–व्यवस्था चार उप–व्यवस्थाए करती है जो निम्न हैं–

1. **अनूकूलन**
2. **लक्ष्य की पूर्ति**
3. **एकीकरण**
4. **प्रतिमान अनुरक्षण (लैटेंसी)**

अनूकूलन – सामाजिक व्यवस्था के अस्तित्व के लिऐ आवष्यक है कि सदस्यों की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु न्यूनतम भोजन, वस्त्र आवास आदि की आपूर्ति हो। अतः इन आवश्यकताओं की पूर्ति समाज की **आर्थिक उप–व्यवस्था** करती हैं।

लक्ष्य प्राप्ति – किसी भी समाज के लिए जरुरी है कि उसके लक्ष्यों का निर्धारण किया जाये तथा उसकी प्राप्ति हेतु संसाधनों का चुनाव एवं उनका सगंठन किया जाए। अतः इन आवश्यकताओं की पूर्ति समाज की **राजनीतिक उप–व्यवस्था** करती हैं।

प्रतिमान अनुरक्षण – समाज की निरंतरता हेतु आवश्यक है कि इसके प्रतिमानों को बनाये रखा जाए तथा व्यवस्था में तनावों का निराकरण किया जाएं।

चूंकि समाज एक आत्म अनुरक्षित एवं आत्मपो"ाी व्यवस्था है इसलिये वह अपनी उपरोक्त आवश्यकताओं की पूर्ति भी स्वंय करता है और इस हेतु वह अपने अंगो के रुप में विभिन्न संस्थाओं को विकसित करता है जो अपने प्रकार्यो द्वारा समाज की इन आवश्यकताओं की पूर्ति करके सामाजिक व्यवस्थाओं को बनाये रखते है। जैसे अर्थव्यवस्था अनूकूलन की आवश्यकता को। राजनीतिक व्यवस्था लक्ष्य प्राप्ति की आवश्यकता को तथा परिवार, शिक्षा, व्यवस्था एवं धर्म प्रतिमान अनुसरण की आवश्यकता को पूरा करते हुए सामाजिक व्यवस्था को बनाये रखते है।

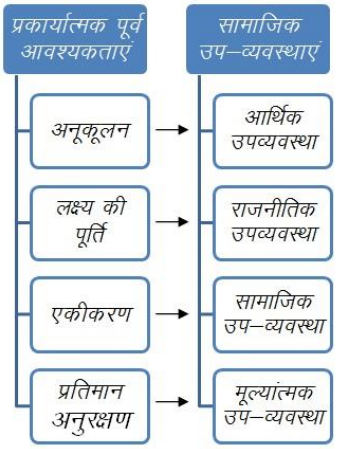

पारसन्स ने अपने सिद्वान्त में इस बात का स्पष्ट उल्लेख किया है कि कोई भी समाज–व्यवस्था तब तक नहीं पनप सकती जबतक कि व्यक्ति कर्त्ता को उसके पद के हिसाब से न कार्य करने दिया जाए तथा साथ ही सांस्कृतिक व्यवस्था उस अपनी आशाओं के अनुरुप कार्य करने के लिए विवश न करें।

8.5प्रतिमान चर(Pattern Variable)

सामाजिक संबधों के द्विभाजन की एक विषि"ट योजना के रुप में पारसंस ने प्रतिमान चर की अवधारणा को रखा है। व्यवहार का वह तरीका या प्रतिमान या मूल्य जिसके चयन में कर्त्ता के समक्ष परिवर्तन की गुजांइष होती हैं। **प्रतिमान चर** कहलाता है। जो मूलतः कर्ताओं द्वारा संपन्न की जाने वाली अंत– क्रियाओं के विभिन्न तरीकों। व्यवहार प्रतिमानों या सांस्कृतिक मूल्यों का वर्गीकरण है।

पारसंस ने इन व्यवहार प्रतिमानों एवं सांस्कृतिक के मूल्यों की 5 वैकल्पिक जोड़ों की चर्चा की है जिसको वह प्रतिमान चर की संज्ञा देने हैं। जैसे–

1. **स्वहित बनाम सामूहिक हित (Self VS Collectivity)**–

   कर्त्ता व्यवहार करते समय अपने हितों को प्राथमिकता देते हुए व्यवहार करते समय अपने हितों को प्राथमिकता देते हुए व्यवहार कर सकता है या सामूहिक हितों को प्राथमिकता देते हुए व्यवहार कर सकता हैं। विद्यालय में आग लगने पर षिक्षक द्वारा सबसे पहले अपने बच्चे को बचाना पहले प्रकार के व्यवहार प्रतिमान का उदाहरण है जबकि सभी बच्चों को समान महत्व देते हुए बचान का प्रयास करना दूसरे प्रकार के व्यवहार प्रतिमान को दर्षाता हैं।

2. **सार्वभौमिक बनाम विशि"ट (Universal VS Particularistic)**

   कर्त्ता सार्वभौमिक मूल्यों के आधार पर व्यवहार कर सकता है या विषि"ट मूल्यों के आधार पर भी व्यवहार कर सकता है। जज द्वारा कानून के समक्ष सभी को समान मानते हुए नि"पक्ष निर्णय लेना पहले प्रकार के व्यवहार के प्रतिमान को दर्षाता है जबकि उसके द्वारा अपराधी के साथ किसी रिष्ते को प्राथमिकता देते हुए पक्षपातपूर्ण निर्णय करना दूसरे प्रकार के व्यवहार प्रतिमान का उदाहरण है।

3. **भावात्मकता बनाम तटस्थता(Affectivity VS Neutrality)**

कर्त्ता किन्हीं संबंधों में भावात्मक रुप से कार्य करता है। एक ग्राहक के साथ व्यवहार प्रथम प्रकार के तथा एक पत्नी के साथ किया गया व्यवहार दूसरे प्रकार के व्यवहार प्रतिमान का उदाहरण है।

4. **अर्जित बनाम प्रदत (Achievment VS Ascription)**

अर्जित बनाम प्रदत प्रतिमान चर में व्यक्ति की दुविधा इस बात पर आधारित है कि व्यक्ति अपनी भूमिका का वि"ाय की गुणवत्ता या नि"पादन की दृ"टि से निरुपित करता है। भारत में इस प्रतिमान चर का बहुत अच्छा उदाहरण जाति व्यवस्था द्वारा नियंत्रित भूमिका निस्पादन हैं। जाति व्यवस्था के अंतर्गत व्यक्तियों की प्रति"ठा का निर्धारण उनकी व्यक्तिगत उपलब्धियां या व्यक्तिगत कौषल या ज्ञान के आधार पर न होकर उनके जन्म के आधार पर होता है। प्रदत का आधार किसी व्यक्ति में जन्म या आयु या लिंग या नातेदारी अथवा जाति के आधार पर उस पर योग्यता आरोपित करना है। अर्जित का आधार व्यक्ति द्वारा व्यक्तिगत प्रयास से कौषल अर्जित करके समाज मे एक विषे"ा स्तर तक कार्य नि"पादन के योग्य बनाना है।

5. **एक पक्षीय बनाम बहुपक्षीय(pecificity VS Diffuseness)**

कर्त्ता वस्तु के एक ही पक्ष तक अपनी रुचि को सीमित रखकर व्यवहार कर सकता है या उसक सभी पक्षों में रुचि लेकर व्यवहार कर सकता है। डॉक्टर का मरीज के साथ किया गया व्यवहार पहले प्रकार के व्यवहार प्रतिमान को जबकि माँ का बेटे के साथ किया गया व्यवहार दूसरे प्रकार का व्यवहार प्रतिमान है।

पारसंस समाज को एक व्यवस्था के रुप में देखते है जो एकाधिक कर्त्ताओं के मध्य निरंतर होने वाले प्रतिमानित अंतः क्रियात्मक संबधो को निर्मित होता है। परंतु यहाँ पारसंस का मानना है कि कर्त्ता एवं सामाजिक व्यवस्था के बीच कोई संबंध पूर्व निर्धारित एवं पूर्व निष्चित नही होता है, ऐसी स्थिति में क्रिया करने समय कर्त्ता के समक्ष व्यवहार प्रतिमानों के चयन को लेकर वैकल्पिक दुविधा विद्यमान होती है। अर्थात प्रतिमानो या सांस्कृतिक मूल्यों को वैकल्पिक जोड़े के रुप में प्रस्तुत करती है और व्यवहार करते समय कर्त्ता इन जोड़ो में से किसी एक का चयन कर उसके अनुसार अपने व्यवहार को संपादित करता है। विभिन्न समाजों या स्थितियों में इन विरोधी परस्पर प्रतिमानों का सामूहीकरण अलग–अलग हो सकता है। जैसे परंपरागत समाज या परिवार में सामूहिक हित, विषि"टता, प्रदत्त, भावनात्मक, बहुपक्षीय की प्रधानता होती है। जबकि आधुनिक समाज या द्वितीयक समूहों में स्वहित,सार्वभौमिकता, भावनात्मकता, तटस्थता, अर्जित या एकपक्षीय

की।

8.6 आलोचनात्मक मूल्यांकन

पारसंस के उपरोक्त विचारों की कई आधारों पर आलोचना की गई है, जैसे–

1. आलोचकों का कहना है कि कर्त्ता द्वारा व्यवहार प्रतिमानों के चयन की सुविधा का समाधान आवष्यक रुप से पारसंस द्वारा बनायी गयी विधि से पारसंस नहीं होता है। पुनः कोई समाधान अषंतः कोई एक श्रेणी का अंषतः दूसरी श्रेणी का हो सकता है जैसे कोई जज सभी पर समाज रुप से कानून का प्रयोग कर सकता है पर दण्ड सुनाते समय किसी अपराधी के रिष्ते से भी प्रभावित हो सकता है।
2. आलोचकों के अनुसार प्रतिमान चर के अंतर्गत यदि चयन 'ाब्द को संकीर्ण अर्थ में लिया जाये तो क्रिया कि योजना बनाते समय किसी व्यक्ति के सामने कई प्रकार के प्रतिमान चर हो सकते है। जिसका स्प"टीकरण पारसंस ने नहीं किया है।
3. आलोचकों का आरोप है कि पारसंस का यह सिद्धांत यथास्थितिवादिता पर अधिक बल देकर सामाजिक परिवर्तन की संभावनाओं की उपेक्षा करता है। क्योंकि ये समाज को प्रकार्य की पूर्वधारणाओं पर आधारित एक संतुलन मॉडल के रुप में देखता हैं। जिसमें प्रत्येक सामाजिक संस्था को प्रकार्यात्मक माना जाता है। और ये संस्थाएं व्यवस्था में संतुलन बनाये रखने के लिए निरन्तर क्रियाषील होती हैं। ऐसी स्थिति में , पूरी व्यवस्था को भंग किये बगैर इसे बदल पाना संभव नहीं हैं। आलोचकों के अनुसार पारसन्स की यह मान्यता भी अवैज्ञानिक हैं।

4. बीरस्टीड के अनुसार पारसंस ने अपने प्रतिमान चर को योजना को आवष्यक रुप से बोझिल बना दिया है। यदि ताष खेलते समय कर्त्ता इन प्रतिमान चरों का प्रयोग करना ‘ुरु कर दे ंतो उसके लिए ताष खेलना असंभव हो जाएगा।

5. आलोचकों का आरोप है कि पारसंस अपनी इस योजना के माध्यम से क्रिया सिद्धान्त एवं व्यवस्था सिद्धान्त में तालमेल बैठाने में असफल रहा है। यह सिद्धान्त व्यक्तिगत क्रिया संपादन में कर्त्ता को व्यवहार प्रतिमान के विकल्पों में से चयन की स्वतंत्रता तो देता है परन्तु व्यवस्था में व्यवहार प्रतिमान के अन्तर्गत कर्त्ता को व्यवहार करने हेतु बाध्य करता हैं और वह यह प्रत्यक्ष रुप से सामाजिक निर्धारणवाद के दुर्गुणों से ग्रसित हो जाता है।

उपरोक्त आलोचनाए निष्चित रुप से पारसंस के विचारों में निहित त्रुटियों को उजागर करती है। किन्तु न तो ये प्रर्याप्त है और न ही इनके आधार पर पारसंस के विचारों को पूरी तरह खारिज किया जा सकता है। पारसंस की यह अवधारणा सामाजिक व्यवस्था एवं सामाजिक क्रिया के मध्य संबधों को स्प"ट करने का प्रयास किया है। इस प्रक्रिया में उनमें यहाँ एक तरफ व्यवहारों के विकल्पों के चयन में कर्त्ता के समक्ष व्यवहार प्रतिमान के सीमित विकल्पों को प्रस्तुत करके और कर्त्ता के व्यवहार को उन प्रतिमानों के अनुसार निर्धारित बताकर कर्त्ता की क्रिया पर समाज के प्रभाव को भी विस्थापित किया है।

इसके अलावा, पारसंस की यह अवधारणा कर्त्ता के क्रियाओं की प्रवृति और उसके माध्यम से समाज की प्रकृति को समझने हेतु एक अंतदृ"ट प्रदान करती है जिसके द्वारा विभिन्न समाजों में (परम्परागत या आधुनिक) या विभिन्न समूहों में (प्राथमिक या द्वितीयक) होने वाले क्रियाकलापों की प्रकृति को समझा जा सकता है। नि"क"ातः हम कह सकते है कि समाज की प्रकृति एवं स्वरुप को समझने के लिऐ क्रियात्मक दृ"टकोण के अंतर्गत प्रतिमान चर की अवधारणा समाजषास्त्र के लिऐ पारसंस का महत्वपूर्ण योगदान है।

23.7 सारांश –

इस इकाई के अध्ययन से आप जान चुके हैं कि किसी भी कर्त्ता को क्रिया करने के लिए परिस्थिति एवं लक्ष्य का होना आवष्यक हैं। साथ ही साथ कर्त्ता के पास हमेषा दो विकल्प होता हैं। उन दो विकल्पों में से किसी एक विकल्प को क्रिया करने के लिए चुना जाता हैं। इसे प्रतिमान चर कहते हैं। उदाहरण के तौर पर स्वहित बनाम सामूहिक हित, सार्वभौमिक बनाम विषि"ट, भावात्मकता बनाम तटस्थता, अर्जित बनाम प्रदत, एक पक्षीय बनाम बहुपक्षीय आदि।

3.8 पारिभाि"ाक शब्दावली–

विशिष्ट चालक (Residue) – पैरेटो के अनुसार, मनुष्य की अधिकांष क्रिया कुछ चालकों पर निर्भर होती है। पैरेटो ने इन्हीं चालकों को विषि"ट चालक कहा है। इनकी प्रकृति बहुत कुछ संवेगों से मिलती जुलती होती है। इसी कारण विषि"ट चालकों को संवेगों की अभिव्यक्ति के रुप में देखा जाता है।

भ्रान्त तर्क (Derivation)– पेरैटो ने अपने सामाजिक क्रिया के विष्ले"ाण क्रम में भ्रांत तर्क की चर्चा की। जब कर्ता कोई अतार्किक क्रिया करता है तो अपने क्रिया को सही साबित करने के लिए भ्रान्त तर्क का सहारा लेता है, जिससे यह क्रिया का औचित्य साबित हो सके। इसी प्रकार के तर्क को भ्रान्त तर्क कहा जाता है।

8.9 अभ्यास/बोध प्रश्नों के उत्तर

1. पैरेटो के अनुसार, सामाजिक क्रिया कितने प्रकार के हैं?
(क) एक (ख) दो
(ग) तीन (घ) चार

2. समाजशास्त्र, सामाजिक क्रिया का व्याख्यात्मक बोध कराने वाला विज्ञान है, किसने कहा?
(क) हरबर्ट स्पेन्सर (ख) पैरेटो
(ग) मैक्स वेबर (घ) पारसन्स

3. मैक्स वेबर के अनुसार, सामाजिक क्रिया कितने प्रकार के हैं?
(क) दो (ख) तीन
(ग) चार (घ) पॉच

4. सामाजिक क्रिया का स्वैच्छिक सिद्धांत किसने प्रस्तुत किया है?
(क) मैक्स वेबर (ख) पारसंस
(ग) पारसंस (घ) पैरेटो

5. इनमें से कौन सामाजिक क्रिया के व्यक्तिनिश्ठ अर्थ पर जोर देते हैं?
(क) मैक्स वेबर (ख) पारसंस
(ग) पैरेटो (घ) दुर्खीम

6. सामाजिक क्रिया को सम्पन्न होने के लिए इनमें से कौन कर्ता परिस्थिति एवं प्रेरणा को आव"यक मानते हैं?
(क) मैक्स वेबर (ख) पैरेटा
(ग) दर्खीम (घ) पारसंस

7. सोशल सिस्टम पुस्तक किस विद्वान ने लिखी?
(क) मैक्स वेबर (ख) पैरेटो
(ग) दर्खीम (घ) पारसंस

8. अनुकूलन के प्रकार्य को समाज की कौन सी उप–व्यवस्था पूर्ति करती हैं।
(क) आर्थिक व्यवस्था (ख) राजनैतिक व्यवस्था
(ग) मूल्य व्यवस्था (घ) सामाजिक व्यवस्था

9. लक्ष्य की प्राप्ति के प्रकार्य को समाज की कौन सी उप–व्यवस्था पूर्ति करती हैं।
(क) आर्थिक व्यवस्था (ख) राजनैतिक व्यवस्था
(ग) मूल्य व्यवस्था (घ) सामाजिक व्यवस्था

10. एकीकरण के प्रकार्य को समाज की कौन सी उप–व्यवस्था पूर्ति करती हैं।
(क) आर्थिक व्यवस्था (ख) राजनैतिक व्यवस्था
(ग) मूल्य व्यवस्था (घ) सामाजिक व्यवस्था

11. प्रतिमान अनुरक्षण के प्रकार्य को समाज की कौन सी उप–व्यवस्था पूर्ति करती हैं।
(क) आर्थिक व्यवस्था (ख) राजनैतिक व्यवस्था
(ग) मूल्य व्यवस्था (घ) सामाजिक व्यवस्था

12. प्रतिमान चर का वर्णन किस विद्वान ने किया?
(क) मैक्स वेबर (ख) पैरेटो
(ग) दर्खीम (घ) पारसंस

13. प्रतिमान चर के कितने जोड़ो की बात पारसन्स ने की हैं?
(क) 3 (ख) 4
(ग) 5 (घ) 6

उत्तर– 1–ख, 2–ग, 3–ग, 4–ग, 5–क, 6–घ, 7–घ, 8–क, 9–ख, 10–घ, 11–घ, 12–घ, 13–ग।

8.10 संदर्भ ग्रंथ सूची–

(1) शम्भूलाल दोशी एवं मधुसूदन त्रिवेदी, उच्चतर समाजशासत्रीय सिद्धान्त (1997) रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर एवं नई दिल्ली, **P- 40-150**
(2) एस. एल. दोशी एवं पी. सी. जैन, सामाजिक विचारक (1997), सामाजिक विचारक, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर एवं नई दिल्ली, **P- 100.350**
(3) डा. शीबा सिद्दीकी, आधुनिक एवं उत्तर आधुनिक समाजशास्त्रीय सिद्धान्त (2012) विवेक प्रकाशन, जवाहर नगर, दिल्ली, **P- 24–30**
(4) डा. एम. एम. लवानिया एवं शशी के. जैन, सैद्धान्तिक समाजशास्त्र (1998), रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर, **P- 129-175**
(5) एस. एस. पाण्डेय, टीएमएच, **P- 16.1, 16.9**
(6) डा0 अफरोज एकबाल, भारत में सामाजिक परिवर्तन दशा एवं दिशा,ल्यूसेंट पटना, **P 1. 55**

8.11 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री–

(1) M. Francis Abraham, Modern Sociological Theory, Oxford University, Press Bombay, Calcutta, Madras (1982) —P- 40-88
(2) Sujit Kumar Choudhary, Thinkers and Theories in Sociology — P 181-220

8.12 निबन्धात्मक प्रश्न–

(1) प्रतिमान चर क्या है? इसका वर्णन करें।

(2) पारसंस का संतुलन का विचार क्या हैं?
(3) मैक्स वेबर के अनुसार, सामाजिक क्रिया कितने प्रकार के होते हैं? वर्णन करें।
(4) पारसंस द्वारा स्थापित सामाजिक क्रिया के सिद्धान्त का वर्णन करें।

इकाई 9 – सामाजिक व्यवस्था एवं अन्तर्सम्बन्धित उपव्यवस्थाऐं
;ब्व।स ैलैज्म्ड ।छक ैन्ठ ैलैज्म्ड प्छज्म्त्स्प्छज्ञ।ळमैद्ध

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देष्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 पारसंस के अनुसार संरचना तथा व्यवस्था

9.3 पारसंस के अनुसार सामाजिक व्यवस्था की पूर्व आव"यकताऍ

9.4 प्रतिमान चर

9.5 आलोचनात्मक मूल्याकंन

9.6 सारांष

9.7 पारिभाि"ाक 'ाब्दावली

9.8 अभ्यास/बोध प्रष्नों के उत्तर

9.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

9.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

9.11 निबंधात्मक प्रष्न

9.0 उद्देश्य–

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप जान पाएँगें कि

(1) सामाजिक व्यवस्थाएं क्या हैं?

(2) सामाजिक संरचना एवं सामाजिक व्यवस्था दोनों ही अवधारणायों एक दूसरे से घनि"ठतम रुप से सम्बन्धित है?

(2) सामाजिक व्यवस्था किस प्रकार समाजिक उप–व्यवस्था से जुड़ी है।

(3) सामाजिक व्यवस्था का क्या अर्थ है?

9.1 प्रस्तावना–

अमेरिकन समाजषास्त्री टालकॉट पारसन्स ने अपनी पुस्तक ''दि सोषल सिस्टम'' (The Social System) 1951 में सामाजिक व्यवस्था को सिद्धांत का प्रतिपादन किया। इनके अनुसार सामाजिक व्यवस्था, क्रिया व्यवस्था पर आधारित है तथा क्रिया व्यवस्था, कर्ता, परिस्थिति एवं प्ररेणा पर आधारित है।

पारन्स की सामाजिक व्यवस्था के सिद्धांत को ठीक से समझने के लिए उनके सामाजिक क्रिया के सिद्धांत को समझ लेना आव"यक है। सामाजिक क्रिया किसे कहते हैं यह समझने के लिए सामाजिक क्रिया की संरचना को समझना आवष्यक है।

अमेरिकन समाजशास्त्री टालकॉट पारसन्स ने अपनी पुस्तक दि सोशल सिस्टम '' 1951 में सामाजिक व्यवस्था का सिद्वान्त प्रतिपादन किया। उनके अनुसार सामाजिक व्यवस्था क्रिया–व्यवस्था पर आधारित है तथा क्रिया व्यवस्था, कर्त्ता, परिस्थिकीय एवं प्रेरणा पर आधारित है।सामाजिक व्यवस्था की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा है कि सामाजिक व्यवस्था एक ऐसी परिस्थिति में जिसका की कम–से–कम एक भौतिक या पर्यावरण संबंधी पहलू हो। अपनी इच्छाओं एवं आवश्यकताओं की पूर्ति को प्रवृति से प्रेरित एकाधिक व्यक्तिक कर्त्ताओं का एक–दूसरे के साथ अर्न्तक्रियाओं के फलस्वरुप उत्पन्न होती है। इन अर्न्तक्रियाओं में लगे हुए व्यक्तियों का पारस्परिक संबंध तथा उनकी परिस्थितियों के संबंध, सांस्कृतिक रुप में संरचित तथा स्वीकृत प्रतीकों की एक व्यवस्था द्वारा परिभा"ात एवं मध्य स्थित होती है।

समाजषास्त्र में सामाजिक व्यवस्था की अवधारणा अत्यन्त महत्वपूर्ण है। क्योंकि सामाजिक व्यवस्था के दो भाग माने जाते हैं। प्रथम सामाजिक संरचना, द्वितीय प्रकार्य। अतः सामाजिक व्यवस्था को भी समझना आवष्यक है। मानव जीवन के क्रम और निरन्तरता को बनाए रखने के लिये समाज का महत्वपूर्ण योगदान हैं। इसीलिए मानव जीवन के अस्तित्व एवं प्रगति के लिये सामाजिक व्यवस्था आवष्यक है। व्यवस्था का अभिप्राय उस क्रमबद्धता से है जो किसी संरचना के विभिन्न इकाईयों के मध्य एक निष्चित प्रकार्यात्मक आधार पर पायी जाती हैं व्यवस्था को निम्नलिखित बिन्दुओं से समझा जा सकता है।

- व्यवस्था का निर्माण एक से अधिक इकाइयों से होता हैं और ये सभी इकाइयां क्रमबद्ध रुप में एक–दूसरे से जुड़ी होती है।
- व्यवस्था का संबंध एक संरचना से होता है। संरचना के बिना व्यवस्था नहीं हो सकती।
- व्यवस्था एक ऐसी स्थिति का बोध कराती है। जिसमें विभिन्न तत्व अनेकता से एकता के स्वरुप को स्प"ट करती है।
- व्यवस्था के निर्णायक अनेक इकाइयों एक–दूसरे से इस प्रकार अर्न्तसम्बन्धित होती हैं कि वे प्रकार्यात्मक आधार पर महत्वपूर्ण होती हैं।
- व्यवस्था में परिवर्तनषीलता होती है क्योंकि व्यवस्था का संबंध आवष्यकता पूर्ति से होता हैं। और व्यक्तियों की आवष्यकता में परिवर्तन होते रहने से व्यवस्था की संरचना में परिवर्तन होता रहता है।
- व्यवस्था कुछ इकाइयों का संयोग मात्र नही हैं, अपितु इसे व्यवस्था तभी कह जा सकता है जब वह समाज के लिए उपयोगी है।

एम.ई. जोन्स ने लिखा है सामाजिक व्यवस्था वह स्थिति हैं जिसमें समाज के विभिन्न क्रियाषील इकाईयां एक–दूसरे से तथा सम्पूर्ण समाज के साथ अपूर्ण ढंग से जुड़कर कार्य करती है। जोन्स की परिभा"ाा से यह स्प"ट होता हैं कि सामाजिक व्यवस्था में केवल सहयोग का ही समावेष होना आवष्यक नहीं है। समाज में वस्तुतः सहयोग और संघ"ार्ा सभी प्रकार के तत्व क्रियाषील रहते है। लेकिन सामाजिक व्यवस्था का आषय उस स्थिति से लगाया जाता है जिसमें प्रत्येक भाग को एक–दूसरे से अर्न्तक्रिया करने और अपने सामाजिक हितों को पूरा करने के अधिकतम अवसर प्राप्त हो सके।

पारसन्स ने सामाजिक व्यवस्था को परिभा"ात करते हुए लिखा है '' एक सामाजिक परिस्थिति में जिसका की एक भौतिक तथा एक पर्यावरणीय संबंधी पक्ष होता है। जब अनेक व्यक्ति कर्त्ता सामन्यतः स्वीकृत सांस्कृतिक प्रतीकों की व्यवस्था के अन्तर्गत आदर्ष लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये अन्तःक्रिया कर रहे होते है तब इसी स्थिति को हम सामाजिक व्यवस्था कहते हैं।'' पारसन्स आगे लिखते है, ''सामाजिक व्यवस्था क्रिया की एक संगठित प्रणाली है, जिसमें बहुत से कार्यकर्त्ताओं की अन्तःक्रियाओं का समावेष होता है।''

सामाजिक व्यवस्था में अनेक वैयक्तिक कर्त्ताओं के बीच 'अन्तःक्रियाएँ' होती हैं जिनका एक 'आदर्ष लक्ष्य' होता है। सामाजिक व्यवस्था का सम्बन्ध अनुकूल परिस्थितियों के सन्तुलन से होता है, जिसके अन्तर्गत सामाजिक व्यवस्था को संगठित रखने के लिए कुछ स्वीकृत सांस्कृतिक प्रतीकों के अनुसार ही अन्तःक्रिया की जाती है। पारसन्स की सामाजिक व्यवस्था को इन पक्षों में समझा जा सकता है–प्रथम पक्ष वह है, जिसके द्वारा सामाजिक व्यवस्था का निर्माण होता है, जिसे संरचनात्मक पक्ष कहा जाता है। दूसरा पक्ष यह है, जो अनेक संस्थाओं के माध्यम से सामाजिक व्यवस्था को समाज उपयोगी बनाता है और स्थायित्व प्रदान करता है जिसे संस्थात्मक पक्ष कहते हैं।

पारसन्स सामाजिक व्यवस्था में तीन तत्वों पर विषे"ा बल देते हैं–

- सामाजिक क्रिया
- कर्त्ता
- प्रस्थिति एवं भूमिका।

चार्ल्स पी. लूमीस ने सामाजिक व्यवस्था को समाज में पाई जाने वाली एक आन्तरिक स्थिति माना है और बताया है कि इसके लिए आन्तरिकरण का अध्ययन आवष्यक है, जिनमें सामाजिक प्रक्रियाओं की गतिषीलता ही सामाजिक उन्नति तथा उसके स्थायित्व को बनाये रखने में मदद करती है। सामाजिक व्यवस्था में पायी जाने वाली सामाजिक अन्तःक्रियाओं के परिणामस्वरुप सामाजिक सम्बन्ध स्थापित होते हैं। चार्ल्स लूमीस के अनुसार सामाजिक व्यवस्था के नौ महत्वपूर्ण तथ्य है। इसका वर्णन उन्होंन अपनी पुस्तक सोषल सिस्टम में की है। जो निम्नलिखित हैं–

- ❖ विष्वास और ज्ञान
- ❖ भावनाऐं
- ❖ लक्ष्य
- ❖ आदर्ष नियम
- ❖ प्रस्थिति एवं भूमिका
- ❖ पद
- ❖ 'ाक्ति अथवा सत्ता
- ❖ मान्यताऐं
- ❖ सुविधा

सामाजिक व्यवस्था के व्यवस्था के विषे"ाताओं को निम्नलिखित बिन्दुओं पर समझा जा सकता हैं।

- सामाजिक व्यवस्था में एक से अधिक कर्त्ता व्यक्ति होते हैं जो अधिकतम संतु"ट के लिये प्रेरित होकर अन्तःक्रिया करते है। व्यक्तियों की अन्तःक्रिया को एक सूत्र में पिरोने का काम व्यवस्था के मूल्य और प्रतिमान करते हैं।
- सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत विभिन्न तत्वों में जो एकता पायी जाती हैं। उसका आधार प्रकार्यात्मक संबंध होता है।
- सामाजिक व्यवस्था में अन्तःक्रिया करने वाले व्यक्ति व्यवस्था के मूल्यों के प्रति सहमति रखते हैं।
- सामाजिक व्यवस्था में अनूकूलन का गुण होता हैं इसके दो पक्ष हैं। प्रथम – सामाजिक व्यवस्था जड़ और स्थिर नहीं हैं अथवा ये गतिषील होती है। द्वितीय– इस गतिषीलता के कारण इसका अनूकूलन बाहय परिस्थितियों से होता रहता है।
- सामाजिक व्यवस्था यह मानकर चलती है कि समाज में निरन्तरता और सतर्कता होती है। यद्यपि सामाजिक व्यवस्था की इकाइयां परिवर्तनषील होती है। लेकिन इससे संपूर्ण व्यवस्था की संरचना और इसके प्रकार्यों में कोई अन्तर नही आता।
- सामाजिक व्यवस्था की एक प्रमुख विषे"ाता साम्यवास्था है अर्थात व्यवस्था की यह प्रकृति होती है। कि वे अपनी यथास्थिति को बनाए रखे।
- सामाजिक व्यवस्था एक सामाजिक परिस्थिति में जिसका की एक भौतिक तथा एक पर्यावरणीय संबंधी पक्ष होता है। जब अनेक व्यक्ति कर्त्ता सामन्यतः स्वीकृत सांस्कृतिक प्रतीकों की व्यवस्था के अन्तर्गत आदर्ष लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये अन्तःक्रिया कर रहे होते है तब इसी स्थिति को हम सामाजिक व्यवस्था कहते हैं।
- सामाजिक व्यवस्था में संतुलन एवं क्रमबद्धता होती है।
- प्रत्येक सामाजिक व्यवस्था की एक निष्चित सीमा होती है।
- प्रत्येक सामाजिक व्यवस्था की सामाजिक, संस्कृतिक परिस्थितियों के अन्तर्गत व्यक्ति के व्यवहारों पर नियत्रंण रखने के लिए आदर्ष नियमों की एक व्यवस्था होती हैं।

9ण्2 पारसंस के अनुसार संरचना तथा व्यवस्था

'' सामाजिक संरचना 'ाब्द का प्रयोग समाजषास्त्र एवं सामाजिक मानवषास्त्र में पर्याप्त रुप से होता रहा है। सामाजिक संरचना एवं सामाजिक व्यवस्था दोनों ही अवधारणायों एक दूसरे से घनि"ठतम रुप से सम्बन्धित है। जहाँ सामाजिक व्यवस्था, समाज के प्रकार्यात्मक पक्ष को स्प"ट करती है वहीं सामाजिक संरचना, समाज के ढाँचे को व्यक्त करती है। समाज एक अखंड व्यवस्था नहीं है , उसके विभिन्न भाग या अंग होते हैं। ये विभिन्न अंग व्यवस्थित होकर एक ढाँचे या रुपरेखा की रचना करते हैं, इसी को हम सामाजिक संरचना कहते हैं।

''संरचना' 'ाब्द का प्रयोग 'बनावट' या 'ढाँचे' से लिया जाता है। एक प्रकार से यह एक प्रतिमान होता है। जब किसी भवन को बनाया जाता है तो उस भवन का ढॉचा या स्वरुप एक प्रकार की संरचना कही जाती है। सोलहवी 'ताब्दी में इस अवधारणा का प्रयोग किसी एक सम्पूर्ण व्यवस्था के अंगो के पारस्परिक सम्बन्धों के साथ लिया गया। वस्तुतः संरचना का यह प्रयोग 'ारीर–रचना

विज्ञान में अधिक हुआ। इसके बाद राजनैतिक दार्षनिकों ने इसका प्रयोग किया। इन्होंने इसका प्रयोग जैविकीय रुप में किया।

9.3 विभिन्न विद्वानों के विचार

समाजशास्त्र में हरबर्ट स्पेन्सर ने 1958 में 'संरचना' के साथ प्रकार्य का प्रयोग किया, सम्भवतः रेडक्लिफ ब्राउन प्रथम व्यक्ति थे, जिन्होंने 1910 में इमाइल दुर्खीम के समाजषास्त्र पर जो व्याख्यान दिये उनका 'ी"ंक सोषल स्ट्रक्चर रखा। इस पीढ़ी के अन्य लेखकों ने भी संरचना का प्रयोग जैविकीय अर्थ में किया। जैसे 'ारीर की संरचना हाथ, पाँव, आँख, नाक आदि से मिलकर बनती है वैसे ही सामाजिक संरचना के भी विभिन्न भाग होते हैं।

सामाजिक संरचना अवधारणा का प्रयोग 'समाजषास्त्र' एवं 'मानवषास्त्र' दोनों में होता है। इन दोनों विज्ञानों में इसका अलग–अलग प्रयोग होता है।

मोरिस जिन्सबर्ग ने सामाजिक संरचना को परिभा"ात करते हुए लिखा है कि '' सामाजिक संरचना का अध्ययन सामाजिक संगठन के प्रमुख स्वरुपों अर्थात् समूहों समितियों तथा संस्थाओं के प्रकार एवं इन सबके संकुल जिनसे कि समाज का निर्माण होता है, से सम्बन्धित है। सामाजिक संरचना के एक सम्पूर्ण विवरण के अन्तर्गत तुलनात्मक संस्थाओं के सम्पूर्ण क्षेत्र के विष्ले"ाण का समावेष होगा। ''

एस.एफ. नडेल के अनुसार ''सामाजिक संरचना अनेक अंगों की एक क्रमबद्धता को स्प"ट करती है.यह (संरचना) तुलनात्मक रुप से यद्यपि स्थिर होती है, लेकिन इसका निर्माण करने वाले अंग स्वंय परिवर्तनषील होते है । ''

कार्ल मैनहीम के अनुसार '' सामाजिक संरचना अन्तःक्रियात्मक सामाजिक 'ाक्तियों का एक जाल है, जिससे अवलोकन एवं चिन्तन की विभिन्न प्रणालियों का जन्म होता है। ''

यहाँ जाल को मैनहीम ने एक व्यवस्थित प्रतिमान के रुप में प्रयुक्त किया है जिसमें विभिन्न तारों के मध्य एक क्रमबद्धता होती है, इसी प्रकार सामाजिक संरचना भी एक क्रमबद्धता को प्रदर्षित करती है। सामाजिक 'ाक्तियों से मैनहीम का आषय सामाजिक नियन्त्रण के उन साधनों से है, जो व्यक्ति व समूह के जीवन को स्थायित्व प्रदान करने में मदद देते हैं।

टॉलकट पारसन्स के 'ाब्दों में 'सामाजिक संरचना' परस्पर सम्बन्धित संस्थाओं, 'एजेन्सियों और 'सामाजिक प्रतिमानों तथा समूह में प्रत्येक व्यक्ति द्वारा ग्रहण किये जाने वाले पदों तथा कार्यों की क्रमबद्धता है। पारसन्स सामाजिक संरचना को एक क्रमबद्ध रुप में देखते हैं इसलिए सामाजिक संरचना की विभिन्न इकाइयों (संस्थाओं, प्रतिमानों) की क्रमबद्धता को इस रुप में समझाया है। ये इकाइयाँ आपस में मिलकर क्रमबद्ध रुप से सामाजिक संरचना निर्माण करती है, एक–दूसरे से पृथक रह कर नहीं।

मैकाइवर एवं पेज ने लिखा है कि ''समूह निर्माण के विभिन्न तरीके संयुक्त रुप में सामाजिक संरचना के जटिल प्रतिमान का निर्माण करते है. सामाजिक संरचना के विष्ले"ाण में सामाजिक प्राणियों की विविध प्रकार की मनोवृतियों तथा रुचियों के कार्य प्रकट होते हैं। ''

इस प्रकार समूहों के बनने के विभिन्न तरीकों के संयुक्त रुप को ही 'सामाजिक संरचना' कहते हैं जो एक अमूर्त अवधारणा है।

हैरी एम. जॉनसन के अनुसार '' किसी वस्तु की संरचना उसके अंगों के अपेक्षाकृत स्थायी अर्न्तसम्बन्धों से निर्मित होती है, स्वंय अंग 'ाब्द से ही कुछ स्थायित्व के अंष का ज्ञापन होता है, चूँकि सामाजिक व्यवस्था लोगों के अर्न्तसम्बन्धित कृत्यों से बनती है, इस कारण उसकी संरचना को इन क्रियाओं में पाई जाने वाली नियमितता या पुनरावृत्ति की मात्रा में ढूँढ़ा जाना चाहिये।''

हैरी जॉनसन की इस परिभा"ाा से स्प"ट होता है कि ये सामाजिक संरचना को अखण्ड नहीं मानते और यह स्वीकार करते हैं कि इसका निर्माण एकाधिक इकाइयों के संयोग से होता है, जिनमें परस्पर स्थायी सम्बन्ध होता है इस प्रकार सामाजिक संरचना का निर्माण लोगों द्वारा परस्पर सम्बन्धित क्रियाओं या कृत्यों द्वारा होता है। ये क्रियाऐं या कृत्य बार–बार दोहराये जाते हैं। इनमें एक नियमबद्धता पाई जाती है।

कोजर एवं रोजनबर्ग ने लिखा है कि ''संरचना का तात्पर्य सामाजिक इकाइयों के तुलनात्मक स्थिर एवं प्रतिमानित सम्बन्धों से हैं।''

मजूमदार एवं मदान के अनुसार ''पुनरावृतीय सामाजिक सम्बन्धों के तुलनात्मक स्थायी पक्षों से सामाजिक संरचना का निर्माण होता है।''

इन उपरोक्त समाजषास्त्रियों के अलावा कुछ सामाजिक संरचना के अंग है। व्यक्तियों द्वारा अधिकृत पद स्थितियों के रुप में ये सामाजिक संरचना को निर्मित करते है ।''

इग्गन का कहना है कि ''अन्तःवैयक्तिक सम्बन्ध'' सामाजिक संरचना के अंग है। व्यक्तियों द्वारा अधिकृत पद स्थितियों के रुप में ये सामाजिक संरचना को निर्मित करते है।''

फोर्ट्स के अनुसार ''व्यक्तियों के मध्य पाने जाने वाले पारस्परिक सम्बन्ध ही सामाजिक संरचना के अंग है। इस अवधारणा का प्रयोग विषे"ाकर नातेदारी राजनैतिक व कानूनी संस्थाओं के विष्ले"ाण में किया जाता है।''

रेमण्ड फर्थ ने सामाजिक संरचना का प्रयोग उन बुनियादी सामाजिक सम्बन्धों के रुप में किया है जो समाज के मूल स्वरुप को बनाये रखते हैं तथा सामाजिक संगठन की सीमाओं को निर्धारित करते हैं।

ईवान्स प्रिटचार्ड ने सामाजिक संरचना का प्रयोग समूहों के मध्य पाये जाने वाले सम्बन्धों के लिये किया है।

रेडक्लिफ ब्राउन के अनुसार, ''सामाजिक संरचना के अंग या भाग मनु"य ही हैं, और स्वंय संरचना, संस्था द्वारा परिभा"ित और नियमित सम्बन्धों में लगे हुए व्यक्तियों की एक क्रमबद्धता हैं

उपरोक्त विवेचन से स्प"ट है कि सामाजिक संरचना की अवधारणा के बारे में विभिन्न लेखकों के विचारों में पर्याप्त अन्तर है। यह अन्तर समाजषास्त्रियों और मानवषास्त्रियों द्वारा प्रस्तुत परिभा"ाओं में और भी स्प"ट

रुप से देखा जा सकता है। फिर भी लगभग सभी विद्वान सामाजिक संरचना के कुछ निम्नलिखित महत्वपूर्ण पक्षों से सहमत हैं–

- सामाजिक संरचना अनेक अंगों या इकाइयों से मिलकर बनती है।
- सामाजिक संरचना में ये अंग परस्पर रुप से अन्तर्सम्बन्धित हैं।
- सामाजिक संरचना एक प्रकार से 'ारीर–रचना की तरह है और इसका प्रयोग भी इसी अर्थ में किया जाता है।
- सामाजिक संरचना का प्रयोग व्यापक अर्थ में सामाजिक संगठन, सामाजिक व्यवस्था या सामाजिक स्वरुप के अर्थ में हुआ है तथा सामाजिक समूह, संस्थायें, समितियाँ आदि इसकी प्रमुख इकाइयाँ है।

सामाजिक संरचना की उपरोक्त परिभा"ाओं के आधार पर इसकी महत्वपूर्ण विषे"ाताएँ निम्नलिखित है–

- **सामाजिक संरचना बाहय स्वरुप का बेाध कराती है–**
  सामाजिक संरचना का निर्माण विभिन्न अंगो एवं इकाइयों से होता है। ये इकाइयाँ या अंग जब एक अन्तर्सम्बन्धित व्यवस्था के रुप में क्रमबद्ध रुप से संयुक्त हो जाते हैं तो एक ढाँचे या प्रतिमान का निर्माण होता है, उसी प्रकार जिस प्रकार पत्थर, सीमेण्ट, लोहा आदि के द्वारा एक भवन का निर्माण होता है। भवन के बाहय स्वरुप की भाँति ही सामाजिक संरचना समाज के बाहय स्वरुप का बोध कराती है।
- **एकाधिक अंग या इकाइयाँ–**
  सामाजिक संरचना, स्वंय में अखण्ड न होकर अनेक अंगो या इकाइयों की एक व्यवस्था है। संरचना की सबसे महत्वपूर्ण विषे"ाता यह है कि उसका गठन केवल किसी एक अंग या इकाई के आधार पर नहीं हो सकता बल्कि एकाधिक अंगों या इकाइयों के संयुक्तिकरण से ही संरचना का निर्माण सम्भव है। सामाजिक संरचना के अंग या इकाइयाँ विभिन्न सामाजिक समूह, संस्थायें, समितियाँ आदि है।
- **व्यवस्थित क्रम–विन्यास–**
  सामाजिक संरचना एक व्यवस्थित क्रमबद्धता है, जो विभिन्न अंगो या इकाइयों के मध्य पाई जाती है, अर्थात् केवल अंगो या इकाइयों के संकलन मात्र से ही किसी सामाजिक संरचना का निर्माण नहीं होता, जब तक कि इसके सभी अंग सुव्यवस्थित रुप से क्रमबद्ध न हो। जिस प्रकार ईट, सीमेण्ट, लोहे, पत्थर के ढेर से या संकलन से मकान नहीं बन सकता है, उसी प्रकार इकाइयों की क्रमबद्धता के अभाव में सामाजिक संरचना नहीं बन सकती।
- **प्रतिमानित अन्तर्सम्बन्ध–**
  प्रत्येक सामाजिक संरचना, अंगों या इकाइयों के प्रतिमानित अन्तर्सम्बन्धों से ही निर्मित होती है। वास्तव में विभिन्न अंगो या इकाइयों का केवल व्यवस्थित रुप में क्रमबद्ध होना ही आवष्यक नहीं है बल्कि उनमें 'अन्तर्सम्बन्ध' का होना भी आवष्यक है। उदाहरण के लिये घड़ी का निर्माण करने वाली सभी इकाइयों के परस्पर अन्तर्सम्बन्धित होने पर ही घड़ी की संरचना बनाती है।

- **अपेक्षाकृत स्थिर व स्थायी–**
  सामाजिक संरचना अपेक्षाकृत स्थिर एवं स्थायी अवधारणा है। जॉनसन ने बताया कि सामाजिक संरचना का निर्माण जिन समूहों और उपसमूहों से होता है, वे अपेक्षाकृत रुप से कही अधिक स्थायी होते है। समूह, समितियाँ, परिवार, श्रमिक संघ आदि सभी अपेक्षाकृत स्थायी समूह है। नडेल के अनुसार सामाजिक संरचना इस अर्थ में भी स्थिर व स्थायी है कि इसमें हम किसी वस्तु के सम्पूर्ण अंगों के पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन करते हैं जो कि सामान्यतः स्थिर व स्थायी होते हैं।
- **अमूर्तता–**
  सामाजिक संरचना की एक विषे"ाता अमूर्तता है। मैकाइवर एवं पेज तथा टालकट पारसन्स दोनों ने ही सामाजिक संरचना की इस विषे"ाता की ओर ध्यान आकर्"ात किया है। इनका मानना है कि सामाजिक संरचना का निर्माण करने वाली इकाइयाँ या भाग, संस्थायें, एजेन्सियाँ एवं सामाजिक प्रतिमान हैं, सभी अमूर्त हैं। इन इकाइयों का भौतिक वस्तुओं की तरह कोई मूर्त स्वरुप या आकार नहीं है। राइट का कहना है कि सामाजिक संरचना का तात्पर्य एक 'दषा' अथवा स्थिति से है और इसीलिये आवष्यक रुप से यह अमूर्त है।
- **उपसंरचनाओं का होना–**
  सामाजिक संरचना एक अखण्ड व्यवस्था नही है, बल्कि इसका निर्माण अनेक उपसंरचनाओं से मिलकर होता है। सामाजिक संरचनाओं की उपसंरचनाओं में परिवार, जाति, वर्ग, षिक्षण संस्था, धार्मिक संस्था, आर्थिक संस्था आदि मुख्य है, जिनकी स्वंय की एक संरचना होती है। इस प्रकार ये अनेक उप –संरचनायें मिलकर एक सामाजिक संरचना का निर्माण करती हैं।
- **स्थानीय विशे"ाताओं से प्रभावित–**
  प्रत्येक समाज की अपनी सामाजिक संरचना होती है जो उस समाज विषे"ा की स्थानीय विषे"ाताओं से प्रभावित होती है। अपनी भौगोलिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक विषे"ातायें होती है, इसीलिए एक समाज की सामाजिक संरचना दूसरे समाज की सामाजिक संरचना से भिन्न होती है। रेडक्लिफ ब्राउन ने लिखा है कि सामाजिक संरचना की अवधारणा में स्थानीय विषे"ाताओं का महत्वपूर्ण स्थान होता है।
- **विघटन की सम्भावना–**
  सामाजिक संरचना में अनेक बार विघटन के तत्व भी पाये जाते हैं। रोबर्ट मर्टन और इमाइल दुर्खीम ने इसी संदर्भ में नियमहीनता या विसंगति का उल्लेख किया है और बताया है कि अनेक बार सामाजिक संरचना स्वंय समाज में विसंगति पैदा करती है। इस प्रकार सामाजिक संरचना में विघटन के तत्वों की सम्भावना रहती है।
- **सामाजिक प्रक्रियाओं का महत्व–**
  सामाजिक संरचना के निर्माण में सहयोगी एवं असहयोगी दोनों प्रकार की सामाजिक प्रक्रियाओं, जैसे –सहयोग, अनुकूलन, व्यवस्थापन, सात्मीकरण, प्रतिस्पर्द्धा, संघ"ार्ा आदि की भूमिका भी महत्वपूर्ण होती हैं। इन्हीं सामाजिक प्रक्रियाओं के कारण सामाजिक संरचना का स्वरुप निर्धारित होता है।

9.4 संरचनात्मक एवं अर्द्ध–संरचनात्मक पक्ष

हैरी एम. जॉनसन ने अपनी कृति सोषियोलोजी–ए सिस्टेमेटिक इन्ट्रोडक्षन' में सामाजिक प्रणालियों के संरचनात्मक एवं अर्द्ध संरचनात्मक पक्षों का उल्लेख किया है। उसके अनुसार सामाजिक प्रणाली की संरचना में निम्न चार तत्व होते हैं–

- कई प्रकार के उप–समूह, जो सम्बन्धित सामान्यकों द्वारा अन्तर्सम्बन्धित होते हैं।
- कई प्रकार की भूमिकायें और उसके उप–समूहों में प्रत्येक भूमिका सम्बन्धित सामान्यकों द्वारा अन्य प्रणालियों से सम्बन्धित होती है।
- उप–समूहों और भूमिकाओं को 'ाासित करने वाले सामान्यक नियामक।
- सांस्कृतिक मूल्य।

  इन तत्वों में से कोई भी किसी प्रकार का उप–समूह, कोई भूमिका, कोई सामाजिक सामान्यक, या कोई मूल्य–आंषिक–संरचना, कहा जा सकता है।

सामाजिक प्रणालियों के निम्नांकित पाँच अन्य पक्ष भी है जो 'सामाजिक संरचना' से इतने धनि"ठ रुप से सम्बन्धित है कि जॉनसन इन्हे 'अर्द्व–संरचनात्मक पक्ष' कहते हैं–

- प्रत्येक भिन्न प्रकार के उप–समूहों की संख्या तथा किसी एक प्रकार के उप–समूहों की संख्या और उसी से बहुत कुछ मिलते–जुलते उप समूहों की संख्या का अनुपात।
- प्रत्येक प्रकार के उप–समूहों में सदस्यों का वितरण।
- उप–समूहों में और पूरी प्रणाली में, विभिन्न भूमिका–धारियों की संख्या
- सुविधाओं का वितरण।
- पारितोि"ाकों का विवरण।

टालकट पारसन्स ने अपनी सामाजिक संरचना के चार प्रमुख प्रारुपों का उल्लेख किया है। चार प्रकार के सामाजिक मूल्यों पर आधारित है–

- सार्वभौमिक सामाजिक मूल्य
- विषि"ट सामाजिक मूल्य
- अर्जित सामाजिक मूल्य
- प्रदत सामाजिक मूल्य

पारसन्स का मानना है कि सार्वभौमिक सामाजिक मूल्य वो होते है। जो कि समस्त समाजों में व्यापक रुप से पाये जाते है। और सभी व्यक्यिों पर लागू होते है। इसके विपरीत विषि"ट सामाजिक मूल्य किन्हीं विषे"ा सामाजिक सम्बन्धों पर आधारित होते हैं। अर्जित सामाजिक मूल्य वे होते हैं जिन्हें एक व्यक्ति अपने प्रत्यन्नो द्वारा प्राप्त करता हैं। जबकि पंरपरा द्वारा निर्धारित पदों से सम्बन्धित मूल्य, प्रदत सामाजिक मूल्य कहे जाते हैं। इन्हीं चार सामाजिक मूल्यों के आधार पर पारसन्स ने सामाजिक संरचना के चार प्रारुपों को समझाया हैं

- **सार्वभौमिक अर्जित प्रतिमान**– सामाजिक संरचना के इस प्रथम प्रतिमान में सार्वभौमिक एवं अर्जित प्रकार के सामाजिक मूल्यों का समावेष होता है। सार्वभौमिक मूल्यों में समाज में नातेदारी, समुदाय, प्रजाति अथवा वर्ग आदि के सम्बन्ध प्रभावित होते है। इन मूल्यों के कारण व्यक्ति को कुछ

निष्चित पदों की प्राप्ति होती है। लेकिन इनसे समाज की गतिषीलता में कमी आती है। एवं रुढ़िवादिता में वृद्धि होती है। इसके विपरीत अर्जित सामाजिक मूल्यों को व्यक्ति अपने परिश्रम से प्राप्त करता हैं। अतः अर्जित मूल्य व्यक्तिगत एवं सामूहिक अर्जन को प्राप्त करते हैं। इससे प्रथा एवं परम्परा का विषे"ा प्रभाव नहीं रहता । पूंजीवादी अर्थव्यवस्था अर्जित मूल्यों का एक उदाहरण हैं। जिसमें धन के अर्जन एवं संचय को काफी महत्व दिया जाता है। इस प्रकार इन दोनों प्रकार के सामाजिक मूल्यों के संयोग से सार्वभौमिक अर्जित प्रतिमान का निर्माण होता है। पारसन्स के अनुसार औद्योगिक समाजों की संरचना इस प्रकार के प्रतिमानों का उदाहरण है इस प्रकार के समाजों की संरचना में वर्ग व्यवस्था पायी जाती है। जो कि सार्वभौमिक मूल्यों पर आधारित है।साथ ही अर्जित मूल्यों का भी महत्व होता है।

- **सार्वभौमिक प्रदत प्रतिमान**– पारसन्स के अनुसार सामाजिक संरचना के इस प्रतिमान में सार्वभौमिक मूल्य तो वही होते है। जिनका उल्लेख प्रथम प्रतिमान में हैं लेकिन इनमें अर्जित मूल्यों का स्थान प्रदत मूल्य ले लेते है। इसमें अतीत तथा भवि"य से संबंधित दोनों प्रकार के आदर्ष प्रतिमान में संयुक्त रुप से सम्मिलित रहते है। आदर्षों के चुनाव में रुढियों और परम्पराओं को विषे"ा महत्व नहीं दिया जाता। फलस्वरुप व्यक्तियों के समक्ष आदर्षों की अधिकता रहती है। साथ ही परिस्थितियों के अनुसार इनमें परिवर्तन भी होता रहता है। पारसन्स ने इस प्रकार के प्रतिमान का उदाहरण '' आधुनिक वैज्ञानिक समाजों' का दिया है जिनमें दोनों प्रकार के मूल्यों का समावेष हैं।
- **विशि"ट–अर्जित प्रतिमान**– इस प्रकार के प्रतिमान में सार्वभौमिक मूल्यों की अपेक्षा विषि"ट सामाजिक मूल्यों की प्रमुखता रहती है। ये सामाजिक मूल्य विषे"ा सामाजिक सम्बन्धों पर आधारित होते है, जो पारलौकिक भी हो सकते है। इसके साथ अर्जित मूल्यों का समावेष कर सामाजिक संरचना के इस प्रतिमान को प्रस्तुत किया गया है। पारसन्स के अनुसार प्राचीन भारतीय व चीनी सामाजिक संरचना को इस श्रेणी के प्रतिमान में रखा जा सकता है। मैक्स बेबर ने कन्फ्यूषियन चीनी सामाजिक संरचना का जो चित्र प्रस्तुत किया है, वह भी इसी श्रेणी के अन्तर्गत आता है।
- **विशि"ट–प्रदत प्रतिमान**– पारसन्स के अनुसार सामाजिक संरचना का अन्तिम प्रारुप विषि"ट एवं प्रदत सामाजिक मूल्यों के संयोग से बना है। इस प्रकार के सामाजिक संरचना में रक्त–सम्बन्ध और स्थानीय समुदायों पर आधारित समूह पाये जाते हैं। नैतिकता का महत्व इस प्रकार की संरचना की एक विषे"ाता है।यहाँ विषि"ट वैयक्तिक गुणों को विषे"ा महत्व दिया जाता है। पारसन्स के अनुसार स्पेन की सामाजिक संरचना इसका श्रे"ठ उदाहरण है।

  सामाजिक संरचना का अभिप्राय उस स्वरुप से है, जो समाज के विभिन्न अंगों के संयुक्त होने के उपरान्त एक निष्चित क्रमबद्धता के रुप में विकसित होता है। समाज के विभिन्न अंगों की प्रकृति एक–दूसरे से भिन्न है अतः प्रकृति के अनुसार ही सामाजिक संरचना के अनेक रुप हैं।

  समाजषास्त्र में सामाजिक व्यवस्था की अवधारणा अत्यन्त महत्वपूर्ण है। क्योंकि सामाजिक व्यवस्था के दो भाग माने जाते हैं। प्रथम सामाजिक संरचना, द्वितीय प्रकार्य। अतः सामाजिक व्यवस्था को भी समझना आवष्यक है। मानव जीवन के क्रम और निरन्तरता को बनाए रखने के लिये समाज का महत्वपूर्ण योगदान हैं। इसीलिए मानव जीवन के अस्तित्व एवं प्रगति के लिये सामाजिक व्यवस्था आवष्यक है। व्यवस्था का अभिप्राय उस क्रमबद्धता से है जो किसी संरचना के

विभिन्न इकाईयों के मध्य एक निष्चित प्रकार्यात्मक आधार पर पायी जाती हैं व्यवस्था को निम्नलिखित बिन्दुओं से समझा जा सकता है।

- व्यवस्था का निर्माण एक से अधिक इकाइयों से होता हैं और ये सभी इकाइयां क्रमबद्ध रुप में एक–दूसरे से जुड़ी होती है।
- व्यवस्था का संबंध एक संरचना से होता है। संरचना के बिना व्यवस्था नहीं हो सकती।
- व्यवस्था एक ऐसी स्थिति का बोध कराती है। जिसमें विभिन्न तत्व अनेकता से एकता के स्वरुप को स्प"ट करती है।
- व्यवस्था के निर्णायक अनेक इकाइयों एक–दूसरे से इस प्रकार अर्न्तसम्बन्धित होती हैं कि वे प्रकार्यात्मक आधार पर महत्वपूर्ण होती हैं।
- व्यवस्था में परिवर्तनषीलता होती है क्योंकि व्यवस्था का संबंध आवष्यकता पूर्ति से होता हैं। और व्यक्तियों की आवष्यकता में परिवर्तन होते रहने से व्यवस्था की संरचना में परिवर्तन होता रहता है।
- व्यवस्था कुछ इकाइयों का संयोग मात्र नही हैं, अपितु इसे व्यवस्था तभी कह जा सकता है जब वह समाज के लिए उपयोगी है।

एम.ई. जोन्स ने लिखा है सामाजिक व्यवस्था वह स्थिति हैं जिसमें समाज के विभिन्न क्रियाषील इकाईयां एक–दूसरे से तथा सम्पूर्ण समाज के साथ अपूर्ण ढंग से जुड़कर कार्य करती है। जोन्स की परिभा"ाा से यह स्प"ट होता हैं कि सामाजिक व्यवस्था में केवल सहयोग का ही समावेष होना आवष्यक नहीं है। समाज में वस्तुतः सहयोग और संघ"ार्ा सभी प्रकार के तत्व क्रियाषील रहते है। लेकिन सामाजिक व्यवस्था का आषय उस स्थिति से लगाया जाता है जिसमें प्रत्येक भाग को एक–दूसरे से अर्न्तक्रिया करने और अपने सामाजिक हितों को पूरा करने के अधिकतम अवसर प्राप्त हो सके।

इससे स्प"ट होता है कि किसी भी **समाज व्यवस्था के तीन महत्वपूर्ण अंग** हैं–

1.व्यक्तित्व व्यवस्था
2. सांस्कृतिक व्यवस्था
3. सामाजिक व्यवस्था

ये तीनों आपस में अर्न्तनिहित एवं अर्न्तसंबंधित होते हैं। इन तीनों में से किसी एक के अभाव में की समाज व्यवस्था की कल्पना नही की जा सकती है।

पारसन्स का यह भी कहना है कि किसी भी समाज–व्यवस्था को बने रहने के लिए यह आवश्यक है कि उसकी कुछ पूर्व आवश्यकताओं की पूर्ति की जाय। पारसन्स ने इसे तीन वर्गों में बाँटा है–

1.जैविकीय पूर्व आवश्यकताएँ
2. सांस्कृतिक पूर्व आवश्यकताएँ
3. प्रकार्यात्मक पूर्व आवश्यकताएँ

जैविकीय पूर्व आवश्यकताएँ– इसमें तीन बातें शामिल की जाती हैं–

- समाज में पर्याप्त संख्या में सदस्य हो।
- लोगों में जननक की व्यवस्था होनी चाहिये।
- कर्त्ता को अपनी बुनियादी आवश्यकताओं को पूरा करने के बाद भी समय और शक्ति मिलती हो, ताकि वह समाज व्यवस्था में भाग ले सके।

सांस्कृतिक पूर्व आवश्यकताएँ– इसके भी तीन बिन्दु हैं–

- समाज में एक भा"ाा होनी चाहिये।
- प्रतीक व्यवस्था सुदृढ़ होनी चाहिये।
- संचार–व्यवस्था सुदृढ़ होनी चाहिये।

प्रकार्यात्मक पूर्व आवश्यकताएँ– इसमें निम्नांकित तीन बातें होती हैं–

- बहुत से लोग अनुशासन में रहना चाहते हैं।
- लोगों मे निषेधात्मक नियन्त्रण की भावना हो अर्थात् जो लोग नियम भंग करते हों उनकी रोकथाम के लिए व्यवस्था में उचित क्षमता हो।
- लोगों में स्वीकारात्मक कार्यों के प्रति सद्भावना हो अर्थात् जो समाज के लिए उचित कार्य करते हैं, उन्हें मदद करने के लिए लोग तैयार रहते हों।

जब इन सब 'ार्तो को कोई समाज पूरा करेगा तभी कोई समाज व्यवस्था क्रियान्वित होगी, जिसमें स्थायी और व्यवस्थित अन्तर्व्यवस्था होगी।

9.5 समाज–व्यवस्था की चार उप–व्यवस्थाए

प्रकार्यात्मक पूर्व आवश्यकताओं पर पारसन्स ने विशेष बल दिया है और इसके अन्तर्गत केवल उन्हीं पूर्व आवश्यकताओं की चर्चा उन्होंने की है जो सार्वभौमिक रुप से मौजूद हो तथा जिसकी पूर्ति वैज्ञानिक तरीके से की जा सकती है। ये चार है इसकी पूर्ति किसी भी समाज–व्यवस्था चार उप–व्यवस्थाए करती है जो निम्न हैं–

- **अनूकूलन**
- **लक्ष्य की पूर्ति**
- **एकीकरण**
- **प्रतिमान अनुरक्षण (लैटेंसी)**

अनूकूलन – सामाजिक व्यवस्था के अस्तित्व के लिऐ आवष्यक है कि सदस्यों की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु न्यूनतम भोजन, वस्त्र आवास आदि की आपूर्ति हो। अतः इन आवश्यकताओं की पूर्ति समाज की **आर्थिक उप–व्यवस्था** करती हैं।

लक्ष्य पाप्ति – किसी भी समाज के लिए जरुरी है कि उसके लक्ष्यों का निर्धारण किया जाये तथा उसकी प्राप्ति हेतु संसाधनों का चुनाव एवं उनका सगंठन किया जाए। अतः इन आवश्यकताओं की पूर्ति समाज की राजनीतिक उप–व्यवस्था करती हैं।

प्रतिमान अनुरक्षण – समाज की निरंतरता हेतु आवश्यक है कि इसके प्रतिमानों को बनाये रखा जाए तथा व्यवस्था में तनावों का निराकरण किया जाएं।चूंकि समाज एक आत्म अनुरक्षित एवं आत्मपो"ाी व्यवस्था है इसलिये वह अपनी उपरोक्त आवश्यकताओं की पूर्ति भी स्वंय करता है और इस हेतु वह अपने अंगो के रुप में विभिन्न संस्थाओं को विकसित करता है जो अपने प्रकार्यो द्वारा समाज की इन आवश्यकताओं की पूर्ति करके सामाजिक व्यवस्थाओं को बनाये रखते है। जैसे अर्थव्यवस्था अनूकूलन की आवश्यकता को। राजनीतिक व्यवस्था लक्ष्य प्राप्ति की आवश्यकता को तथा परिवार, शिक्षा, व्यवस्था एवं धर्म प्रतिमान अनुसरण की आवश्यकता को पूरा करते हुए सामाजिक व्यवस्था को बनाये रखते है।

पारसन्स ने अपने सिद्वान्त में इस बात का स्पष्ट उल्लेख किया है कि कोई भी समाज–व्यवस्था तब तक नहीं पनप सकती जबतक कि व्यक्ति कर्त्ता को उसके पद के हिसाब से न कार्य करने दिया जाए तथा साथ ही सांस्कृतिक व्यवस्था उस अपनी आशाओं के अनुरुप कार्य करने के लिए विवश न करें।

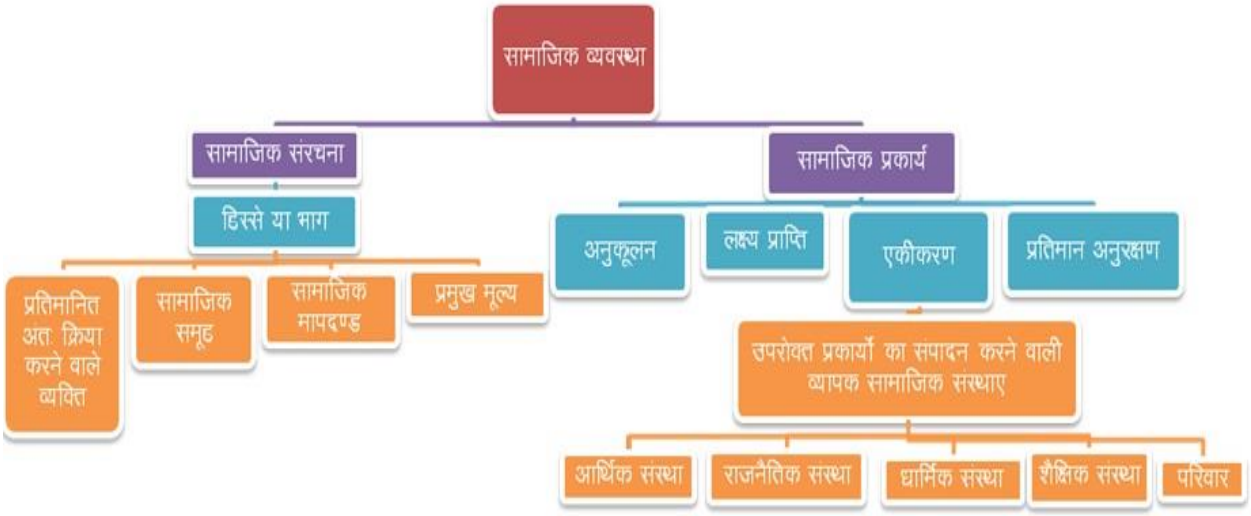

9.6 आलोचनात्मक मूल्यांकन

सामाजिक व्यवस्था संबंधी परम्परा के उपरोक्त विचारों की कई आलोचनाएं की गई है

1. गोल्डनर एवं डेहरेन्डॉर्फ का मानना है कि पारसंस के विचारों का केन्द्रीय तत्व मूल्य एकात्मता एवं संतुलन है। परंतु पारसन्स का यह मानना भ्रमपूर्ण है कि व्यवस्था के एकाधिक कर्त्ता व्यवस्था के मानदण्ड एवं मूल्यों से सहमत होते है। ऐसा कहकर पारसंस ने मानदंडो एवं मूल्यों को आवश्यकता से अधिक महत्व देकर व्यक्तिगत क्रिया संपादन में भौतिक हितों की उपेक्षा की है और साथ ही व्यवस्था की यथास्थितिवादिता का भी समर्थन किया है।
2. इस संदर्भ में **डेहरेनडॉर्फ** का आरोप है कि पारसंस की यह मान्यता सामाजिक व्यवस्था में विद्यमान तनाव एवं सघं"ार्ा की प्रक्रियाओं की उपेक्षा करती है।

3. आलोचकों का आरोप है कि पारसंस का यह सिद्वान्त यथास्थिवादिता पर अधिक बल देकर सामाजिक परिवर्तन की संभावनाओं की उपेक्षा करता है। क्योंकि यह समाज को परिणाम/प्रकार्य की पूर्वधारणाओं पर आधारित एक संतुलन मॉडल के रुप में दिखता है। जिसमें प्रत्येक सामाजिक संस्था को प्रकार्यात्मक माना जाता है और ये संस्थाएं व्यवस्था में संतुलन बनाये रखने के लिए निरंतर क्रियाशील होती है। ऐसी स्थिति में, पूरी व्यवस्था को भंग किय बगैर इसे बदल पाना संभव नहीं है। आलोचकों के अनुसार पारसंस की यह मान्यता भी अवैज्ञानिक है।
4. आलोचकों के अनुसार पारसंस क्रिया सिद्धांत और व्यवस्था सिद्धांत में तालमेल बैठाने में असफल रहे वे व्यक्तिगत क्रिया के संदर्भ में सामाजिक निर्धारवाद के दुर्गण से ग्रस्त हो गये है।

5. **एन्थो गिडेन्स** ने अपने संरचनाकरण सिद्धान्त में बताया है कि व्यवस्था में सामाजिककर्ताओं जिनके द्वारा व्यवस्था की रचना होती है, के अतिरिक्त अद्भुत गुण नहीं होते। अर्थात् सामाजिक व्यवस्था के व्यवस्थागत गुणों का विकास स्वंय व्यवस्था की उपेक्षा सामाजिक क्रिया की प्रकृति से होता है। इसके अलावा, पारसंस के इस सिद्धान्त पर महती सिद्धान्त (वृहत सिद्धान्त), उद्देश्यपरकता , अनुभाविक साक्ष्यों को दूर, अवधारणाओं के बावजूद पारसन्स का यह सिद्धान्त आधुनिक समाजशास्त्र में सामाजिक व्यवस्था अमूर्तिकरण का एक बेहतर प्रयास है। जिसमें सामाजिक व्यवस्था को देखने का पूर्व–प्रचलित दृष्टिकोणों (आदर्शवाद, प्रत्यक्षवाद, उपयोगितावाद) को समन्वित करने का प्रयास किया गया है।

6. यद्यपि, पारसंस कर्त्ता एवं संरचना के द्वैतवाद को अपने विचारों द्वारा पूरी तरह स्वीकृत नहीं कर पाये हैं जिसकों संषोधित रुप में **जेफ्री एलेक्जेंडर** जैसे विचारकों ने रखा है, तथापि मार्क्सवादी परंपरा के विपरीत समाज के प्रकार्यात्मक विष्ले"ाण का पारसंस का यह प्रयास सराहनीय हैं। यदि इस अन्य सिद्धांतो के साथ समन्वित करते हुये नया पैराडाइम विकसित किया जाये तो यह समकालीन समाज के विष्ले"ाण हेतु अधिक कारगर हो सकता है जिसके लिए नव–प्रकार्यवादियों द्वारा किया गया प्रयास सराहनीय है।

9.7 सारांश –

इस इकाई के अध्ययन से आप जान चुके हैं कि सामाजिक क्रिया क्या है। पैरेटो ने सामाजिक क्रिया के दो प्रकार की चर्चा की है। मैक्स वेबर के अनुसार, सामाजिक क्रिया की अवधारणा तथा इसके प्रकार। साथ ही पारसंस के सामाजिक क्रिया का सिद्धांत, पारसंस ने सामाजिक क्रिया में किन तत्वों को समावेष किया है।

9ण्8 पारिभाि"ाक शब्दावली–

विशिष्ट चालक (त्मेपकनमे) – पैरेटो के अनुसार, मनु"य की अधिकांष क्रिया कुछ चालकों पर निर्भर होती है। पैरेटो ने इन्हीं चालकों को विषि"ट चालक कहा है। इनकी प्रकृति बहुत कुछ संवेगों से मिलती जुलती होती है। इसी कारण विषि"ट चालकों को संवेगों की अभिव्यक्ति के रुप में देखा जाता है।

भ्रान्त तर्क (क्मतपअंजपवदे)– पेरैटो ने अपने सामाजिक क्रिया के विष्ले"ाण क्रम में भ्रांत तर्क की चर्चा की। जब कर्ता कोई अतार्किक क्रिया करता है तो अपने क्रिया को सही साबित करने के लिए भ्रान्त तर्क का सहारा लेता है, जिससे यह क्रिया का औचित्य साबित हो सके। इसी प्रकार के तर्क को भ्रान्त तर्क कहा जाता है।

9.9 अभ्यास /बोध प्रश्नों के उत्तर

1. टाल्कट पारसन्स के अनुसार ए सामाजिक प्रणाली के लिए निम्नलिखित में से कौन दृ कौन सी प्रकार्यात्मक पूर्वा अपेक्षाएँ हैं?

।ण संमजनए लक्ष्य प्राप्तिए एकीकरण एवं समायोजन
ठण समायोजनएअनुकूलनए विन्यास अनुरक्षण एवं एकीकरण
ब्ण सहकारिताए लक्ष्यप्राप्तिए एकीकरण एवं विन्यास अनुरक्षण
क्ण अनुकूलनए लक्ष्य प्राप्तिए एकीकरण एवं विन्यास अनुरक्षण

2. पारसन्स की सामाजिक व्यवस्था के संप्रत्ययीकरण के लिए संस्थान की धारणा निर्णायक है वह उसे देखते हैं–

।ण एक प्रक्रिया के रुप में एवं एक संरचना के रुप में
ठण एक प्रक्रिया के रुप में एवं एक ढांचे के रुप में
ब्ण एक ढांचा के रुप में एवं एक संरचना के रुप में
क्ण एक संरचना के रुप में एवं एक प्रकार्य के रुप में

3. पारसन्स के अनुसार व्यवस्था का निर्माण करने वाला तत्व क्या हैघ

।ण प्रकार्य ब्ण क्रिया
ठण भूमिका क्ण प्रस्थिति

4. पारसन्स सामाजिक संरचना को किस रुप में देखते हैंघ

।ण सामाजिक अन्तर्क्रिया की स्थिर व्यवस्थाएं
ठण वास्तविकता के पीछे से तर्क
ब्णसंस्थागत व्यवस्थाएं एवं क्षेत्र
क्ण स्वयं में वास्तविकता

5. टाल्कॉट पारसन्स एवं राबर्ट के0 मर्टन का समाज शास्त्र के अध्ययन का उपागम हैं–

।ण अन्तः क्रियात्मक ब्ण संरचनात्मक प्रकार्यात्मक
ठण व्यवहारवादी क्ण प्राथमिक

6. पारसन्स ने अपनी किस पुस्तक में सामाजिक संरचना के प्रमुख प्रारुपों का वर्णन किया हैंघ

।ण द डिवीजन ऑफ सोसाइटी
ठण दी सोषल सिस्टम
ब्ण द रुल्स ऑफ सोषियोलॉजिकल मैथड
क्ण फैमिली सोषलाइजेषन एण्ड इण्टर एक्षन प्रोसेस

7. पारसन्स के अनुसार सामाजिक संरचना का निर्माण किन इकाइयों से होता है।

a. सामाजिक संस्थाओं
b. एजेन्सियों
c. सामाजिक प्रतिमान
d. व्यक्तियों द्वारा ग्रहण किए गए पदों एवं भूमिकाओं से
e. उपर्युक्त सभी।

8. निम्नलिखित में से कौन–सा युग्म सही रुप से सुमेलित नहीं किया गया है?

a. सी. एच. कूले : प्राथमिक समूह
b. टॉल्कट पॉर्सन्स : प्रत्यक्षवाद
c. आर. के. मर्टन : संदर्भ– समूह
d. डब्ल्यू. जी सम्नर : अंतः समूह, बहिर्समूह

9. निम्नलिखित युग्मों में से कौन–सा एक सही रुप से सुमेलित नहीं किया गया है?

a. ए. आर. रेडक्लिफब्राउन : चार प्रकार्यात्मक पूर्वापेक्षाएं
b. आर. के. मर्टन : संदर्भ–समूह
c. एमिल दर्खाइम : सामाजिक तथ्य
d. ई. एच. कूले : प्राथमिक एवं गौण समूह

10. प्रकार्यवादियों के अनुसार, सामाजिक एकीकरण के लिये कौन–सा सबसे महत्वपूर्ण तथा मूल घटक है?

a. मूल्य–मतैक्य
b. सापेक्ष स्थिरता का अनुरक्षण
c. संरचनात्मक अंतर–निर्भरता
d. प्रतिमानहीनता की दषा

11. टाल्कट पार्सन्स के अनुसार, सामाजिक प्रणाली के लिए निम्नलिखित में से कौन–कौन सी प्रकार्यात्मक पूर्वापेक्षाएं हैं?

a. समंजन, लक्ष्यप्राप्ति, एकीकरण एवं समायोजन
b. समायोजन, अनूकूलन, विन्यास अनुराग एवं एकीकरण
c. सहकारिता, लक्ष्य प्राप्ति, एकीकरण एवं विन्यास अनुरक्षण
d. अनूकूलन, लक्ष्य प्राप्ति, एकीकरण एवं विन्यास अनुरक्षण

12. टी. पार्सन्स के अनुसार, अभिप्रेरणात्मक अभिविन्यास के तीन प्रकार होते हैं। निम्नलिखित में कौन सा एक इन प्रकारों में सम्मिलित नहीं हैं?

a. संज्ञानात्मक अभिविन्यास
b. विरेचक अभिविन्यास
c. प्रषंसात्मक अभिविन्यास
d. मूल्यांकीय अभिविन्यास

13. टी. पार्सन्स के अनुसार व्यवहार तब क्रिया बन जाता है जब चार 'ार्ते उपस्थिति होती है। निम्नलिखित में से कौन सी एक 'ार्त उनमें से नहीं हैं?

a. लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए अभिविन्यास
b. विषि"ट परिस्थितियों में घटित होना
c. कर्ता विषे"ा के प्रतिमानों और मूल्यों द्वारा नियमित होना
d. ऊर्जा के संवेगात्मक निवेष की संलग्नता

14. सूची.ए को सूची.बी के साथ सुमेलित कीजिये तथा सूचियों के नीचे दिए कूट का प्रयोग कर सही उत्तर चयन चुनिए :

सूची.ए	सूची.बी
a. प्रत्यक्ष प्रकार्य	1. पारसन्स
b. प्रतिमान हीनता	2. वेबर
c. सामाजिक व्यवस्था	3. काम्ट
d. वर्स्टहेन	4. मर्टन
	5. दुर्खीम

कूटः

	।ए	ठ	ङ	क
ंए	4	5	3	1
इए	2	4	3	1
बए	4	5	1	2
कए	1	4	5	2

15. पारसन्स के सामाजिक व्यवस्था सिद्वान्त में कर्ता के अभिप्रेरणाओं का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। निम्नलिखित में से किस अभिप्रेरणा की चर्चा पारसन्स ने नहीं की?

a. मूल्यात्मक
b. संज्ञानात्मक
c. सौदंर्यात्मक
d. मूल्यांकनात्मक

16. अनुकूलन के प्रकार्य को समाज की कौन सी उप–व्यवस्था पूर्ति करती हैं।

A. आर्थिक व्यवस्था
B. राजनैतिक व्यवस्था
C. मूल्य व्यवस्था
D. सामाजिक व्यवस्था

17. लक्ष्य की प्राप्ति के प्रकार्य को समाज की कौन सी उप–व्यवस्था पूर्ति करती हैं।

A. आर्थिक व्यवस्था
B. राजनैतिक व्यवस्था
C. मूल्य व्यवस्था
D. सामाजिक व्यवस्था

18. एकीकरण के प्रकार्य को समाज की कौन सी उप–व्यवस्था पूर्ति करती हैं।

A. आर्थिक व्यवस्था

B. राजनैतिक व्यवस्था

C. मूल्य व्यवस्था

D. सामाजिक व्यवस्था

19. प्रतिमान अनुरक्षण के प्रकार्य को समाज की कौन सी उप–व्यवस्था पूर्ति करती हैं।

A. आर्थिक व्यवस्था

B. राजनैतिक व्यवस्था

C. मूल्य व्यवस्था

D. सामाजिक व्यवस्था

उत्तर– 1–क, 2–क, 3–ब, 4– ।, 5–ब, 6–ठए 7. म्ए 8.ठए 9. ।ए 10.ब्ए 11.क्ए 12.ठए 13. क्ए 14.ब्ए 15.ब्ए 16. । ए17.ठ ए 18.क ए 19.ब ।

24.10 संदर्भ ग्रंथ सूची–

(1) शम्भूलाल दोषी एवं मधुसूदन त्रिवेदी, उच्चतर समाजषासत्रीय सिद्धान्त (1997) रावत पब्लिकेषन्स, जयपुर एवं नई दिल्ली, *P- 40-150*

(2) एस. एल. दोषी एवं पी. सी. जैन, सामाजिक विचारक (1997), सामाजिक विचारक, रावत पब्लिकेषन्स, जयपुर एवं नई दिल्ली, *P- 100-350*

(3) डा. शीबा सिद्दीकी, आधुनिक एवं उत्तर आधुनिक समाजषास्त्रीय सिद्धान्त (2012) विवेक प्रकाषन, जवाहर नगर, दिल्ली, *P-* 24–30

(4) डा. एम. एम. लवानिया एवं शषी के. जैन, सैद्धान्तिक समाजषास्त्र (1998), रिसर्च पब्लिकेषन्स, जयपुर, P- 129-175

(5) एस. एस. पाण्डेय, टीएमएच, P- 16.1, 16.9

(6) डा0 अफरोज एकबाल, भारत में सामाजिक परिवर्तन दषा एवं दिषा, P 1- 55

9.11 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री–

(1) M. Francis Abraham, Modern Sociological Theory, Oxford University, Press Bombay, Calculta, Madras (1982) —P- 40-88

(2) Sujit Kumar Choudhary, Thinkers and Theories in Sociology — P 181-220

9.12 निबन्धात्मक प्रश्न–

(1) सामाजिक व्यवस्था के विश्लेषण के लिए पारसंस के योगदान की विवेचना कीजिए?

(2) पारसंस के सामाजिक व्यवस्था सिद्धांत की आलोचनात्मक वर्णन करें।

(3) पारसंस का संतुलन का विचार क्या हैं?

(4) पारसंस द्वारा स्थापित सामाजिक क्रिया के सिद्धान्त का वर्णन करें।

इकाई 10 – प्रकार्य एवं प्रकार्यात्मक पैराडाइम **(Funciotn And Functional Paradigm)**

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देष्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 राबर्ट के. मर्टन का परिचय

10.3 प्रकार्यवाद

10.4 प्रकार्य एवं अकार्य

10.4.1 नकार्य

10.4.2 प्रकट एवं अप्रकट

10.5 प्रकार्यात्मक पैराडाइम

10.6 पैराडाइम तैयार करने के उद्देष्य

10.7 आलोचनात्मक मूल्याकंन

10.8 सारांष

10.9 पारिभाि"ाक 'ाब्दावली

10.10 अभ्यास/बोध प्रष्नों के उत्तर

10.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

10.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

10.13 निबंधात्मक प्रष्न

10.**0 उद्देश्य**–

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप जान पायेगें कि

1. **प्रकार्यवाद क्या है ?**
2. **पकार्यवाद से सम्बन्धित विभिन्न विद्धानों के विचार क्या है ?**
3. **मर्टन द्वारा बनाये हुए प्रकार्यात्मक पैराडाइम का उपयोग क्या हैं?**

10.**1 प्रस्तावना**–

प्रकार्यवाद से तात्पर्य वैसे दृ"िटकोण से है कि जो मानता है, कि समाज की जो भी इकाई है या जो भी इकाई अस्तित्व में है उसका समाज के लिए कोई सकारात्मक योगदान होता है। प्रकार्यवाद के क्षेत्र में टॉलकट पारसन्स (Talcott Parsons) का बहुत ही महत्वपूर्ण योगदान रहा है। वे एक ऐसे समाजषास्त्री

थे जिन्होने स्पेन्सर एवं **दुर्खीम** के प्रकार्यवाद को **मैलिनोस्की** एवं रेडक्लिफ– ब्राउन के मानव 'ाास्त्र साहित्य से निकालते हुए इसे फिर से समाजषास्त्र में स्थापित किया। पारसन्स का विचार है कि समाज का सही अध्ययन संरचनात्मक–प्रकार्यात्मक (Structural- functional) दृ"टिकोण से ही सम्भव है। समाजिक व्यवस्था की यथार्थता को तब तक भली–भांती नहीं समझा जा सकता जबतक कि उनको गठित करने वाली इकाईयों के प्रकार्यों को अच्छी तरह समझ नहीं लिया जाये।

10.2 रॉबर्ट के. मर्टन का परिचयः–

बीसवीं 'ताब्दी के समाजषास्त्री रॉबर्ट के. मर्टन का जन्म 1910 में अमेरिका के फिलाडेलफिया में हुआ था। मर्टन ने सन् 1941 में कोलम्बिया विष्वविद्यालय से अपने अध्यापन की 'ाुरुआत की और बाद में वे हार्वर्ड विष्वविद्यालय से जुड़ गये जहाँ उन्हें **सोरोकिन** और पारसंस जैसे समाजविज्ञानों का षि"यत्व प्राप्त हुआ। यहां वे अपनी सेवानिवृत्ति (1971) तक अध्यापन और 'ाोध कार्य करते रहे। पारसंस की भांति, **मर्टन** भी उत्तर विष्व युद्वकालीन समाजषास्त्र को वैज्ञानिक आधार पर निर्मित करना चाहते थे। परन्तु **मर्टन** की सामान्य सिद्धांतों को आनुभविक परीक्षण की कसौटी पर कसने में विष्वास रखते हैं।

मर्टन ने समाजषास्त्र में कई भिन्न वि"ायों का आलोचनात्मक परीक्षण कर अपना योगदान दिया हैं। इनमें से उनके कुछ प्रमुख वि"ाय सामजिक संरचना, प्रकार्यवादी परिप्रेक्ष्य, विचलन ओर एनॉमी, भूमिका सिद्धांत, कर्मचारी तंत्र (C;wjksØslh), मध्यवर्ती सीमा सिद्धान्त और विज्ञान का समाजषास्त्र आदि रहे हैं, किन्तु 'विज्ञान का समाजषास्त्र' उनके 'ाोध–लेखन के प्रिय वि"ायों में से एक प्रमुख वि"ाय रहा है। इस वि"ाय में समाजषास्त्र में विज्ञान के प्रति नई सोच उत्पन्न की जिसने बाद में कई नये समाजषास्त्रीय उपागमों की नींव रखी। इस अध्ययन से मर्टन ने विज्ञान के विकास और दिषा के विष्ले"ाण के साथ–साथ उद्देष्यपूर्ण सामाजिक क्रिया के अप्रत्याषित परिणामों के विचार के आधार पर 'लेटेन्ट फंक्षन' की अवधारणा को विकसित किया। इसके बाद, सन् 1940 के दषक में उन्होंने असंगत और विपथगामी व्यवहार के सामाजिक स्रोत, नौकरषाही कार्य संचालन, नौकरषाही के अन्दर और बाहर बुद्धिजनों की भूमिका जैसे महत्वपूर्ण वि"ायों पर कार्य किया। साथ ही, **इमाईल दुर्खीम** द्वारा आत्महत्या के अध्ययन के संदर्भ में सर्वप्रथम प्रयोग की गई ''एनॉमी'' की अवधारणा को विस्तार दिया और भूमिका आदर्ष (रोल मॉडल) की अवधारणा के आधार पर उन्होंने 'संदर्भ समूह सिद्धान्त' को (Reference Group Theory)विकसित किया।

मर्टन ने तत्कालीन प्रचलित संरचनात्मक–प्रकार्यवाद में कई महत्वपूर्ण संषोधन एवं परिवर्द्धन किये हैं। उन्होंने सर्वप्रथम इस सिद्धान्त के अतिवादी एवं कमजोर पक्षों को उजागर किया और प्रकार्यात्मक विष्ले"ाण की तीन मूलभूत प्रस्थापनाओं, यथा–'समाज की प्रकार्यात्मकता एकता', 'सार्वभौमिक प्रकार्यवाद' और प्रकार्यात्मक तत्वों की अपरिहार्यता' की कटु आलोचना की । उन्होंने कहा कि प्रकार्यात्मक प्रस्थापनाएं अमूर्त और सैद्धान्तिक व्यवस्थाओं पर आधारित होने के कारण अनुभवसिद्ध नहीं है। संरचनात्मक–प्रकार्यात्मक विष्ले"ाण का अपना एक 'पैराडायम' (वैचारिक रुपांकन) प्रस्तुत किया जिससें उन्होने प्रमुख रुप से प्रकार्य और दु"प्रकार्य, व्यक्त (प्रत्यक्ष) और अव्यक्त (अन्तनिर्हित) प्रकार्य, बहु–प्रकार्य, अकार्य, प्रकार्यात्मक विकल्प अथवा संरचनात्मक समानार्थी अप्रत्याषित परिणाम बातों को सम्मिलित किया।

10.3 प्रकार्यावद– (Functionalism)

अमेरिकी समाजषास्त्री राबर्ट किंग्सले मर्टन ने समाज 'ाास्त्रीय जगत में प्रकार्यवादी विष्ले"ाण पर काफी बल दिया। अतः उन्हें प्रकार्यवाद के समर्थकों में से एक माना जाता है। मर्टन न केवल पारसन्स के समकालीन है बल्कि उनके षि"य भी रह चुके है। फलस्वरुप मर्टन पर पारसन्स का प्रभाव स्प"ट रुप से देखने को मिलता है। टॉलकर पारसन्स के अलावा मैक्स वेबर तथा डब्ल्यू0 आई0 थॉमस का प्रभाव भी मर्टन पर पड़ा है। मर्टन ने मैक्स वेबर के सामाजिक क्रिया के फ्रेम वर्क (Frame Work) को स्वीकार करते हुए उनके विष्ले"ाण की तकनीकी को भी स्वीकार किया है। इसी तरह मर्टन डब्ल्यू0 आई0 थॉमस के सामाजिक घटनाओं के विष्ले"ाण में सामाजिक क्रिया के सिद्वान्त तथा सामाजिक व्यवहारवाद (Social Behaviour) का काफी प्रभाव पड़ा है। लेकिन सामाजिक घटनाओं के विष्ले"ाण मर्टन का दृ"टकोण बिल्कुल अलग है। **मर्टन की अध्ययन पद्वति को पैराडाइम कहते हैं**, जिसके आधार पर उन्होंने प्रकार्यवाद के विष्ले"ाण को प्रस्तुत किया हैं।

प्रकार्यवादी विष्ले"ाण कोई नयी घटना नहीं है। बल्कि इस तरह के विचार हमें पूर्व के समाजषास्त्रियों एवं सामाजिक मानवषास्त्रियों की रचनाओं में देखने को मिलता है। लेकिन समाजषास्त्री जगत में इस विचारधारा को पुनः लाने और इसे स्थापित कर एवं आधार देने का श्रेय मर्टन को ही जाता है। मर्टन ने स्प"ट 'ाब्दों में कहा कि प्रकार्यवाद के सम्बन्ध में हमें लिखित सामग्री बहुतायत मिलती है। साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि प्रकार्यात्मक विष्ले"ाण (Functional analysis) **पद्धति सिद्वान्त एवं तथ्य** तीनों का आधार है ;डमजीवकए च्तपदबपचसमेए थ्बजेद्ध जिसमें सबसे कमजोर पक्ष पद्वति का ही हैं।
मर्टन ने प्रकार्य 'ाब्द को न केवल समाजषास्त्र में लाये बल्कि इसकी पुनः व्याख्या की और इसके अलावा अन्य अवधारणाओं **जैसे**– प्रकार्य तथा अनेक प्रकारों प्रकट (Manifest) एवं अप्रकट (Latent) आदि की चर्चा की।मर्टन से पहले दुर्खीम (Durkheim) रेड–क्लिफ ब्राउन, मैलिवोवस्की आदि विद्वान प्रकार्यवाद की चर्चा कर चुके थे **ब्राउन और मैलिनोवस्की ने प्रकार्यावाद की तीन मान्यताओं की चर्चा की थी।**

पहली– समाज का हर तत्व निष्चित रुप से बने रहने में योगदान देता है यदि ऐसा नहीं करें तो वह अस्तित्वहीन हो जायेगा।
दूसरी – सभी तत्वों के बीच प्रकार्यात्मक एकता पायी जाती हैं।
तीसरी – किसी भी तत्व को अलग नहीं किया जा सकता है, मर्टन ने इन तीनों ही मान्यताओं का खण्डन किया।

रेडक्लिफ ब्राडन एवं मैलिनोक्स्की द्वारा प्रतिपादित की पहली मान्यता का खण्डन करते हुए मर्टन ने लिखा कि मानवषास्त्रियों ने इस मान्यता के आधार पर समाज की जिस प्रकार्यात्मक एकता का उल्लेख किया उसकी वास्तविकता को परिश्रम के द्वारा ज्ञात करना जरुरी है। यह सच है कि प्रत्येक समाज में कुछ एकता अवष्य विद्यमान होती है। लेकिन विभिन्न समाजों में एकीकरण का यह स्तर अलग–अलग हो सकता है, इसका तात्पर्य यह है कि समाज में जो प्रचलन या व्यवहार प्रकार्यात्मक होते हैं, दूसरे समाज अथवा समूह में अकार्यात्मक भी हो सकते हैं, इस दृ"टकोण से यह आवष्यक है कि प्रकार्यात्मक विष्ले"ाण करते

समय विभिन्न इकाइयों के प्रकार्यो की विषे"ताओं को अवष्य समझा जाए। इसी की सहायता से यह समझा जा सकता है कि किसी विषे"ा समाज में सामाजिक एकीकरण उत्पन्न करने में विभिन्न इकाइयों के प्रकार्य जैसा और कितना योगदान करते हैं।

ब्राउन एवं मैलिनोवस्की की दूसरी मान्यता का खण्डन करते हुये मर्टन ने यह कहा कि यह आवष्यक नहीं है कि संस्कृति के स्थापित तत्व के रुप में प्रत्येक परम्परा समाज को बनाये रखने में अवष्य ही सहयोग हो। दूसरे 'ाब्दों में यह कहा जा सकता है कि पराम्पराएँ अनेक पीढियों तक समाज को स्थायित्व प्रदान करती हैं। वो कभी–कभी या किसी विषे"ा अवधि में या तो अनुपयोगी सिद्ध होने लगती है अथवा समाज में परिवर्तन की दषा उत्पन्न कर देती है। **उदाहरणार्थ**– भारत में जाति प्रथा के परम्परागत प्रकार्य वर्तमान समय में उसके अकार्य बन गए हैं तथा यह प्रथा सामाजिक व्यवस्था को स्थायित्व प्रदान करने की जगह उसमें परिवर्तन उत्पन्न करने लगी है।

इस प्रकार मर्टन यह स्वीकार नहीं करते कि किसी भी ईकाई के प्रकार्यों की प्रकृति सार्वभौमिक होती है। उनका कथन है कि संस्कृति या सामाजिक संरचना का कोई तत्व प्रकार्यात्मक भी हो सकता है। लेकिन यह मान लेना उचित नहीं है कि ऐसा प्रत्येक तत्व कोई न कोई प्रकार्य अवष्य करेगा।ब्राउन एवं मैलिनोवस्की की तीसरी मान्यता को भी अस्वीकार करते हुए मर्टन ने कहा है कि ऐसा नहीं है कि 'प्रत्येक प्रकार की सभ्यता, रीति–रिवाज, भौतिक तत्व विचार और विष्वास आदि कुछ सामाजिक प्रकार्यों को पूरा करते है, '' मर्टन का कथन है कि इस वाक्यांष से यह पता चलता है कि इसके द्वारा **मैलिनोवस्की के प्रकार्य की अपरिहार्यता** को स्प"ट करना चाहते हैं अथवा उनका तात्पर्य सांस्कृतिक तत्वों की अपरिहार्यता से है। वास्तविकता यह है कि प्रकार्य की अपरिहार्यता की मान्यता को दो परस्पर सम्बन्धित दषाओं के आधार पर ही समझा जा सकता है। पहला यह ही कुछ प्रकार्य इसलिए अपरिहार्य होते हैं कि यदि वे अपना कार्य न करें वो समाज अपने अस्तित्व को बनाकर नहीं रख सकता। इसका तात्पर्य यह है कि प्रत्येक समाज में कुछ प्रकार्य वे होते हैं जो समाज का निर्माण करने वाली पूर्व परिस्थितियों को उत्पन्न करते हैं, इन्हें मर्टन ने समाज की **'' प्रकार्यात्मक पूर्व आवश्यकताएँ ''** कहा और इन्हीं के आधार पर उन्होंने प्रकार्यात्मक पूर्व आवष्यकताओं की अवधारणाओं को प्रस्तुत किया। दूसरी दषा की चर्चा करते हुए मर्टन ने बतलाया कि प्रत्येक समाज के कुछ निष्चित सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्वरुप होते हैं। जो इन प्रकार्यो को पूरा करने में सहयोग देते हैं।

इस मान्यता को सरल रुप से प्रस्तुत करते हुए मर्टन ने कहा कि जिस प्रकार समान प्रकृति के तत्वों के एक–दूसरे से भिन्न प्रकृति वाले अनेक प्रकार्य होते है, उसी प्रकार एक ही तरह का प्रकार्य अनेक इकाइयों से भी सम्बन्धित हो सकता हैं। इसका तात्पर्य है कि मर्टन ने प्रकार्य की अपरिहार्यता को इसके संषोधित रुप में ''प्रकार्यात्मक विकल्प (Functional Alternative) के रुप में प्रस्तुत किया।

मर्टन का कहना है कि प्रकार्य 'ाब्द की व्याख्या के क्रम में अनेक विद्वान इसे अब तक अनेक रुप में व्यवहार कर चुके हैं, अतः एक 'ाब्द प्रकार्य के लिए विविध अवधारणाओं की एक समस्या खड़ी हो गयी है।

प्रकार्य 'ाब्द का प्रयोग उपयोगिता, उद्देष्य, परिणाम, लक्ष्य आदि के रुप में अब तक किये गए हैं, इनका यह भी कहना है कि प्रकार्य की अवधारणा वै"ायिक(Objective) एवं अवलोकनीय है।

10.4 प्रकार्य एवं अकार्य; (Function – Dysfunction)-

प्रकार्य की परिभा"ाा देते हुए उन्होंने लिखा है कि किसी भी ईकाई अथवा तत्व की यह गतिशीलता जो उस व्यवस्था को बने रहने में मदद दे या दूसरी व्यवस्थाओं के साथ अनुकूलन में मदद दे तो उसे प्रकार्य कहते हैं। मर्टन का कहना है कि हर ईकाई न तो हमेषा प्रकार्यात्मक होती है और न ही सार्वभौमिक। यहीं उन्होंने दुर्खीम, ब्राउन एवं मैलिनोवस्की के विचारों की आलोचना की है। इनका कहना है कि हर व्यवस्था में कुछ ऐसी इकाईयाँ होती है। जो व्यवस्था के सन्तुलन को कमजोर करती है। अतः ऐसी क्रियाषीलता प्रकार्य न कहलाकर **अकार्य** कहलाती है। इस तरह यही मर्टन ने अकार्य 'ाब्द की चर्चा की है। इनका यह भी कहना है कि एक ही तत्व की व्यवस्था के लिए एक ही समय में प्रकार्यात्मक हो सकता है और दूसरे के लिए अकार्यात्मक हो सकता हैं।

अतः फिर ब्राउन एवं मैलिनोवस्की के खिलाफ इनका कहना है कि हर तत्व का समाज में बना रहना आवष्यक नहीं है, जो तत्व अकार्यात्मक हो चुके हैं उन्हें हटाया जा सकता है। इस आधार पर उन्होंने तत्वों की अपृथकता की मान्यता को भी अस्वीकार कर दिया है।

स्प"टतः मर्टन के अनुसार समाज के हर तत्व के दोनों ही पक्ष होते हैं। किसी भी तत्व की वह क्रियाषीलता जो व्यवस्था को धनात्मक योगदान करती है वह प्रकार्य कहलाता है जो ऋणात्मक योगदान करती है। वह अकार्य कहलाता है।

उदाहरणार्थ– यदि धर्म किसी भी समाज में लोगों को एकता के सूत्र में बांधता है जिसके समाज का संगठन मजबूत होता है तो यह धर्म का प्रकार्य है। लेकिन यदि धर्म आपस में ई"र्या, द्वे"ा और वैमनस्य को फैलाता है। जिसके फलस्वरुप धार्मिक दंगे होते हैं, तो वह धर्म का अकार्य है।

इस तरह प्रकार्य और अकार्य को अनेकों उदाहरणों द्वारा समझा जा सकता है। **उदाहरणस्वरुप**– किसी भी संगठन द्वारा यदि अपने कर्मचारियों को काल वृद्व पदोन्नति देने की व्यवस्था है ओर यदि कर्मचारियों की कार्यकुषलता बढ़ती है। उनके बीच की आपसी प्रतिद्वन्दिता घटती है, तो यह इसका प्रकार्य है। यदि काल वृद्ध प्रोन्नति के परिणामस्वरुप कर्मचारियों में षिथिलता आती है और यह उनकी कार्य–कुषलता को घटाती है तो यह इसका अकार्य है।

10.4.1 नकार्य (Non-function)

प्रकार्य, अकार्य के अलावा मर्टन ने नकार्य (Non-function) का भी उल्लेख किया है, इनके अनुसार हर व्यवस्था में कुछ ऐसे तत्व होते हैं जो न तो व्यवस्था को तोड़ने की चे"ठा करते है और न ही इसके संगठन को मजबूत रखते हैं, ऐसे तत्वों को ही मर्टन ने **नकार्य** कहा हैं। **'जैसे**– पर्दा प्रथा' मध्य काल में चाहे पर्दा प्रथा के जो भी प्रकार्य रहे हो लेकिन आज के इस औघोगिक समाज में इसकी कोई प्रकार्यात्मक कहता नहीं है। फिर भी यह निम्न मध्यम वर्गीय कुछ मुस्लिम परिवारों में प्रचलन में है जिसका कोई अकार्यात्मक पक्ष भी नहीं है। इस तरह नकार्य भी हैं जिसका व्यवस्था पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

अकार्य की चर्चा को आगे बढ़ाते हुए मर्टन का कहना हैं कि जन समाज में इसकी मात्रा काफी बढ़ जाती है और सामाजिक नियंत्रण के अभिकरण इन्हें रोकने में असमर्थ हो जाते हैं तो समाज में परिवर्तन आवष्यम्भावी हो जाता है इस तरह मर्टन के अनुसार अकार्यात्मक विधि बढ़ने से ही व्यवस्था में परिवर्तन आता है।

10.4.2 प्रकट एवं अप्रकट (Manifest & Latent)

अपने विष्ले"ाण के क्रम में मर्टन ने प्रकार्य एवं अकार्य को पुनः दो भागों में बाँटा है– प्रकट एवं अप्रकट, मर्टन ने दोनों 'ाब्दों को फ्रायड के स्वप्न के सिद्वान्त से लिया है। इनके अनुसार प्रकट प्रकार्य उस प्रकार्य को कहते हैं जो समाज के सदस्यों द्वारा इच्छित एवं स्प"ट रुप से प्रमाणित होता हैं। दूसरी तरफ अप्रकट प्रकार्य उसे कहते हैं जो न इच्छित होता है और न ही स्प"ट रुप से प्रमाणित, इनके अनुसार अप्रकट संबोधन से समाजषास्त्रियों को एक नवीन दृ"ट प्रदान होती है, जिससे वह अनुसंधान कार्य में और प्रवीण हो जाता है, अतः मर्टन के अनुसार समाजषास्त्रियों का काम समाज के बाकी छिपे रहस्यों का पता लगाना है। प्रकट एवं अप्रकट को कई उदाहरणों से समझा जा सकता है। **मर्टन ने होपी जनजाति का उदाहरण दिया** है। इनका कहना है कि इस जनजाति के लोग व"ार्ा लाने के लिए एक साथ इकट्ठा होकर कुछ संसारिक अनु"ठान करते हैं, इस अनु"ठान से व"ार्ा तो नहीं होती पर होपी जनजाति के बिखरे सदस्य एक जगह जमा होकर सामूहिक रुप से कार्य करते है, उनकी एकजुटता मजबूत होती है, यह मामूली उपलब्धि नहीं है, यही इस अनु"ठान का अप्रकट प्रकार्य है।इसी तरह **निकटाभिमान नि"ोध** आज दुनिया के सभी समाजों में मान्य है। इसका प्रकट प्रकार्य यह है कि इससे परिवार में यौन संबंध के लिए ई"र्या एवं झगड़े नहीं होते। अतः परिवार संगठित रहता है पर इसका अप्रकट प्रकार्य यह है कि निकट रक्त संबंधियों के बीच यौन संबंध नि"ोध से बच्चे बदसूरत एवं अपंग नहीं होते।

थर्सटीन बेबलीन ने बताया कि कीमती चीजों को खरीदना विलासी वर्ग में काफी प्रचलित है। कीमती चीजों से खरीदने का प्रकट प्रकार्य यह है कि यह हमारी जरुरतों की पूर्ति करना है पर इसका अप्रकट प्रकार्य यह है कि यह खरीदने वाले की उच्च आर्थिक हैसियत का सूचक बन जाता हैं।
इसी तरह अकार्य के भी प्रकट एवं अप्रकट स्वरुप को समझा जा सकता है **जैसे**– किसी कारखाने में कर्मचारियों ने हड़ताल कर दी तो इसका प्रकट अकार्य यह है कि इससे उत्पादन ठप पड़ जाता है, पर यदि हड़तालियों ने आमरण अनषन कर दिया और उसमें से कोई एक कर्मचारी मर गया तथा कर्मचारियों ने कारखाने में तोड़–फोड़ कर दी तो यह अप्रकट अकार्य हैं।क्योंकि इसकी आषा किसी ने नहीं की थी।
उपर्युक्त विष्ले"ाण से यह स्प"ट है कि मर्टन ने प्रकार्यात्मक विष्ले"ाण की एक विस्तृत रुप–रेखा प्रस्तुत की है। लेकिन द्वितीय विष्वयुद्ध के बाद से मर्टन सहित प्रकार्यवाद की भी तीखी आलोचना की गयी है। और यह सिद्धान्त लोकप्रियता की दृ"ट से कमजोर साबित हुआ हैं।
इसका प्रमुख कारण यह है कि इन व"ार्ो में समाजषास्त्र के क्षेत्र में अनेक उपयोगी पद्वतियों का विकास हुआ है। **जैसे**– विनिमय का सिद्धान्त, लोकविधि विज्ञान आदि। इसके अतिरिक्त प्रकार्यवादी विष्ले"ाण अनेक ऐसी मान्यताओं को लेकर चलता है जिसकी व्यवस्था की जाँच आवष्यक हैं, क्योंकि उन्हें किसी भी रुप में स्वयं सिद्ध नहीं माना जा सकता।

10.5 प्रकार्यात्मक पैराडाइम (Functional Paradigm)

मर्टन ने प्रकार्यात्मक सिद्वान्त का ऐतिहासिक विष्ले"ाण प्रस्तुत किया है, इस में इन्होंने अगस्त कॉम्ट, दुर्खीम, ब्राउन एवं मैलिनोवस्की आदि सभी विद्वानों से कुछ न कूछ आधार लेकर प्रकार्यात्मक विष्ले"ाण के लिए एक '' पैराडाइयम '' यानि मॉडल तैयार किया है, मर्टन का कहना है कि हम दुनिया के किसी भी समाज का

अध्ययन करना चाहे और यदि हमारे अध्ययन का सन्दर्भ प्रकार्यवादी है तो पैराडायम का प्रयोग किया जा सकता है, दरअसल 'पैराडयम' एक विधि है जिसकी सहायता से किसी भी समाज का सांगोपांग अध्ययन किया जा सकता हैं।

- मर्टन का कथन है कि प्रकार्यात्मक विष्ले"ाण की आवष्यकता पर अनेक समाज वैज्ञानिकों ने जोर दिया है लेकिन इन सभी की विवेचना में कोई न कोई कमी अवष्य देखने को मिलती है। इस दषा में प्रकार्यात्मक विषले"ाण को तभी व्यवस्थित बनाया जा सकता है जब इसके एक सुनिष्चित प्रारुप निर्माण कर लिया जाए। प्रकार्यात्मक विष्ले"ाण का एक निष्चित प्रारुप होना चाहिए इसलिए भी आवष्यक है जिससे एक निष्चित मानदण्ड के आधार पर सामाजिक तथ्यों का अध्ययन वैज्ञानिक ढंग से किया जा सके। इस दृ"टकोण से मर्टन ने प्रकार्यात्मक विष्ले"ाण का एक प्रारुप प्रस्तुत किया जिससे कुछ निष्चित अवधारणाओं के सन्दर्भ में प्रकार्यात्मक विष्ले"ाण सम्बन्धी कठिनाइयों को दूर किया जा सके। मर्टन द्वारा प्रस्तुत इस प्रारुप में जिन अवधारणाओं तथा विषे"ताओं का समावेष है, उन्हें निम्नाकित रुप से समझा जा सकता हैः
- **वि"ाय**– सामाजिक तथ्यों का क्षेत्र बहुत व्यापक है। प्रकार्यात्मक विष्ले"ाण के लिए हम जिन

  तथ्यों का अध्धयन के लिए उपयोग करते हैं मर्टन के अनुसार उन्हें वि"ाय कहा जाना चाहिए। इस प्रकार प्रकार्यात्मक विष्ले"ाण के लिए जो वि"ाय अधिक महत्वपूर्ण हो सकते है। उन्हें मर्टन ने सामाजिक भूमिका संस्थागत प्रतिमान सामाजिक प्रक्रिया, सांस्कृतिक प्रतिमान, संवेग, व्यवहार के सामाजिक मानदण्ड समूह संगठन, सामाजिक संरचना तथा सामाजिक नियन्त्रण कहाा। मर्टन का विचार हैं कि किसी भी प्रकार्यात्मक विष्ले"ाण के लिए इन सभी वि"ायों से सम्बन्धित तथ्यों का अध्ययन करना आवष्यक हैं।
- **वि"ायगत प्रेरणाएँ**– कुछ दषाओं में प्रकार्यात्मक विष्ले"ाण के लिए व्यक्ति की प्रेरणाओं का अध्ययन किया जाता हैं इसके लिए यह आवष्यक हैं कि पहले ही यह जान लिया जाय कि किस तरह की प्रेरणाओं के अध्ययन के लिए हमें किस तरह के तथ्यों अथवा आकड़ों को एकत्रित करना जरुरी है। इसके साथ ही यह जानना भी आवष्यक है कि उन तथ्यों की प्रकृति दूसरे तथ्यों से किस तरह भिन्न हैं और उनका उपयोग किस प्रकार किया जा सकता है। इसका तात्पर्य है कि जो तथ्य एक विषे"ा प्रेरणा और उद्देष्य के रुप में समाज में एक विषे"ा भूमिका निभाते हैं। प्रकार्यात्मक विष्ले"ाण के लिए उनका चयन कर लेना जरुरी हैं।
- **उद्देश्यगत परिणाम**– मर्टन का कथन है कि किसी विषे"ा के प्रकार्यात्मक विष्ले"ाण में हमें मुख्यतः दो समस्याओं का सामना करना पड़ता है। पहली यह की सामाजिक तथ्यों के योगदान को उस सामाजिक और सांस्कृतिक व्यवस्था के अन्तर्गत किस तरह ज्ञात किया जाय। जिसमें उस तथ्य के प्रकार्य निहित है। तथा दूसरा यह कि किसी तथ्यों को वि"ायगत प्रेरणा को उसके उद्देष्य पूर्ण परिणामों से पृथक करके किस तरह समझा जाय। पहली दषा को स्प"ट करते हुए मर्टन ने कहा कि सामाजिक प्रक्रियाओं के परिणाम गुणात्मक होते हैं। इन परिणामों का जब सम्पूर्ण रुप हमारे सामने आता हैं तभी यह समझा जा सकता है कि किसी प्रक्रिया के परिणाम प्रकार्य के रुप में सामने आये हैं। अतः अकार्य के रुप में। इसी के सन्दर्भ में मर्टन ने प्रकार्य की अवधारणा को अकार्य की अवधारणा से पृथक करके स्प"ट किया। आपके अनुसार ''प्रकार्य वे देखे जा सकने वाले परिणाम हैं जो सामाजिक व्यवस्था में अनुकूलन अथवा सामंजस्य को सम्भव बनाते हैं। '' दूसरी ओर

''अकार्य वे स्प"ट परिणाम हैं जो सामाजिक व्यवस्था में अनुकूलन अथवा सामंजस्य को कम करते हैं।'' दूसरी समस्या को स्प"ट करते हुए मर्टन ने बतलाया कि किसी प्रक्रिया के प्रकार्य भी प्रत्येक दषा में समान नहीं होते । यह प्रत्यक्ष भी हो सकते हैं और निहित भी। मर्टन के 'ाब्दों में ''प्रत्यक्ष अथवा घोि"ात प्रकार्य वे वै"ायिक परिणाम हैं जो सामाजिक व्यवस्था में अनूकूलन का गुण उत्पन्न करते हैं। तथा जो इस व्यवस्था में भाग लेने वाले व्यक्तियों द्वारा इच्छित और मान्य होते हैं।'' इसके विपरीत, ''निहित प्रकार्य वे हैं जो न तो इच्छित होते हैं और ना ही सामान्य लोगों के द्वारा उन्हें पहचाना जाता हैं।'' इस तरह मर्टन ने प्रकार्य, अकार्य, प्रत्यक्ष प्रकार्य तथा निहित प्रकार्य की अवधारणा को प्रस्तुत करके प्रकार्यात्मक विष्ले"ाण में आने वाली समस्याओं का निदान प्रस्तुत किया। उन्होंने बतलाया कि किसी भी प्रकार्यात्मक विष्ले"ाण के अन्तर्गत यह जानना आवष्यक है कि जिन वि"ायों अथवा प्रक्रियाओं का हम अध्ययन कर रहे हैं उनके कौन से परिणाम प्रकार्य हैं और कौन से परिणाम अकार्य के रुप में स्प"ट हैं। इसी तरह यह जानना भी आवष्यक है कि जब कोई प्रक्रिया प्रत्यक्ष प्रकार्य की जगह निहित प्रकार्य को स्प"ट करने लगती है, तब सामाजिक व्यवस्था पर उसका क्या प्रभाव पड़ता है।

- **प्रकार्य से सम्बन्धित इकाई**– मर्टन का कथन है कि जिस 'वि"ाय' का हम प्रकार्य के आधार पर विष्ले"ाण करते हैं, वह वि"ाय या इकाई यदि किसी व्यक्ति अथवा उपसमूह के लिए कोई प्रकार्य करती हैं तो यह भी सम्भव हैं कि वह किसी दूसरे व्यक्ति या समूह के लिए अकार्य करे। उदाहरण के लिए यदि सरकार द्वारा निजी क्षेत्र को दिया जाने वाला समर्थन कुछ पूजीपतियों के लिये प्रकार्यात्मक हो सकता है। वो वही समर्थन निर्धन समूहों के लिए अकार्यात्मक हो सकता है। इसके साथ ही अध्ययनकर्ता को यह ध्यान रखना भी आवष्यक हैं कि किसी इकाई के जो प्रकार्य उसके सामने आते है। वे किस प्रकार के हैं। मर्टन के अनुसार यह प्रकार्य मनोवैज्ञानिक प्रकार्य समूह प्रकार्य सामाजिक प्रकार्य तथा सांस्कृतिक प्रकार्य के रुप में व्यक्त हो सकते हैं। दूसरे 'ाब्दों में यह कह जा सकता हैं कि किसी भी वि"ाय के उन प्रभावों का अध्ययन अवष्य किया जाना चाहिए। जो व्यक्ति की सामाजिक स्थिति, उप समूह, वृहत सामाजिक व्यवस्था और सांस्कृतिक व्यवस्था पर स्प"ट होता है।

मर्टन के पैराडयम में कुल 11 मद ;पजमउद्ध हैं, इन मदों को अध्ययन में लागू कर समाज की प्रकार्यात्मक स्थिति का विष्ले"ाण किया जा सकता है, इन मदों की चर्चा निम्न प्रकार से की जा सकती है।

1. **<u>वे मद जिनके प्रकार्यों की पहचान करनी है:</u>**

यहाँ मर्टन का कहना है कि एक अनुसंधानकर्ता के लिए सबसे पहली आवष्यकता यह है कि वह उन आदर्ष, सामाजिक, सांस्कृतिक मदों को पहचाने जिनका कि वह प्रकार्यात्मक अध्ययन करना चाहता है, जब यह निष्चित हो जाता है तो मर्टन का पैराडायम आगे बढ़ता हैं।

2. **<u>अध्ययन से संबंधित उद्देश्य एवं प्रेरणाएँ :</u>**

जब किसी एक मद को अनुसंधानकर्ता अपने गहन अध्ययन के लिए तैयार कर लेता है तो उसके अध्ययन का कारण किस तरह मद से संबंधित मनोवृत्तियों से जुड़ा हुआ है, उदाहरणार्थ, यदि कोई अनुसंधानकर्ता राजनीति एवं अपराध के गठबंधन को अपने अध्ययन का वि"ाय बनाता है तो इस तरह के अध्ययन मे यह स्वाभाविक प्रष्न उठता है कि इस तरह के अध्ययन के क्या कारण है? दरअसल लक्ष्य के प्रति ये चेतना प्रकार्यात्मक विष्ले"ाण में सहायक होती हैं।

3. **मद के प्रकार्य किस भांति व्यवस्था को बनाये रखते हैं**

सामान्यतः अनुसंधानकर्ता की प्रवृति यह होती हैं कि वह किसी भी मद के प्रकार्य को देखता है, फलस्वरुप अकार्य उपेक्षित रह जाते हैं, अतः मर्टन का कहना है कि किसी मद के प्रकार्य को देखते हुए हमें प्रकार्य के विभिन्न प्रकारों के सम्बन्ध में विष्ले"ाण करना चाहिए, इनका कहना है कि प्रकार्य के बहुल परिणाम होते हैः–

उदाहरणस्वरुपः– तलाक का एक प्रकार्य पति–पत्नी के विवाद को समाप्त करना है तो दूसरा प्रकार्य दिन–रात के झगड़ों एवं मनमुटावों से दोनों के चैन दिलाता है। स्प"टतः मर्टन का कहना है कि एक अनुसंधानकर्ता को प्रकार्य के बहुत प्रकार्य, अकार्य तथा प्रकट एवं अप्रकट प्रकार्यों को भी विष्ले"ाण के समय ध्यान में रखना चाहिए।

4. **इन इकाइयों की पहचान जिनके लिए मद प्रकार्यात्मक हैः**

मर्टन का कहना है कि यह मानकर चलाना भ्रमपूर्ण होगा कि किसी भी मद के लिए सभी गतिविधियों प्रकार्यात्मक होगी। मर्टन का कहना है कि समाज व्यवस्था में कई ऐसी इकाईयाँ होती है जो एक ईकाई के लिए प्रकार्यात्मक होती है तो दूसरे के लिए नकारात्मक या अकार्यात्मक बन जाती है **उदाहरणस्वरुप** परिवार में पत्नी यदि नौकरी करके परिवार की आय में वृद्वि करती है तो इसका सकारात्मक पक्ष यह हैं कि परिवार का जीवन स्तर ऊँचा उठ जाता है लेकिन इसका अकार्यात्मक पक्ष यह है कि संतान माँ के द्वारा पर्याप्त पालन पो"ाण से वंचित रह जाते है। अतः मर्टन का कहना है कि प्रकार्यात्मक विष्ले"ाण में इन इकाइयों की श्रृखंला का लगाना चाहिए जिनके लिए सकारात्मक प्रकार्य हुए है।

5. **उन प्रकार्यों की खोज जो व्यवस्था की आवश्यकताओं एवं पूर्व आवश्यकता को पूरा करते हैः**– यहाँ मर्टन का कथन है कि किसी भी व्यवस्था में कुछ बुनियादी आवष्यकताएँ होती है। व्यवस्था की इकाइयों का प्रकार्य इन आवष्यकताओं को पूरा करना होता है। अतः प्रकार्यवादी विष्ले"ाण में यह देखना चाहिए किन मदों के प्रकार्य ऐसे है जो सार्वभौमिक और किन मदों के प्रकार्य ऐसे है जो विषि"ट प्रकार्यो को सम्पन्न करते हैं।

6. **वह क्रिया विधि; डमबींदपेउद्ध जिसके द्वारा प्रकार्य सम्पन्न किये जाते हैः**–

मर्टन के अनुसार '' किसी भी व्यवस्था की आवष्यकताएँ ही व्यवस्था को जीवित रखती है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि इन आवष्यकताओं की पूर्ति किसी न किसी क्रिया विधि द्वारा की जाती हैं **उदाहरणार्थ**– विवाह एक व्यवस्था है इसकी आवष्यकता यौन इच्छा की पूर्ति प्रजनन और प्राप्ति के लिए पड़ती है।

7. **प्रकार्यात्मक विवरणों की अवधारणाः**– मर्टन का साफ 'ाब्दों में कहना है कि किसी भी आवष्यकता की कोई भी इकाई पूरी तरह से अपरिहार्य नहीं है बल्कि प्रकार्यों को करने वाले कई अन्य वैकल्पिक मद होते है। यदि कोई भी मद समाज के लिए हानि कारक हो तो उसकी जगह दूसरा मद लाया जा सकता है इस तरह मर्टन का कहना है कि विकल्पों की तलाष की जानी चाहिए।

8. **प्रक्रिया के लिए संरचात्मक दबावः**– अपने पेराडाइम में मर्टन का यह कहना है कि व्यवस्था में प्रकार्यात्मक विकल्पों के होते हुए भी कुछ संरचात्मक दबाव व्यक्ति पर इस तरह के होते है कि उसे एक निष्चित प्रकार्य या मद को ही अपनाना पड़ता है **उदाहरणस्वरुप**– यह ठीक है कि जैविकीय आवष्यकता के लिए दाल–रोटी का भोजन एक निष्चित प्रकार्य को पूरा करता है इसके

विकल्प के रुप में चावल, मछली, या माँसाहारी भोजन उपलब्ध है। फिर भी व्यक्ति या उसके जातीय समूह पर 'ाकाहारी भोजन का ऐसा दबाव होता है माँसाहारी भोजन के प्रकार्यात्मक विकल्प को अपना नही पाता। अतः मर्टन का कहना है कि प्रकार्यात्मक विष्ले"ाण में अनुसंधानकर्ता को ऐसे संरचनात्मक एवं संस्थात्मक दबावों का पता लगाना चाहिए कि उन्हें मानने के लिए भी व्यवस्था बाध्य होती है।

9. **गतिशीलता और परिवर्तनः–** मर्टन का कहना है कि प्रकार्यात्मक सिद्वान्त पर यह आरोप गलत है कि इसमें दुहराव व गतिषीलता है वास्तव में गतिहीनता का आरोप मानवषास्त्रियों ने लगाया था जिन्होनें अपना 'ोध कार्य अफ्रीका का एवं भारत की जन–जातियों पर किया था। दरअसल मर्टन का कहना है कि ज्यों–त्यों सामाजिक व्यवस्था की आवष्यकता में बदलाव आता है त्यों–त्यों प्रकार्यों में बहुत बदलाव आता है, अतः प्रकार्यवादी सिद्वान्त गतिषीलता और परिवर्तन के विष्ले"ाण में समर्थ है।

10. **प्रकार्यात्मक मान्यताओं और आवश्यकताओं की पूर्ति का युक्तियुक्त प्रमाणीकरणः–** मर्टन ने अपने पैराडयम में इस तथ्य को बार–बार दोहराया है कि किसी भी मद के प्रकार्य ऐसे होने चाहिए जा इस बात को प्रमाणित करें कि व्यवस्था की आवष्यकताओं की पूर्ति उनके प्रकार्यों के सम्पादन द्वारा होती है अतः तार्किक रुप से यह ऐसा जाना चाहिए कि किस सीमा तक विभिन्न मदों के प्रकार्य व्यवस्था की आवष्यकताओं को पूरा करते है।

11. प्रकार्यात्मक विश्ले"ाण से जुड़ी हुई वैचारिक समस्याएँः–

मर्टन ने साफ 'ाब्दों में कहा हैं कि प्रकार्यात्मक विष्ले"ाण में कोई आर्थिक या राजनैतिक विचारधारा अर्न्तनिहित नहीं है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि प्रकार्यात्मक सिद्वान्त इन तत्वों से एकदम रहित है। हकीकत यह है कि प्रकार्यात्मक समाजषास्त्री जिस तरह के मूल्यों से प्रेरित होता हैं। उन्हीं के आधार पर अपना विष्ले"ाण प्रस्तुत करता है।

10.6 पैराडाइयम तैयार करने के उद्देश्य

मर्टन ने एक लम्बे प्रयोग के बाद निम्नलिखित तीन उद्देष्यों को ध्यान में रखकर पैराडायम तैयार किया जो निम्न प्रकार से हैं।

1. पैराडाइम बनाने का **पहला उद्देश्य** यह था कि इस तरह का वर्गीकृत माँडल प्रकार्यात्मक विष्ले"ाण के लिए बहुत उपयोगी होगा। क्योंकि इस माँडल में विभिन्न अवधारणाओं की भरभार नहीं है।
2. पैराडाइम बनाने का **दूसरा उद्देश्य** यह था कि प्रकार्यात्मक विष्ले"ाण के अन्तर्गत आने वाली सभी मान्यताओं को समाहित किया जा सकें।
3. पैराडाइम बनाने का **तीसरा उद्देश्य** यह था कि पैराडाइम ने केवल सीमित अर्थों में वैज्ञानिक होगा बल्कि इस बात की भी पूरी गुजाइष रखी है कि इसे प्रकार्यात्मक समाजषास्त्री किसी विचारधारा के लिए भी काम में ला सकते है।

ऊपर की समस्त चर्चाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि मर्टन का पैराडाइम अध्ययन की एक विधि है। ज्यों–ज्यों प्रकार्यात्मक समाजषास्त्री इस पैराडाइम को काम में लायेंगे, त्यों–त्यों अपने आप इसमें निखार आता जायेगा।

10.7 आलोचनात्मक मूल्याकंन–

पी0 एच0 कोहन ने प्रकार्यवाद से सम्बन्धित समस्त आलोचनाओं को

तीन भागों में बाँटा है।

1. **तार्किक**
2. **मौलिक**
3. **वैचारिक**

- तार्किक आलोचनाओं में कोहने के अनुसार प्रकार्यवाद उद्देष्यपरक व्याख्या को बढ़ावा देता है। यह ऐसी उपकल्पनाओं का सुझाव देता है जो जाँच के योग्य नहीं है साथ ही, यह ऐसे वैज्ञानिक स्तर की जाँच करता है जो समाजषास्त्र में विद्यमान नहीं है।
- मौलिक आलोचनाओं में कोहन का कहना है कि प्रकार्यवाद सामाजिक जीवन मे आदर्षात्मक तत्वों पर आवष्यकता से अधिक बल देता है।
  इसका परिणाम यह होता है कि सामाजिक स्थायित्व की कीमत पर सामाजिक संघ"र्ा के महत्व को कम कर देता है।प्रकार्यवाद में सामाजिक व्यवस्था के सामंजस्यपूर्ण प्रकृति पर इतना जोर दिया गया है कि यह सामाजिक परिवर्तन के महत्व को समझने में असफल रहता है।
- वैचारिकीय आलोचनाओं में कोहेन के अनुसार प्रकार्यवाद रुढिवादी पूर्वाग्रहों को बढ़ावा देता है। इसके पीछे तर्क यह है कि प्रकार्यवाद सामाजिक व्यवस्था के विभिन्न भागों के बीच सामंजस्यपूर्ण सम्बन्धों पर बल देकर यह सिद्ध करने की कोषिष करता है कि सभी व्यवस्थाएँ विष्व की सबसे अच्छी सम्भावित विषे"ताओं में से है।
- **गोल्डनर** ने कहा है कि **मर्टन** द्वारा प्रकार्यवाद पर रुढ़िवादी एवं क्रान्तिकारी होने के आरोप का खण्डन कमजोर नींव पर आधारित है।
- आलोचक कहते है कि मर्टन के प्रकार्यवादी विष्ले"ाण के पैराडाइम में तुलना एवं सामान्यीकरण की भूमिका का अभाव देखा जाता है।
- यद्यपि **मर्टन** ने अपने पूर्व के प्रकार्यवाद में संषोधन का प्रयास किया है फिर भी **डेहरेन्डार्फ** कहते हैं कि प्रकार्यवाद के सभी स्वरुप (मर्टन का भी) यूटोपिया मात्र हैं क्योंकि जब इस अवधारणा को किसी भी समाज पर लागू करने का प्रयास किया जाता है तो यह सामाजिक यथार्थता को कम और सामाजिक यथार्थता से संबधित पूर्वनिर्धारित पक्षों का अधिक दर्षाता हैं।
- **कोहेन** के अनुसार मर्टन ने अपने सिद्धांत में जिन प्राक्कल्पनाओं में रखा हैं उन्हें प्रमाणित करना आसान नहीं हैं। यह सत्य है कि प्राक्कल्पनाओं की जांच के पर्याप्त आधुनिक प्रमाण तो है क्योंकि मर्टन अपने निगमन के नियम को पूर्णतः स्प"ट नहीं कर पाये हैं।
- अन्य प्रकार्यवादियों की तरह मर्टन का प्रकार्यवाद भी उद्देष्यपरकता से ग्रसित है क्योंकि मर्टन ने भी किसी इकाई के प्रभाव को ही कारण के रुप में स्वीकार किया है।
- **होमन्स, टर्नर** आदि आलोचकों का कहना है की मर्टन के प्रकार्यवाद को सिद्धांत के रुप में नहीं स्वीकार किया जा सकता है। क्योंकि प्रत्येक सिद्धांत में एक कथन होता है जिसके आधार पर नि"क"र्ा को स्थापित किया जाता है परन्तु मर्टन के प्रकार्यवाद में ऐसा कुछ भी

विद्यमान नहीं है। यह केवल एक मॉडल या अध्ययन की एक विधि या अध्ययन का एक तर्क मात्र है।

- आलोचकों का कहना है कि **पारसंस** की तरह मर्टन ने भी सामाजिक व्यवस्था में असहमति व संघ"ार्ा के पहलू को समुचित महत्व नहीं दिया है। साथ ही, सामाजिक संस्थाओं की संरचना और प्रकार्यों के विष्ले"ाण में सत्ता व प्रभुत्व की भूमिका की उपेक्षा की है।

निष्चित ही उपरोक्त आलोचनाएं मर्टन के विचारों में निहित कुछ कमियों को उजागर करती है परंतु केवल इन कमियों के आधार पर मर्टन के प्रकार्यवाद को खारिज नहीं किया जा सकता है। मर्टन ने समाजषास्त्रीय विष्ले"ाण मुख्यतः प्रकार्यात्मक विष्ले"ाण की पद्धति को एक नये परिप्रेक्ष्य में रखने की कोषिष की है (11 सूत्री पैराडाइम को प्रस्तावित करके) और मर्टन ने समाप्त होते हुए प्रकार्यवाद के प्रभाव को समाजषास्त्रीय परम्परा में सुदृढ़ता से स्थापित किया है। उसका यह योगदान भी महत्वपूर्ण है यदि किसी इकाई का चयन अध्ययन हेतु किया जाए तो इससे सम्बन्धित विभिन्न आयामों व इसके परिणामों या प्रभावों (प्रकार्य, दु"प्रकार्य, अकार्य, प्रकट व अप्रकट प्रकार्य के रुप में) को सूक्ष्मता को समझने की आवष्यकता हैं।

मर्टन के उपरोक्त विचारों ने बाद के कई विचारकों, नवप्रकार्यवादियों तथा नवसंघ"ार्ावादियों (लुहमान, हेबरमास) को प्रभावित किया है और **हेबरमास** ने तो मर्टन के उपरोक्त सिद्धांतो के आधार पर ही 'ाक्ति संरचना के अन्तर्गत समाज में 'ाक्ति के प्रकार्यों को तथा दिये हुए अर्थों को जानने का प्रयास किया है।

मर्टन की आलोचना करते हुए कहा गया है कि वे यह निष्चय नहीं कर पाये है कि उनके सिद्धान्त में अध्ययन पद्धति की क्या भूमिका होगी साथ ही मर्टन के प्रकार्य और अकार्य की अवधारणाएँ काफी अस्प"ट हैं, क्योंकि इनके अनुसार कोई भी परिणाम किसी के लिए प्रकार्यात्मक हो सकते हैं वो दूसरे के लिए अकार्यात्मक। ऐसी स्थिति में प्रकार्य एवं अकार्य के बीच स्प"ट विभाजक रेखा नहीं खीची जा सकती है। मर्टन का कहना है कि समाज में अकार्य की मात्रा बढ़ती है तो परिवर्तन होता है। लेकिन आलोचकों को कहना है कि अकार्य की मात्रा बढ़ने से समाज में परिवर्तन नहीं होगा बल्कि समाज विघटन होगा।

ऊपर की समस्त चर्चाओं के आधार पर नि"क"र्षतः यह कहा जा सकता है कि मर्टन का योगदान यह है कि इन्होंने प्रकार्यवाद को न केवल मानवषास्त्र से समाजषास्त्र के क्षेत्र में लाये बल्कि, उसे जीवन्तता भी प्रदान की। यद्यपि मर्टन की आलोचनाएँ की गयी है तथापि यह सत्य है कि 20वीं सदी के पूर्वार्द्ध में प्रकार्यवादी समाजषास्त्रीय जगत में एक सबल विचारधारा रही हैं।

10.8 सारांश–

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप यह जान चुके हैं कि प्रकार्य के बारे में मर्टन से पूर्व वैज्ञानिकों के विचार क्या है? साथ ही मर्टन ने प्रकार्य से सम्बन्धित विभिन्न अवधारणाओं– अकार्य, नकार्य, प्रकट, अप्रकट आदि को स्पष्ट रुप से परिभाषित किया हैं। उन्होंने प्रकार्यात्मक पैराडाइम प्रस्तुत कर अध्ययनकर्त्ता के लिए प्रकार्यात्मक अध्ययन को सरल कर दिया हैं।

10.9 पारिभा"िाक 'ाब्दावली–

प्रकट(Manifest)– वो सभी प्रकार्य एवं अकार्य प्रकट की श्रेणी में आते हैं। जिसके परिणाम इच्छित, स्पष्ट एवं प्रत्यक्ष होते हैं।

अप्रकट(Latent)- वे सभी प्रकार्य एवं अकार्य अप्रकट की श्रेणी में आते हैं। जिसके परिणाम अस्प"ट, अनइच्छित एवं अप्रत्यक्ष होते हैं।

नकार्य (Non-Function)- यदि कोई इकाई ना तो समाज के लिए प्रकार्यात्मक या अकार्यात्मक होती हैं बल्कि इसका समाज पर कोई प्रभाव नही पड़ता।

10.10 अभ्यास/बोध प्रश्नों के उत्तर

1 **प्रकार्यवाद का सर्वप्रथम उल्लेख किस विद्वान की रचना में मिलता हैः**

हरबर्ट स्पेन्सर
इ इमाइल दुर्खीम
ब रेडक्लिफ ब्राउन
क बी. मैलिनोवस्की

2 प्रकार्यवाद के क्षेत्र में प्रकार्य–अकार्य, प्रकट तथा अप्रकट प्रकार्य नामक अवधारणाओं को प्रतिपादित करने का श्रेय किस विद्वान को हैः

a. पारसन्स
b. जार्ज होमन्स
c. मर्टन
d. इमाईल दुर्खीम।

3 वर्तमान समय के समाजशास्त्र में हमें किस प्रकार का प्रकार्यवाद देखने को मिलता हैंः

a. यान्त्रिक प्रकार्यवाद
b. संरचनात्मक प्रकार्यवाद
c. सामाजिक गतिषीलता
d. सामाजिक संगठन।

4 सामाजिक थ्योरी एण्ड सोशियल स्ट्रक्चर ;वबपंस जेमवतल ।दक ैवबपंस ैजतनबजनतमद्ध नामक पुस्तक के लेखक कौन हैः

a. पी. वी. यंग
b. रेडक्लिफ ब्राउन
c. पारसन्स
d. राबर्ट के. मर्टन।

5 व्यक्त प्रकार्य से तात्पर्य हैं

a. इच्छित एवं अनभिज्ञात परिणाम
b. इच्छित एवं अभिज्ञात परिणाम
c. अतिच्छित एवं अभिज्ञात परिणाम
d. अनिच्छित एवं अनभिज्ञात परिणाम

6 सूची.ए को सूची.बी के साथ सुमेलित कीजिये और सूचियों के नीचे दिये गये कूट की सहायता से सही उत्तर का चयन कीजिएः

सूची.ए	सूची.बी
a. अगस्त कॉम्ट	1. भौतिकवाद
b. कार्लमार्क्स	2. विकासवाद
c. हरबर्ट स्पेंसर	3. प्रत्यक्षवाद
d. रडक्लिफ ब्राउन	4. प्रकार्यवाद
	5. अस्तित्ववाद

कूटः

.ण		।	ठ	ढ	क
	3	1	2	4
इण	।	ठ	ढ	क
	4	2	1	5
बण	।	ठ	ढ	क
	3	2	1	4
कण	।	ठ	ढ	क
	2	1	5	4

7 सूची.ए को सूची.बी के साथ सुमेलित कीजिये तथा सूचियों के नीचे दिए कूट का प्रयोग कर सही उत्तर चयन चुनिए :

सूची.ए	सूची.बी
प्रत्यक्ष प्रकार्य	1ण पारसन्स
इ प्रतिमान हीनता	2. वेबर
ब सामाजिक व्यवस्था	3. काम्ट
कवर्स्टहेन	4. मर्टन
	5. दुर्खीम

कूटः

	।	ठ	ढ	क
.ण	4	5	3	1
इण	2	4	3	1
बण	4	5	1	2
कण	1	4	5	2

8. निम्नलिखित पर विचार करें–

1. प्रकार्यात्मक एकता
2. प्रकार्यात्मक अपरिहार्यता
3. प्रकार्यात्मक सार्वभौमिकता
4. प्रकार्यात्मक अंतरनिर्भरता

मर्टन द्वारा बताए गए प्रकार्यावाद के आधारभूत तत्व कौन–कौन हैं?

कूटः

ए 1 तथा 2
इए 3 तथा 4
बए 1 2 तथा 3
कए 1 2 3 तथा 4

उत्तर– 1.ए 2.बए 3.इए 4.कए 5.इए 6.ए 7.बए 8.ब ।

10.11 संदर्भ ग्रंथ सूची–

(1) शम्भूलाल दोषी एवं मधुसूदन त्रिवेदी, उच्चतर समाजषासत्रीय सिद्धान्त (1997) रावत पब्लिकेषन्स, जयपुर एवं नई दिल्ली, P- 40-150
(2) एस. एल. दोषी एवं पी. सी. जैन, सामाजिक विचारक (1997), सामाजिक विचारक, रावत पब्लिकेषन्स, जयपुर एवं नई दिल्ली] P- 80-300
(3) डा. शीबा सिद्दीकी, आधुनिक एवं उत्तर आधुनिक समाजषास्त्रीय सिद्धान्त (2012) विवेक प्रकाषन, जवाहर नगर, दिल्ली, P- 24–30
(4) डा. एम. एम. लवानिया एवं शषी के. जैन, सैद्धान्तिक समाजषास्त्र (1998), रिसर्च पब्लिकेषन्स, जयपुर, P- 119-180
(5) एस. एस. पाण्डेय, टीएमएच, P- 17.1, 17.11
(6) डा0 अफरोज एकबाल, भारत में सामाजिक परिवर्तन दषा एवं दिषा, ल्यूसेंट पटना, P 1- 55

10.12 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री–

(1) M. Francis Abraham, Modern Sociological Theory, Oxford University, Press Bombay, Calculta, Madras (1982) —P- 40-88
(2) Sujit Kumar Choudhary, Thinkers and Theories in Sociology — P 221-260

(1)Parimal B. Kar, Society, A Study of Social Interaction, Jawahar Publisher (1994) — P 62-70

10.13 निबंधात्मक प्रश्न–

प्रश्न– प्रकार्यवादी सिद्धांत की मान्यताओं को स्पष्ट करते हुए मर्टन के विचारों की समीक्षा कीजिए।

प्रश्न– प्रकार्यात्मक विश्लेषण के लिए आधुनिक संरचनात्मक प्रकार्यवाद में एक रच तालिका (पैरोडइम) का विकास करने में मर्टन का प्रयास सर्वाधिक महत्व का है। इस विधान का मूल्याकंन कीजिए।

इकाई 11 – सामाजिक संरचना एवं प्रतिमानहीनता (Social Structure And Anomie)

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देष्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 संरचना क्या हैं?

11.3 सामाजिक संरचना की वि"ोषताएँ

11.4 समाजिक प्रणालीयों के संरचनात्मक एवं अर्द्धसंरचनात्मक पक्ष

11.5 प्रतिमानहीनता

11.5.1 प्रतिमानहीनता के प्रकार

11.6 आलोचनात्मक मूल्याकंन

11.7 सारांष

11.8 पारिभा"िाक 'ाब्दावली

11.9 अभ्यास/बोध प्रष्नों के उत्तर

11.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

11.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

11.12 निबंधात्मक प्रष्न

11.0 उद्देश्य–

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप जान पाएँगें कि

नियमहीनता क्या है?
संरचना क्या हैं?
नियमहीनता पर मर्टन के क्या विचार हैं?
किस प्रकार सामाजिक संरचना नियमहीनता को प्रभावित करती है?

'' सामाजिक संरचना 'ाब्द का प्रयोग समाजषास्त्र एवं सामाजिक मानवषास्त्र में पर्याप्त रुप से होता रहा है। सामाजिक संरचना एवं सामाजिक व्यवस्था दोनों ही अवधारणायों एक दूसरे से घनि"ठतम

रुप से सम्बन्धित है। जहाँ सामाजिक व्यवस्था, समाज के प्रकार्यात्मक पक्ष को स्प"ट करती है वहीं सामाजिक संरचना, समाज के ढाँचे को व्यक्त करती है। समाज एक अखंड व्यवस्था नहीं है , उसके विभिन्न भाग या अंग होते हैं। ये विभिन्न अंग व्यवस्थित होकर एक ढाँचे या रुपरेखा की रचना करते हैं, इसी को हम सामाजिक संरचना कहते हैं।

11.1 प्रस्तावना–

यद्यपि नियमहीनता अथवा विसंगति के सिद्धान्त की चर्चा सर्वप्रथम फ्रांसीसी समाजषास्त्री इमाइल दर्खाइम ने की पर उसे विस्तृत रुप से विष्लेि"ात करने का श्रेय अमेरिकी समाजषास्त्री रार्बट किंग्सले मर्टन को जाता है। मर्टन से पहले मनोविज्ञान में फ्रायड ने भी मनोविज्ञानिक आधार पर इसे विष्लेि"ात करने का प्रयास किया है। फ्रायड के अनुसार विसंगति व्यक्ति की एक विषे"ा अवस्था है। यह सामाजिक संरचना की विषे"ाता नही है। दरर्वाइम ने नियमहीनता का कारण स्वंय समाज को माना है। और बतलाया कि जब व्यक्ति में निराषा, असंतो"ा अथवा बदला लेने की भावना पनप जाती है, तो वह समाज द्वारा मान्य एवं स्थापित नियमों, आर्दषों तथा मूल्यों को स्वीकार करने से इंकार कर देता है। और इस प्रकार का व्यवहार करने लगता है जो आदर्ष 'ून्यता (नियमहीनता) की दषा को दर्षाता है।

मर्टन ने अपनी पुस्तक एनोमी एण्ड सोषल स्ट्रक्चर (Anomie And Social Structure) में नियमहीनता ही चर्चा करते हुए कहा कि इसका सामाजिक संरचना से घनि"ठ संबंध हैं। विभिन्न परिस्थितियों में सामाजिक संरचना के ही कुछ ऐसी स्थितियाँ विद्यमान रहती हैं। जो व्यक्ति पर सामाजिक नियमों के प्रतिकुल व्यवहार करने का दबाव डालती हैं। इस तरह मर्टन के अनुसार नियमहीनता, सामाजिक संरचना से गहन रुप से जुड़ी हैं।

11.2 संरचना क्या हैं?

''संरचना' 'ाब्द का प्रयोग 'बनावट' या 'ढाँचे' से लिया जाता है। एक प्रकार से यह एक प्रतिमान होता है। जब किसी भवन को बनाया जाता है तो उस भवन का ढॉचा या स्वरुप एक प्रकार की संरचना कही जाती है। सोलहवी 'ताब्दी में इस अवधारणा का प्रयोग किसी एक सम्पूर्ण व्यवस्था के अंगो के पारस्परिक सम्बन्धों के साथ लिया गया। वस्तुतः संरचना का यह प्रयोग 'ारीर–रचना विज्ञान में अधिक हुआ। इसके बाद राजनैतिक दार्षनिकों ने इसका प्रयोग किया। इन्होंने इसका प्रयोग जैविकीय रुप में किया।

समाजशास्त्र में हरबर्ट स्पेन्सर ने 1958 में 'संरचना' के साथ प्रकार्य का प्रयोग किया, सम्भवतः रेडक्लिफ ब्राउन प्रथम व्यक्ति थे, जिन्होंने 1910 में इमाइल दुर्खीम के समाजषास्त्र पर जो व्याख्यान दिये उनका 'ाी"ार्क सोषल स्ट्रक्चर रखा। इस पीढ़ी के अन्य लेखकों ने भी संरचना का प्रयोग जैविकीय अर्थ में किया। जैसे 'ारीर की संरचना हाथ, पॉव, आँख, नाक आदि से मिलकर बनती है वैसे ही सामाजिक संरचना के भी विभिन्न भाग होते हैं।

सामाजिक संरचना का अर्थ एवं परिभा"ाायें

सामाजिक संरचना अवधारणा का प्रयोग 'समाजषास्त्र' एवं 'मानवषास्त्र' दोनों में होता है। इन दोनों विज्ञानों में इसका अलग–अलग प्रयोग होता है।

मोरिस जिन्सबर्ग ने सामाजिक संरचना को परिभा"ाित करते हुए लिखा है कि '' सामाजिक संरचना का अध्ययन सामाजिक संगठन के प्रमुख स्वरुपों अर्थात् समूहों समितियों तथा संस्थाओं के प्रकार एवं इन सबके संकुल जिनसे कि समाज का निर्माण होता है, से सम्बन्धित है।सामाजिक संरचना के एक सम्पूर्ण विवरण के अन्तर्गत तुलनात्मक संस्थाओं के सम्पूर्ण क्षेत्र के विष्ले"ाण का समावेष होगा। ''

एस.एफ. नडेल के अनुसार ''सामाजिक संरचना अनेक अंगों की एक क्रमबद्धता को स्प"ट करती है यह (संरचना) तुलनात्मक रुप से यद्यपि स्थिर होती है, लेकिन इसका निर्माण करने वाले अंग स्वंय परिवर्तनषील होते है । ''

कार्ल मैनहीम के अनुसार '' सामाजिक संरचना अन्तःक्रियात्मक सामाजिक 'ाक्तियों का एक जाल है, जिससे अवलोकन एवं चिन्तन की विभिन्न प्रणालियों का जन्म होता है। ''

यहाँ जाल को मैनहीम ने एक व्यवस्थित प्रतिमान के रुप में प्रयुक्त किया है जिसमें विभिन्न तारों के मध्य एक क्रमबद्धता होती है, इसी प्रकार सामाजिक संरचना भी एक क्रमबद्धता को प्रदर्षित करती है। सामाजिक 'ाक्तियों से मैनहीम का आषय सामाजिक नियन्त्रण के उन साधनों से है, जो व्यक्ति व समूह के जीवन को स्थायित्व प्रदान करने में मदद देते हैं।

टॉलकट पारसन्स के 'ाब्दों में 'सामाजिक संरचना' परस्पर सम्बन्धित संस्थाओं, 'एजेन्सियों और 'सामाजिक प्रतिमानों तथा समूह में प्रत्येक व्यक्ति द्वारा ग्रहण किये जाने वाले पदों तथा कार्यों की क्रमबद्धता है। पारसन्स सामाजिक संरचना को एक क्रमबद्ध रुप में देखते हैं इसलिए सामाजिक संरचना की विभिन्न इकाइयों (संस्थाओं, प्रतिमानों) की क्रमबद्धता को इस रुप में समझाया है। ये इकाइयाँ आपस में मिलकर क्रमबद्ध रुप से सामाजिक संरचना निर्माण करती है, एक–दूसरे से पृथक रह कर नहीं।

मैकाइवर एवं पेज ने लिखा है कि ''समूह निर्माण के विभिन्न तरीके संयुक्त रुप में सामाजिक संरचना के जटिल प्रतिमान का निर्माण करते है..... सामाजिक संरचना के विष्ले"ाण में सामाजिक प्राणियों की विविध प्रकार की मनोवृतियों तथा रुचियों के कार्य प्रकट होते हैं। ''

इस प्रकार समूहों के बनने के विभिन्न तरीकों के संयुक्त रुप को ही 'सामाजिक संरचना' कहते हैं जो एक अमूर्त अवधारणा है।

हैरी एम. जॉनसन के अनुसार '' किसी वस्तु की संरचना उसके अंगों के अपेक्षाकृत स्थायी अर्न्तसम्बन्धों से निर्मित होती है, स्वंय अंग 'ाब्द से ही कुछ स्थायित्व के अंष का ज्ञापन होता है, चूँकि सामाजिक व्यवस्था लोगों के अर्न्तसम्बन्धित कृत्यों से बनती है, इस कारण उसकी संरचना को इन क्रियाओं में पाई जाने वाली नियमितता या पुनरावृत्ति की मात्रा में ढूँढ़ा जाना चाहिये।''

हैरी जॉनसन की इस परिभा"ाा से स्प"ट होता है कि ये सामाजिक संरचना को अखण्ड नहीं मानते और यह स्वीकार करते हैं कि इसका निर्माण एकाधिक इकाइयों के संयोग से होता है, जिनमें परस्पर स्थायी सम्बन्ध होता है इस प्रकार सामाजिक संरचना का निर्माण लोगों द्वारा परस्पर सम्बन्धित क्रियाओं या कृत्यों द्वारा होता है। ये क्रियाऐं या कृत्य बार–बार दोहराये जाते हैं। इनमें एक नियमबद्धता पाई जाती है।

कोजर एवं रोजनबर्ग ने लिखा है कि ''संरचना का तात्पर्य सामाजिक इकाइयों के तुलनात्मक स्थिर एवं प्रतिमानित सम्बन्धों से हैं।''

मजूमदार एवं मदान के अनुसार ''पुनरावृतीय सामाजिक सम्बन्धों के तुलनात्मक स्थायी पक्षों से सामाजिक संरचना का निर्माण होता है।''

इन उपरोक्त समाजषास्त्रियों के अलावा कुछ सामाजिक संरचना के अंग है। व्यक्तियों द्वारा अधिकृत पद स्थितियों के रुप में ये सामाजिक संरचना को निर्मित करते है ।''

इग्गन का कहना है कि ''अन्तःवैयक्तिक सम्बन्ध'' सामाजिक संरचना के अंग है। व्यक्तियों द्वारा अधिकृत पद स्थितियों के रुप में ये सामाजिक संरचना को निर्मित करते है।''

फोर्ट्स के अनुसार ''व्यक्तियों के मध्य पाने जाने वाले पारस्परिक सम्बन्ध ही सामाजिक संरचना के अंग है। इस अवधारणा का प्रयोग विषे"ाकर नातेदारी राजनैतिक व कानूनी संस्थाओं के विष्ले"ाण में किया जाता है।''

रेमण्ड फर्थ ने सामाजिक संरचना का प्रयोग उन बुनियादी सामाजिक सम्बन्धों के रुप में किया है जो समाज के मूल स्वरुप को बनाये रखते हैं तथा सामाजिक संगठन की सीमाओं को निर्धारित करते हैं।

ईवान्स प्रिटचार्ड ने सामाजिक संरचना का प्रयोग समूहों के मध्य पाये जाने वाले सम्बन्धों के लिये िकया है।

रेडक्लिफ ब्राउन के अनुसार, ''सामाजिक संरचना के अंग या भाग मनु"य ही हैं, और स्वंय संरचना, संस्था द्वारा परिभाि"ात और नियमित सम्बन्धों में लगे हुए व्यक्तियों की एक क्रमबद्धता हैं

उपरोक्त विवेचन से स्प"ट है कि सामाजिक संरचना की अवधारणा के बारे में विभिन्न लेखकों के विचारों में पर्याप्त अन्तर है। यह अन्तर समाजषास्त्रियों और मानवषास्त्रियों द्वारा प्रस्तुत परिभा"ाओं में और भी स्प"ट रुप से देखा जा सकता है। फिर भी लगभग सभी विद्वान सामाजिक संरचना के कुछ निम्नलिखित महत्वपूर्ण पक्षों से सहमत हैं–

- सामाजिक संरचना अनेक अंगों या इकाइयों से मिलकर बनती है।
- सामाजिक संरचना में ये अंग परस्पर रुप से अन्तर्सम्बन्धित हैं।
- सामाजिक संरचना एक प्रकार से 'ारीर–रचना की तरह है और इसका प्रयोग भी इसी अर्थ में किया जाता है।
- सामाजिक संरचना का प्रयोग व्यापक अर्थ में सामाजिक संगठन, सामाजिक व्यवस्था या सामाजिक स्वरुप के अर्थ में हुआ है तथा सामाजिक समूह, संस्थायें, समितियाँ आदि इसकी प्रमुख इकाइयाँ है।

11.3 सामाजिक संरचना की विशे"ातायें

सामाजिक संरचना की उपरोक्त परिभा"ाओं के आधार पर इसकी महत्वपूर्ण विषे"ाताएँ निम्नलिखित है–

- **सामाजिक संरचना बाहय स्वरुप का बेाध कराती है**– सामाजिक संरचना का निर्माण विभिन्न अंगो एवं इकाइयों से होता है। ये इकाइयाँ या अंग जब एक अन्तर्सम्बन्धित व्यवस्था के रुप में

क्रमबद्ध रुप से संयुक्त हो जाते हैं तो एक ढाँचे या प्रतिमान का निर्माण होता है, उसी प्रकार जिस प्रकार पत्थर, सीमेण्ट, लोहा आदि के द्वारा एक भवन का निर्माण होता है। भवन के बाहय स्वरुप की भाँति ही सामाजिक संरचना समाज के बाहय स्वरुप का बोध कराती है।

- **एकाधिक अंग या इकाइयाँ**– सामाजिक संरचना, स्वंय में अखण्ड न होकर अनेक अंगो या इकाइयों की एक व्यवस्था है। संरचना की सबसे महत्वपूर्ण विषे"ाता यह है कि उसका गठन केवल किसी एक अंग या इकाई के आधार पर नहीं हो सकता बल्कि एकाधिक अंगों या इकाइयों के संयुक्तिकरण से ही संरचना का निर्माण सम्भव है। सामाजिक संरचना के अंग या इकाइयाँ विभिन्न सामाजिक समूह, संस्थायें, समितियाँ आदि है।
- **व्यवस्थित क्रम–विन्यास**– सामाजिक संरचना एक व्यवस्थित क्रमबद्धता है, जो विभिन्न अंगो या इकाइयों के मध्य पाई जाती है, अर्थात् केवल अंगो या इकाइयों के संकलन मात्र से ही किसी सामाजिक संरचना का निर्माण नहीं होता, जब तक कि इसके सभी अंग सुव्यवस्थित रुप से क्रमबद्ध न हो। जिस प्रकार ईट, सीमेण्ट, लोहे, पत्थर के ढेर से या संकलन से मकान नहीं बन सकता है, उसी प्रकार इकाइयों की क्रमबद्धता के अभाव में सामाजिक संरचना नहीं बन सकती।
- **प्रतिमानित अन्तर्सम्बन्ध**– प्रत्येक सामाजिक संरचना, अंगों या इकाइयों के प्रतिमानित अन्तर्सम्बन्धों से ही निर्मित होती है। वास्तव में विभिन्न अंगो या इकाइयों का केवल व्यवस्थित रुप में क्रमबद्ध होना ही आवष्यक नहीं है बल्कि उनमें 'अन्तर्सम्बन्ध' का होना भी आवष्यक है। उदाहरण के लिये घड़ी का निर्माण करने वाली सभी इकाइयों के परस्पर अन्तर्सम्बन्धित होने पर ही घड़ी की संरचना बनाती है।
- **अपेक्षाकृत स्थिर व स्थायी**– सामाजिक संरचना अपेक्षाकृत स्थिर एवं स्थायी अवधारणा है। जॉनसन ने बताया कि सामाजिक संरचना का निर्माण जिन समूहों और उपसमूहों से होता है, वे अपेक्षाकृत रुप से कही अधिक स्थायी होते है। समूह, समितियाँ, परिवार, श्रमिक संघ आदि सभी अपेक्षाकृत स्थायी समूह है। नडेल के अनुसार सामाजिक संरचना इस अर्थ में भी स्थिर व स्थायी है कि इसमें हम किसी वस्तु के सम्पूर्ण अंगों के पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन करते हैं जो कि सामान्यतः स्थिर व स्थायी होते हैं।
- **अमूर्तता**– सामाजिक संरचना की एक विषे"ाता अमूर्तता है। मैकाइवर एवं पेज तथा टालकट पारसन्स दोनों ने ही सामाजिक संरचना की इस विषे"ाता की ओर ध्यान आकर्"ात किया है। इनका मानना है कि सामाजिक संरचना का निर्माण करने वाली इकाइयाँ या भाग, संस्थायें, एजेन्सियाँ एवं सामाजिक प्रतिमान हैं, सभी अमूर्त हैं। इन इकाइयों का भौतिक वस्तुओं की तरह कोई मूर्त स्वरुप या आकार नहीं है। राइट का कहना है कि सामाजिक संरचना का तात्पर्य एक 'दषा' अथवा स्थिति से है और इसीलिये आवष्यक रुप से यह अमूर्त है।
- **उपसंरचनाओं का होना**– सामाजिक संरचना एक अखण्ड व्यवस्था नही है, बल्कि इसका निर्माण अनेक उपसंरचनाओं से मिलकर होता है। सामाजिक संरचनाओं की उपसंरचनाओं में परिवार, जाति, वर्ग, षिक्षण संस्था, धार्मिक संस्था, आर्थिक संस्था आदि मुख्य है, जिनकी स्वंय की एक संरचना होती है। इस प्रकार ये अनेक उप –संरचनायें मिलकर एक सामाजिक संरचना का निर्माण करती हैं।
- **स्थानीय विशे"ाताओं से प्रभावित**– प्रत्येक समाज की अपनी सामाजिक संरचना होती है जो उस समाज विषे"ा की स्थानीय विषे"ताओं से प्रभावित होती है। अपनी भौगोलिक, आर्थिक,

सांस्कृतिक एवं राजनैतिक विषे"ातायें होती है, इसीलिए एक समाज की सामाजिक संरचना दूसरे समाज की सामाजिक संरचना से भिन्न होती है। रेडक्लिफ ब्राउन ने लिखा है कि सामाजिक संरचना की अवधारणा में स्थानीय विषे"ाताओं का महत्वपूर्ण स्थान होता है।

- **विघटन की सम्भावना**– सामाजिक संरचना में अनेक बार विघटन के तत्व भी पाये जाते हैं। रोबर्ट मर्टन और इमाइल दुर्खीम ने इसी संदर्भ में नियमहीनता या विसंगति का उल्लेख किया है और बताया है कि अनेक बार सामाजिक संरचना स्वंय समाज में विसंगति पैदा करती है। इस प्रकार सामाजिक संरचना में विघटन के तत्वों की सम्भावना रहती है।
- **सामाजिक प्रक्रियाओं का महत्व**– सामाजिक संरचना के निर्माण में सहयोगी एवं असहयोगी दोनों प्रकार की सामाजिक प्रक्रियाओं, जैसे –सहयोग, अनुकूलन, व्यवस्थापन, सात्मीकरण, प्रतिस्पर्द्धा, संघ"र्ा आदि की भूमिका भी महत्वपूर्ण होती हैं। इन्हीं सामाजिक प्रक्रियाओं के कारण सामाजिक संरचना का स्वरुप निर्धारित होता है।

11.4 सामाजिक प्रणालियों के संरचनात्मक एवं अर्द्व–संरचनात्मक पक्ष

हैरी एम. जॉनसन ने अपनी कृति सोषियोलोजी–ए सिस्टेमेटिक इन्ट्रोडक्षन' में सामाजिक प्रणालियों के संरचनात्मक एवं अर्द्व संरचनात्मक पक्षों का उल्लेख किया है। उसके अनुसार सामाजिक प्रणाली की संरचना में निम्न चार तत्व होते हैं–

- कई प्रकार के उप–समूह, जो सम्बन्धित सामान्यकों द्धारा अन्तर्सम्बन्धित होते हैं।
- कई प्रकार की भूमिकायें और उसके उप–समूहों में प्रत्येक भूमिका सम्बन्धित सामान्यकों द्वारा अन्य प्रणालियों से सम्बन्धित होती है।
- उप–समूहों और भूमिकाओं को 'ाासित करने वाले सामान्यक नियामक।
- सांस्कृतिक मूल्य।

  इन तत्वों में से कोई भी किसी प्रकार का उप–समूह, कोई भूमिका, कोई सामाजिक सामान्यक, या कोई मूल्य–आंषिक–संरचना, कहा जा सकता है।

सामाजिक प्रणालियों के निम्नांकित पाँच अन्य पक्ष भी है जो 'सामाजिक संरचना' से इतने धनि"ठ रुप से सम्बन्धित है कि जॉनसन इन्हे 'अर्द्व–संरचनात्मक पक्ष' कहते हैं–

- प्रत्येक भिन्न प्रकार के उप–समूहों की संख्या तथा किसी एक प्रकार के उप–समूहों की संख्या और उसी से बहुत कुछ मिलते–जुलते उप समूहों की संख्या का अनुपात।
- प्रत्येक प्रकार के उप–समूहों में सदस्यों का वितरण।
- उप–समूहों में और पूरी प्रणाली में, विभिन्न भूमिका–धारियों की संख्या
- सुविधाओं का वितरण।
- पारितो"िाकों का विवरण।

सामाजिक संरचना के प्रारुप

टालकट पारसन्स ने अपनी सामाजिक संरचना के चार प्रमुख प्रारुपों का उल्लेख किया है। चार प्रकार के सामाजिक मूल्यों पर आधारित है–

- सार्वभौमिक सामाजिक मूल्य
- विषि"ट सामाजिक मूल्य
- अर्जित सामाजिक मूल्य
- प्रदत सामाजिक मूल्य

पारसन्स का मानना है कि सार्वभौमिक सामाजिक मूल्य वो होते है। जो कि समस्त समाजों में व्यापक रुप से पाये जाते है। और सभी व्यक्यिों पर लागू होते है। इसके विपरीत विषि"ट सामाजिक मूल्य किन्हीं विषे"ा सामाजिक सम्बन्धों पर आधारित होते हैं। अर्जित सामाजिक मूल्य वे होते हैं जिन्हें एक व्यक्ति अपने प्रत्यन्नो द्वारा प्राप्त करता हैं। जबकि पंरपरा द्वारा निर्धारित पदों से सम्बन्धित मूल्य, प्रदत सामाजिक मूल्य कहे जाते हैं। इन्हीं चार सामाजिक मूल्यों के आधार पर पारसन्स ने सामाजिक संरचना के चार प्रारुपों को समझाया हैं

5. **सार्वभौमिक अर्जित प्रतिमान**– सामाजिक संरचना के इस प्रथम प्रतिमान में सार्वभौमिक एवं अर्जित प्रकार के सामाजिक मूल्यों का समावेष होता है। सार्वभौमिक मूल्यों में समाज में नातेदारी, समुदाय, प्रजाति अथवा वर्ग आदि के सम्बन्ध प्रभावित होते है। इन मूल्यों के कारण व्यक्ति को कुछ निष्चित पदों की प्राप्ति होती है। लेकिन इनसे समाज की गतिषीलता में कमी आती है। एवं रुढ़िवादिता में वृद्धि होती है। इसके विपरीत अर्जित सामाजिक मूल्यों को व्यक्ति अपने परिश्रम से प्राप्त करता हैं। अतः अर्जित मूल्य व्यक्तिगत एवं सामूहिक अर्जन को प्राप्त करते हैं। इससे प्रथा एवं परम्परा का विषे"ा प्रभाव नहीं रहता । पूंजीवादी अर्थव्यवस्था अर्जित मूल्यों का एक उदाहरण हैं। जिसमें धन के अर्जन एवं संचय को काफी महत्व दिया जाता है। इस प्रकार इन दोनों प्रकार के सामाजिक मूल्यों के संयोग से सार्वभौमिक अर्जित प्रतिमान का निर्माण होता है। पारसन्स के अनुसार औद्योगिक समाजों की संरचना इस प्रकार के प्रतिमानों का उदाहरण है इस प्रकार के समाजों की संरचना में वर्ग व्यवस्था पायी जाती है। जो कि सार्वभौमिक मूल्यों पर आधारित है।साथ ही अर्जित मूल्यों का भी महत्व होता है।
6. **सार्वभौमिक प्रदत प्रतिमान**– पारसन्स के अनुसार सामाजिक संरचना के इस प्रतिमान में सार्वभौमिक मूल्य तो वही होते है। जिनका उल्लेख प्रथम प्रतिमान में हैं लेकिन इनमें अर्जित मूल्यों का स्थान प्रदत मूल्य ले लेते है। इसमें अतीत तथा भवि"य से संबंधित दोनों प्रकार के आदर्ष प्रतिमान में संयुक्त रुप से सम्मिलित रहते है। आदर्षों के चुनाव में रुढियों और परम्पराओं को विषे"ा महत्व नहीं दिया जाता। फलस्वरुप व्यक्तियों के समक्ष आदर्षों की अधिकता रहती है। साथ ही परिस्थितियों के अनुसार इनमें परिवर्तन भी होता रहता है। पारसन्स ने इस प्रकार के प्रतिमान का उदाहरण '' आधुनिक वैज्ञानिक समाजों' का दिया है जिनमें दोनों प्रकार के मूल्यों का समावेष हैं।
7. **विशि"ट–अर्जित प्रतिमान**– इस प्रकार के प्रतिमान में सार्वभौमिक मूल्यों की अपेक्षा विषि"ट सामाजिक मूल्यों की प्रमुखता रहती है। ये सामाजिक मूल्य विषे"ा सामाजिक सम्बन्धों पर आधारित होते है, जो पारलौकिक भी हो सकते है। इसके साथ अर्जित मूल्यों का समावेष कर सामाजिक

संरचना के इस प्रतिमान को प्रस्तुत किया गया है। पारसन्स के अनुसार प्राचीन भारतीय व चीनी सामाजिक संरचना को इस श्रेणी के प्रतिमान में रखा जा सकता है। मैक्स बेबर ने कन्फ्यूषियन चीनी सामाजिक संरचना का जो चित्र प्रस्तुत किया है, वह भी इसी श्रेणी के अन्तर्गत आता है।

8. **विशि"ट–प्रदत प्रतिमान**– पारसन्स के अनुसार सामाजिक संरचना का अन्तिम प्रारुप विषि"ट एवं प्रदत सामाजिक मूल्यों के संयोग से बना है। इस प्रकार के सामाजिक संरचना में रक्त–सम्बन्ध और स्थानीय समुदायों पर आधारित समूह पाये जाते हैं। नैतिकता का महत्व इस प्रकार की संरचना की एक विषे"ाता है।यहाँ विषि"ट वैयक्तिक गुणों को विषे"ा महत्व दिया जाता है। पारसन्स के अनुसार स्पेन की सामाजिक संरचना इसका श्रे"ठ उदाहरण है।

सामाजिक संरचना का अभिप्राय उस स्वरुप से है, जो समाज के विभिन्न अंगों के संयुक्त होने के उपरान्त एक निष्चित क्रमबद्धता के रुप में विकसित होता है। समाज के विभिन्न अंगों की प्रकृति एक–दूसरे से भिन्न है अतः प्रकृति के अनुसार ही सामाजिक संरचना के अनेक रुप हैं।

समाजषास्त्र में सामाजिक व्यवस्था की अवधारणा अत्यन्त महत्वपूर्ण है। क्योंकि सामाजिक व्यवस्था के दो भाग माने जाते हैं। प्रथम सामाजिक संरचना, द्वितीय प्रकार्य। अतः सामाजिक व्यवस्था को भी समझना आवष्यक है। मानव जीवन के क्रम और निरन्तरता को बनाए रखने के लिये समाज का महत्वपूर्ण योगदान हैं। इसीलिए मानव जीवन के अस्तित्व एवं प्रगति के लिये सामाजिक व्यवस्था आवष्यक है। व्यवस्था का अभिप्राय उस क्रमबद्धता से है जो किसी संरचना के विभिन्न इकाईयों के मध्य एक निष्चित प्रकार्यात्मक आधार पर पायी जाती हैं व्यवस्था को निम्नलिखित बिन्दुओं से समझा जा सकता है।

- व्यवस्था का निर्माण एक से अधिक इकाइयों से होता हैं और ये सभी इकाइयां क्रमबद्ध रुप में एक–दूसरे से जुड़ी होती है।
- व्यवस्था का संबंध एक संरचना से होता है। संरचना के बिना व्यवस्था नहीं हो सकती।
- व्यवस्था एक ऐसी स्थिति का बोध कराती है। जिसमें विभिन्न तत्व अनेकता से एकता के स्वरुप को स्प"ट करती है।
- व्यवस्था के निर्णायक अनेक इकाइयों एक–दूसरे से इस प्रकार अर्न्तसम्बन्धित होती हैं कि वे प्रकार्यात्मक आधार पर महत्वपूर्ण होती हैं।
- व्यवस्था में परिवर्तनषीलता होती है क्योंकि व्यवस्था का संबंध आवष्यकता पूर्ति से होता हैं। और व्यक्तियों की आवष्यकता में परिवर्तन होते रहने से व्यवस्था की संरचना में परिवर्तन होता रहता है।
- व्यवस्था कुछ इकाइयों का संयोग मात्र नही हैं, अपितु इसे व्यवस्था तभी कह जा सकता है जब वह समाज के लिए उपयोगी है।

एम.ई. जोन्स ने लिखा है सामाजिक व्यवस्था वह स्थिति हैं जिसमें समाज के विभिन्न क्रियाषील इकाईयां एक–दूसरे से तथा सम्पूर्ण समाज के साथ अपूर्ण ढंग से जुड़कर कार्य करती है। जोन्स की परिभा"ाा से यह स्प"ट होता हैं कि सामाजिक व्यवस्था में केवल सहयोग का ही समावेष होना आवष्यक नहीं है। समाज में वस्तुतः सहयोग और संघ"ार्ा सभी प्रकार के तत्व क्रियाषील रहते है। लेकिन सामाजिक व्यवस्था का आषय उस स्थिति से लगाया जाता है

जिसमें प्रत्येक भाग को एक–दूसरे से अर्न्तक्रिया करने और अपने सामाजिक हितों को पूरा करने के अधिकतम अवसर प्राप्त हो सके।

पारसन्स ने सामाजिक व्यवस्था को परिभाषित करते हुए लिखा है '' एक सामाजिक परिस्थिति में जिसका की एक भौतिक तथा एक पर्यावरणीय संबंधी पक्ष होता है। जब अनेक व्यक्ति कर्त्ता सामन्यतः स्वीकृत सांस्कृतिक प्रतीकों की व्यवस्था के अन्तर्गत आदर्ष लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये अन्तःक्रिया कर रहे होते है तब इसी स्थिति को हम सामाजिक व्यवस्था कहते हैं।'' पारसन्स आगे लिखते है, ''सामाजिक व्यवस्था क्रिया की एक संगठित प्रणाली है, जिसमें बहुत से कार्यकर्त्ताओं की अन्तःक्रियाओं का समावेष होता है।''

सामाजिक व्यवस्था में अनेक वैयक्तिक कर्त्ताओं के बीच 'अन्तःक्रियाएँ' होती हैं जिनका एक 'आदर्ष लक्ष्य' होता है। सामाजिक व्यवस्था का सम्बन्ध अनुकूल परिस्थितियों के सन्तुलन से होता है, जिसके अन्तर्गत सामाजिक व्यवस्था को संगठित रखने के लिए कुछ स्वीकृत सांस्कृतिक प्रतीकों के अनुसार ही अन्तःक्रिया की जाती है। पारसन्स की सामाजिक व्यवस्था को इन पक्षों में समझा जा सकता है–प्रथम पक्ष वह है, जिसके द्वारा सामाजिक व्यवस्था का निर्माण होता है, जिसे संरचनात्मक पक्ष कहा जाता है। दूसरा पक्ष यह है, जो अनेक संस्थाओं के माध्यम से सामाजिक व्यवस्था को समाज उपयोगी बनाता है और स्थायित्व प्रदान करता है जिसे संस्थात्मक पक्ष कहते हैं।

पारसन्स सामाजिक व्यवस्था में तीन तत्वों पर विषेष बल देते हैं–

- सामाजिक क्रिया
- कर्त्ता
- प्रस्थिति एवं भूमिका।

चार्ल्स पी. लूमीस ने सामाजिक व्यवस्था को समाज में पाई जाने वाली एक आन्तरिक स्थिति माना है और बताया है कि इसके लिए आन्तरिकरण का अध्ययन आवष्यक है, जिनमें सामाजिक प्रक्रियाओं की गतिषीलता ही सामाजिक उन्नति तथा उसके स्थायित्व को बनाये रखने में मदद करती है। सामाजिक व्यवस्था में पायी जाने वाली सामाजिक अन्तःक्रियाओं के परिणामस्वरुप सामाजिक सम्बन्ध स्थापित होते हैं। चार्ल्स लूमीस के अनुसार सामाजिक व्यवस्था के नौ महत्वपूर्ण तथ्य है। इसका वर्णन उन्होंन अपनी पुस्तक सोषल सिस्टम में की है। जो निम्नलिखित हैं–

- **विश्वास और ज्ञान**
- **भावनाऐं**
- **लक्ष्य**
- **आदर्श नियम**
- **प्रस्थिति एवं भूमिका**
- **पद**

- ❖ ‘ाक्ति अथवा सत्ता
- ❖ मान्यताऐं
- ❖ सुविधा

सामाजिक व्यवस्था के व्यवस्था के विषे"ताओं को निम्नलिखित बिन्दुओं पर समझा जा सकता हैं।

- सामाजिक व्यवस्था में एक से अधिक कर्त्ता व्यक्ति होते हैं जो अधिकतम संतुि"ट के लिये प्रेरित होकर अन्तःक्रिया करते है। व्यक्तियों की अन्तःक्रिया को एक सूत्र में पिरोने का काम व्यवस्था के मूल्य और प्रतिमान करते हैं।
- सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत विभिन्न तत्वों में जो एकता पायी जाती हैं। उसका आधार प्रकार्यात्मक संबंध होता है।
- सामाजिक व्यवस्था में अन्तःक्रिया करने वाले व्यक्ति व्यवस्था के मूल्यों के प्रति सहमति रखते हैं।
- सामाजिक व्यवस्था में अनूकूलन का गुण होता हैं इसके दो पक्ष हैं। प्रथम – सामाजिक व्यवस्था जड़ और स्थिर नहीं हैं अथवा ये गतिषील होती है। द्वितीय– इस गतिषीलता के कारण इसका अनूकूलन बाहय परिस्थितियों से होता रहता है।
- सामाजिक व्यवस्था यह मानकर चलती है कि समाज में निरन्तरता और सतर्कता होती है। यद्यपि सामाजिक व्यवस्था की इकाइयां परिवर्तनषील होती है। लेकिन इससे संपूर्ण व्यवस्था की संरचना और इसके प्रकार्यों में कोई अन्तर नही आता।
- सामाजिक व्यवस्था की एक प्रमुख विषे"ता साम्यवास्था है अर्थात व्यवस्था की यह प्रकृति होती है। कि वे अपनी यथास्थिति को बनाए रखे।
- सामाजिक व्यवस्था एक सामाजिक परिस्थिति में जिसका की एक भौतिक तथा एक पर्यावरणीय संबंधी पक्ष होता है। जब अनेक व्यक्ति कर्त्ता सामन्यतः स्वीकृत सांस्कृतिक प्रतीकों की व्यवस्था के अन्तर्गत आदर्ष लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये अन्तःक्रिया कर रहे होते है तब इसी स्थिति को हम सामाजिक व्यवस्था कहते हैं।
- सामाजिक व्यवस्था में संतुलन एवं क्रमबद्धता होती है।
- प्रत्येक सामाजिक व्यवस्था की एक निष्चित सीमा होती है।
- प्रत्येक सामाजिक व्यवस्था की सामाजिक, संस्कृतिक परिस्थितियों के अन्तर्गत व्यक्ति के व्यवहारों पर नियत्रंण रखने के लिए आदर्ष नियमों की एक व्यवस्था होती हैं।

11.5 प्रतिमानहीनता

मर्टन ने अपने विष्ले"ाण के क्रम में कहा है कि प्रत्येक सांस्कृतिक संरचना में कुछ ऐसे लक्ष्यों का समावेष होता है जिन्हें प्राप्त करना समाज में सदस्यों के लिए महत्वपूर्ण समझा जाता है। इनके अनुसार **सांस्कृतिक लक्ष्य** ही तय करते हैं कि किसी समाज में लोगों की आकांक्षाएँ क्या होगी तथा वे अपने समूह में किस प्रकार व्यवहार करेंगें। सांस्कृतिक संरचना के दूसरे महत्वपूर्ण तत्व को मर्टन ने **संस्थागत प्रतिमान** कहा है। ये प्रतिमान व्यवहार के वे स्वीकृत तरीके है। जो **सांस्कृतिक लक्ष्य** को प्राप्त करने में साधन का काम

करते हैं। वास्तव में प्रत्येक समाज में सांस्कृतिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए कुछ जनरीतियाँ, प्रथाएँ, लोकाचार या संस्थाओं का विकास किया जाता है जो व्यक्ति को एक विषे"ा प्रकार से व्यवहार करने की सीख देते हैं। उदाहरण के तौर पर परिवार की स्थापना करना एक सांस्कृतिक लक्ष्य है और हमारे समाजों में एकल–विवाह का नियम वह संस्थागत प्रतिमान साधन हैं जिसके द्वारा उस लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रकार मर्टन अपने प्रतिमानहीनता सिद्धांत; ।दवउपब जीमवतलद्ध में दो तथ्यों को सम्मिलित करते हैं।

1. **सांस्कृतिक लक्ष्य (Cultural Goals)**
2. **संस्थागत साधन (Institutional Means)**

मर्टन का कहना है कि प्रत्येक सांस्कृतिक संरचना का यह प्रयत्न होता है कि वह सांस्कृतिक लक्ष्यों एवं संस्थागत प्रतिमानों के बीच संतुलन बनाये रखे, लेकिन ऐसा संभव नही हो पाता। इसके कई कारण हैं, जैसे **पहला कारण** यह है कि समाज में सांस्कृतिक लक्ष्यों का निर्धारण उस समाज के मूल्यों के आधार पर होता है जबकि विभिन्न परिस्थितियों में व्यक्तियों के मूल्य एक–दूसरे से अलग हो सकते हैं। **उदाहरणार्थ**, किसी व्यक्ति का लक्ष्य परिश्रम द्वारा समाज में सम्मानित पद प्राप्त करना हो सकता है तो किसी दूसरे का लक्ष्य परिश्रम द्वारा धन कमाना हो सकता है। **दूसरा कारण** यह है कि विभिन्न परिस्थितियों में एक ही व्यक्ति के मूल्यों के बीच द्वन्द या विरोध की स्थिति उत्पन्न हों सकती है। **तीसरा**– मर्टन के अनुसार यह भी संभव है कि किन्हीं विषे"ा लक्ष्यों की प्राप्ति पर उस समाज की संस्कृति द्वारा अधिक बल दिया जाता है पर इन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए साधन स्प"ट एवं व्यवस्थित नहीं है। अतः अनेक ऐसे कारण होते हैं जिनके परिणामस्वरुप समाज में सांस्कृतिक मूल्यों एवं संस्थागत साधनों के बीच ताल–मेल गडबड़ हो जाती है। स्प"टतः 'नियमहीनता' के कारण समाज की सामाजिक, सांस्कृतिक संरचना में ही विद्यमान होते हैं।

11.5.1 प्रतिमानहीनता के प्रकार

मर्टन के अनुसार सांस्कृतिक लक्ष्यों एवं सांस्कृतिक साधनों के बीच पाँच तरह के व्यक्तिगत अनुकूलन के तरीके देखे जा सकते हैं।

1. **सामंजन या समानुरुपता (Conformity)**
2. **नवाचार (Innovation)**
3. **परम्परावादिता या कर्मकाण्ड(Ritualism)**
4. **पलायनवाद/अपसरण (Retreatism)**
5. **विद्रोह (Rebellion)**

1. <u>सामंजन या समानुरुपता (Conformity)</u>

सांमजन व्यक्तिगत अनूकूलन का वह तरीका है। जिसमें व्यक्ति अपने सांस्कृतिक लक्ष्यों और संस्थागत साधनों के अनुसार ही व्यवहार करता हैं। जैसे हमारे समाज में धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष यह सब सांस्कृतिक लक्ष्य हैं। यदि इन लक्ष्यों की पूर्ति के लिए एक व्यक्ति परम्परागत हिन्दू धर्म का पालन करता है। इसी तरह धनी बनना एक लक्ष्य है। अगर कोई व्यक्ति उद्योग स्थापित कर या व्यापार कर धनी बनता

है तो उसके व्यवहार में सामंजन है। इस तरह सामंजन की स्थिति में सांस्कृतिक लक्ष्य और परम्परागत साधन के बीच में पूर्ण ताल–मेल होता है। चूंकि मर्टन का मुख्य उद्देष्य विचलनकारी व्यवहार का विष्ले"ाण करना है इसलिए उन्होंने इस पर वृहत विस्तार से प्रकाष नही डाला है।

2. नवाचार (Innovation)

मर्टन के अनुसार नवाचार की स्थिति में एक व्यक्ति समाज में सांस्कृतिक लक्ष्यों को तो स्वीकार करता है पर संस्थागत साधनों का वह परित्याग कर देता है। विषे"ातः पष्चिमी पूंजीवादी संस्कृति द्वारा धन एवं 'ाक्ति के लक्ष्य पर अधिक बल दिये जाने के कारण व्यक्ति ऐसे साधनों की तलाष करता है। जिससे वह रातों–रात येन–केन–प्रकारेण लखपति, करोड़पति बन जाए। मर्टन का कहना है कि सांस्कृतिक लक्ष्यों को स्वीकार करना पर संस्थागत साधनों को नही स्वीकार करना ही '' नियमहीनता'' की स्थिति को जन्म देता है।(निम्न सामाजिक वर्ग)

3. परम्परावादिता या कर्मकाण्ड(Ritualism)

परम्परावादिता या कर्मकाण्ड व्यक्तिगत अनुकूलन का वह तरीका है जिसमें व्यक्ति सांस्कृतिक लक्ष्यों को अधिक महत्व न देकर केवल संस्थागत साधनों को ही महत्व देता है। इसे स्प"ट करते हुए मर्टन का कहना है कि जब कोई व्यक्ति यह कहता है कि परम्परागत ढंग से खेल का सर्वोत्तम तरीका है तो यहां खेल से ज्यादा उसके साधनों पर बल देता है। तेजी से परिवर्तित हो रही समाज व्यवस्था में जहाँ अर्जित परिस्थिति पर अधिक बल दिया जाता है जहां व्यक्ति नई आकांक्षाओं की पूर्ति चाहता है ऐसी परिस्थिति में वह अपनी परिस्थिति से चेतन युक्त होकर साधनों पर लक्ष्यों की तुलना में अधिक बल देता है। उदाहरण स्वरुप नियमों से प्रतिबद्ध नौकरषाह, अस्पतालों में आपातकालीन विभाग का स्वागताधिकारी जो प्रत्येक प्रवि"ट की पूर्ति आवष्यक मानते हैं। इसी श्रेणी में आते हैं।

4. पलायनवाद/अपसरण (Retreatism)

मर्टन का कहना है कि जिस तरह समानुरुपता अनुकूलन का सर्वोत्तम रुप है इसके ठीक विपरीत पलायनवाद या अपसरण इसका नकारात्मक रुप है। यह एक ऐसी दषा है। जहाँ न तो व्यक्ति न तो सांस्कृतिक लक्ष्यों को मानता है और न ही संस्थागत साधनों के द्वारा किसी लक्ष्य की पूर्ति में विष्वास रखता है। मर्टन ने अधिक 'ाराब पीने वाले, नषे की गोलियाँ खाने वाल, मानसिक रुप से विक्षिप्त लोगों का उदाहरण देते हुए कहा है कि ऐसे व्यक्ति सामान्यतः किसी भी सांस्कृतिक लक्ष्य और संस्थागत साधन को स्वीकार नहीं करते। हिप्पी संस्कृति को मानने वाले लोग इस श्रेणी में रखे जा सकते हैं।

5. विद्रोह (Rebellion)

विद्रोह के रुप में अनुकूलन का तरीका एक ऐसी दषा को स्प"ट करता है जिसमें 'विसंगति' के तत्व सबसे अधिक होते हैं। मर्टन का कहना है कि जब समाज की संस्थागत प्रणाली वैधानिक लक्ष्यों की पूर्ति में बाधा के रुप में मानी जाने लगती है तब इस दषा में किये जाने वाले अनुकूलन को विद्रोह कहा जा सकता है। इस तरह के व्यक्ति सामाजिक व्यवस्था में अमूल–मूल परिवर्तन चाहते हैं। वे न तो सांस्कृतिक लक्ष्यों को पूरी तरह सही मानते हैं और न ही संस्थागत साधनों को बल्कि क्रमषः दोनों के साथ–साथ बारी–बारी से चलते हैं। कभी–कभी ऐसे व्यक्ति नये सांस्कृतिक लक्ष्यों को निर्धारित करते हैं। और उसके लिए नये

साधनों का भी ईजाद करते हैं। इस तरह मर्टन का कहना है कि इस तरह के लोग असमंजस की स्थिति में होते हैं।

मर्टन ने विभिन्न परिस्थितियों में व्यक्तियों द्वारा समाज से अनुकूलन करने के विभिन्न तरीकों को स्प"ट करने हेतु एक व्यवस्थित तालिका प्रस्तुत की जो निम्न प्रकार है–

अनुकूलन के तरीके (Type of Adeptation)	**सांस्कृतिक लक्ष्य (Cultural Goal)**	**संस्थागत साधन (Institutionalised means)**
समंजन / समानुरुपता Conformity	+	+
नवाचार Innovation	+	–
परम्परावादिता / कर्मकाण्ड Ritualism	–	+
पलायनवाद / अपसरण Retreatism	–	–
विद्रोह Rebellion	±	∓

उपर्युक्त चर्चाओं से स्प"ट हैं कि मर्टन ने विसंगति के विष्ले"ाण में इस बात पर जोर दिया हैं बल्कि इसका संघ"ार्ा सांस्कृतिक लक्ष्यों तथा संस्थागत साधनों के बीच अनूकूलन के असंतुलन से है। यह पूरी तरह से सामाजिक दषा को स्प"ट करता है और इस तरह विसंगति का कारण समाज की दषाएँ है। यद्यपि मर्टन के इस सिद्वान्त की आलोचना की गयी हैं, साथ ही अनेक विद्वानों का कहना है कि यह एक मानसिक दषा है तथापि हकीकत यह है कि मर्टन ने विसंगति के इस सिद्वान्त के माध्यम से समाज में सदस्यों के विचलनकारी व्यवहार को समझने का प्रयास किया है।

11.6 आलोचनात्मक मूल्याकंन–

1. मर्टन के इस सिद्वांत पर आलोचकों का आरोप हैं कि ये सिद्धांत समाज में विद्यमान 'ाक्ति संबंधो एवं सामाजिक नियंत्रण की उपेक्षा करता हैं जो कि समाज में अनुरुपता एवं विचलन को प्रमुख रुप से प्रभावित करते हैं।
2. आलोचकों के अनुसार मर्टन की यह मान्यता कि, अमेरिकी समाज में एकमत्यता है और व्यक्ति केवल संरचनात्मक तनावों के कारण विचलित व्यवहार करते हैं, सही नहीं है। इस संदर्भ में आलोचकों का कहना है कि आधुनिक वि"ामरुपीय समाज में मूल्य एकमत्यता अर्थात् ऐसे सांस्कृतिक लक्ष्य को निर्धारित कर पाना कठिन है जो सभी के लिये मान्य हो।
3. आलोचक कहते हैं कि मर्टन का यह विष्ले"ाण एकपक्षीय है क्योंकि केवल सांस्कृतिक लक्ष्य एवं संस्थागत साधनों के मध्य असंतुलन के आधार पर सामाजिक विसंगति या विचलन की व्याख्या पूर्ण नहीं है। यहाँ मर्टन ने संरचना को अधिक महत्व देते हुए न केवल व्यक्ति के व्यक्तित्व की उपेक्षा की है वरन् समाज में अनुपालन एवं मतैक्यता (नियमों पर सहमति) पर आवष्यकता से अधिक बल देते हुए अत्यधिक समाजीकृत व्यक्ति और अत्यधिक एकीकृत समाज की परिकल्पना को प्रस्तुत की है जो तथ्यों पर आधारित नहीं है।

4. मर्टन के इस सिद्धांत पर आलोचकों का आरोप है कि यह सिद्धांत समाज में विद्यमान 'ाक्ति संबंधो एवं सामाजिक नियंत्रण की उपेक्षा करता है जो कि समाज में अनुरुपता एवं विचलन को प्रमुख रुप से प्रभावित करते हैं।
5. आलोचकों का कहना है कि मर्टन का यह सिद्धांत निम्न श्रमिकवर्गीय अपराध का वर्णन अतिषयोक्तिपूर्ण रुप से करता है और मध्यमवर्गीय अपराध या सफेदपोष अपराध के विष्ले"ाण में सहानुभूतिपूर्ण रवैया अपनाता है जो कि अवैज्ञानिक है। यंग, वाल्टर व टेलर जैसे समाजविज्ञानियों का आरोप है कि यह सिद्धांत राजनीतिक रुप से अभिप्रेरित अपराध (जैसे– स्वतंत्रता सेनानी) की व्याख्या नहीं करता जहाँ व्यक्ति कानून का उल्लंघन विसंगति के प्रभावों के कारण न करके कुछ मूल्यों के प्रति प्रतिबद्वता के कारण करता है। कोहेन के अनुसार मर्टन का यह सिद्धांत अनुपयोगितावादी अपराध, जिसको लोग केवल हँसी–मजाक में करते हैं और समाज के किसी विषे"ा लक्ष्य को प्राप्त नहीं करते हैं (जैसे– घूमने के लिए कार चुराना) और बाल अपराध की व्याख्या करने में भी अक्षम है।
6. मर्टन के इस सिद्धांत पर यह भी आरोप लगाया गया है कि इस सिद्धांत का परीक्षण आनुभविक आधार पर नहीं किया गया है।

उपरोक्त आलोचनाएँ निष्चित रुप से मर्टन के विचारों में निहित कमियों को उजागर करती हैं परंतु केवल इसके आधार पर मर्टन के विचारों को पूरी तरह खारिज नहीं किया जा सकता है।

जहाँ तक मर्टन के एकपक्षीय होने का सवाल है तो उल्लेखनीय है कि मर्टन विचलन एवं अपराध को समाजषास्त्रीय दृ"टकोण से देखने का प्रयास करता है और विचलन के समाजषास्त्रीय विष्ले"ाण के प्रतिमान को स्थापित करता है।

11.7 सारां"ा–

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप यह जान चुके हैं कि नियमहीनता के बारे में मर्टन से पूर्व वैज्ञानिकों की क्या विचारधारा थी। इस अध्याय में यह समझ आ चुका होगा कि किस प्रकार मर्टन ने नियमहीनता को सामाजिक संरचना से जोड़कर देखा हैं। किस प्रकार सामाजिक संरचना व्यक्तियों में विचलन पैदा करते हैं। और इसके लिये मर्टन दो कारक को जिम्मेदार समझते हैं। प्रथम सांस्कृतिक लक्ष्य तथा द्वितीय संस्थागत साधन। इन दोनों के संपूर्ण तालमेल से सामंजस्य की स्थिति बनी रहती है। हम जान चुके है कि इन दोनों के असंतुलन के कारण विभिन्न प्रकार की विचलन की स्थिति पैदा होती है।

11.8 पारिभा"िाक शब्दावली–

सांस्कृतिक लक्ष्य (ब्नसजनतंस ळवंस)– आर0 के0 मर्टन कहते हैं कि प्रत्येक सामाजिक संरचना का अपना एक लक्ष्य होता हैं, समाज के लोग इस लक्ष्य को प्राप्त करने की को"ि"ा करते हैं। उदाहरण के तौर पर किसी व्यक्ति का लक्ष्य अमीर बनना, डॉक्टर बनना, वकील बनना, पत्रकार बनना आदि–आदि ये सांस्कृतिक लक्ष्य हैं।

संस्थागत साधन (Institutional Means) मर्टन के अनुसार प्रत्येक सामाजिक संरचना में संस्थागत साधन होते हैं, जिससे व्यक्ति लक्ष्य की प्राप्ति करता हैं। इन दोनों के सही तालमेल से समाज में सामंजस्य बना होता हैं।

11.9 अभ्यास/बोध प्रश्नों के उत्तर

1. आर0 के0 मर्टन द्वारा महत्व प्रतिपादित करते हुए कौन विचलनशील लक्ष्यों का उद्देश्य रखता है?

।ण अनुसारक ब्ण कर्मकाण्डी

ठण नवाचार क्ण विद्रोही

2. रॉबर्ट मर्टन के अनुसार जो लोग एक नई सामाजिक व्यवस्था की पुनर्संरचना के प्रयास में विद्यमान मूल्यों और उन्हें प्राप्त करने के साधनों दोनो को अस्वीकार करदेते हैंए कहतेहै–

a) विद्रोही
b) नवाचार
c) कर्मकांडीय
d) प्रावर्तन

3. रॉबर्ट मर्टन के अनुसारए भजब सांस्कृतिक मानकों और लक्ष्योंएतथा उनके अनुसार कार्य करने की समूह के सदस्यों की संरचित क्षमताओ के बीच तीव्र वियोजन हो"ए तो यह निम्नलिखित ेंसे किस स्थिति का कारण बनता हैंद

।ण अप्रतिमानता ब्ण सामाजिक गतिषीलता
ठण सांस्कृतिकपतन क्ण संरचनात्मक रुपांतरण

4. निम्नलिखित में से किस एक समाज वैज्ञानिक ने यह तर्क दया क विसामान्यता सांस्कृतिक लक्ष्यों औरउन्हें प्राप्त करने के संस्थागत साधनों के बीचअन्तराल का परिणामहैंद

।ण आर मर्टन ब्ण ऑगस्ट कॉम्टे
ठण इमाइल दुर्खीम क्ण टॉलकट पारसन्स

5. जब व्यक्ति सांस्कृतिक साधनों एवं सामाजिक लक्ष्यों, दोनों को अस्वीकार कर देता है, उसे कहेंगेः–

a. विद्रोही
b. नवाचार
c. कर्मकांडीय
d. प्रावर्तन/पलायनवाद

6. निम्नलिखित में से कौन–सा युग्म सही रुप से सुमेलित नहीं किया गया है?

e. सी. एच. कूले : प्राथमिक समूह
f. टॉल्कट पॉर्सन्स : प्रत्यक्षवाद
g. आर. के. मर्टन : संदर्भ– समूह
h. डब्ल्यू. जी सम्नर : अंतः समूह, बहिर्समूह

7. निम्नलिखित युग्मों में से कान–सा एक सही रुप से सुमेलित नहीं किया गया है?

e. ए. आर. रेडक्लिफब्राउन : चार प्रकार्यात्मक पूर्वापेक्षाएं
f. आर. के. मर्टन : संदर्भ–समूह
g. एमिल दर्खाइम : सामाजिक तथ्य
h. ई. एच. कूले : प्राथमिक एवं गौण समूह
i.

8. सूची.ध को सूची.ब्ध के साथ सुमेलित कीजिये तथा सूचियों के नीचे दिए कूट का प्रयोग कर सही उत्तर चयन चुनिए :

सूची.ध	सूची.ब्ध
e. प्रत्यक्ष प्रकार्य	1ण पारसन्स
f. प्रतिमान हीनता	2. वेबर

g. सामाजिक व्यवस्था 3. काम्ट

h. वर्स्टहेन 4. मर्टन

5. दुर्खीम

कूटः

		ठ	ह	क
मण	4	5	3	1
णि	2	4	3	1
हण	4	5	1	2
ीण	1	4	5	2

9. सूची.ए को सूची.प्प के साथ सुमेलित कीजिये और सूचियों के नीचे दिये कूट का का प्रयोग कर सही उत्तर चुनिएः

सूची.ए

a. साधनों के प्रति अनुरुपता, लक्ष्यों के प्रति उदासीनता

b. साधनों के प्रति उदासीनता प्रति अनुरुपता लक्ष्यों के

c. साधनों तथा लक्ष्यों के प्रति उदासीनता

d. साधनों तथा लक्ष्यों के प्रति समर्पिता

सूची.प्प

1. नवाचार

2. प्रत्यावर्तन

3. कर्मकांडीय

4. अनुरुपता

5. विचलन

कूटः

		ठ	ह	क
ंण	5	1	2	4
इण	5	2	1	3
बण	3	1	2	4
कण	3	5	2	4

उत्तर– 1.इए 2.कए 3.ए 4.ए 5.कए 6.इए 7.ए 8.बए 9.बए ।

11.10 संदर्भ ग्रंथ सूची–

(1) शम्भूलाल दोशी एवं मधुसूदन त्रिवेदी, उच्चतर समाजशासत्रीय सिद्धान्त (1997) रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर एवं नई दिल्ली, च 40.150

(2) एस. एल. दोशी एवं पी. सी. जैन, सामाजिक विचारक (1997), सामाजिक विचारक, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर एवं नई दिल्ली, च 80.300

(3) डा. शीबा सिद्दीकी, आधुनिक एवं उत्तर आधुनिक समाजशास्त्रीय सिद्धान्त (2012) विवेक प्रकाशन, जवाहर नगर, दिल्ली, च 24–30

(4) डा. एम. एम. लवानिया एवं शशी के. जैन, सैद्धान्तिक समाजशास्त्र (1998), रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर, च 119.180

(5) एस. एस. पाण्डेय, टीएमएच, च 17ण्1ए 17ण्11

(6) डा0 अफरोज एकबाल, भारत में सामाजिक परिवर्तन दशा एवं दिशा,ल्यूसेंट पटना, च 1. 55

11.11 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री–

(1) M. Francis Abraham, Modern Sociological Theory, Oxford University, Press Bombay, Calcutta, Madras (1982) —P- 40-88

(2) Sujit Kumar Choudhary, Thinkers and Theories in Sociology — P 221-260

(1)Parimal B. Kar, Society, A Study of Social Interaction, Jawahar Publisher (1994) — P 62-70

11.12 निबंधात्मक प्रश्न–

प्रश्न– सामाजिक संरचना और नियमविहीनता के बीच संबंध के बारे में मर्टन का क्या विचार है? किन अर्थों में कोई नियमविहीन व्यक्ति अनुरुपी भी होता है?

प्रश्न–सामाजिक संरचना, प्रतिमानहीनता और विचलित व्यवहार की ओर आयाम को कैसे पैदा करती है? इस क्षेत्र में मर्टन के योगदान का हवाला देते हुए इसका परीक्षण कीजिए?

इकाई 12– सन्दर्भ समूह एवं सामाजिक गतिशीलता
REFRENCE GROUP AND SOCIAL MOBILITY

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देष्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 संदर्भ समूह की अवधारणा

12.3 संदर्भ समूह की अध्ययन तत्व

12.4 विभिन्न विचारों के विचार

12.5 मर्टन के विचार

12.6 संदर्भ समूह एवं सामाजिक गतिशीलता

12.7 संदर्भ व्यक्ति या संदर्भ समूह का चुनाव

12.8 संदर्भ समूह के प्रकार्यात्मक पक्ष/सामाजिक गतिशीलता

12.9 सीमान्त मानव

12.10 सारां"ा

12.11 पारिभा"िाक 'ाब्दावली

12.12 अभ्यास प्रष्न

12.13 संदर्भ ग्रंथ समूची

12.14 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

12.15 निबंधात्मक प्रष्न

12.0 उद्देश्य–

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप जान पाएँगे कि –

1 संदर्भ समूह क्या है?
2 सापेक्षिक वंचना कैसे संदर्भ समूह बनाती है?
3 समाज 'ाास्त्र के क्षेत्र में संदर्भ समूह को किसने प्रथम समाज 'ाास्त्री विष्ले"ाण किया?
4 संदर्भ समूह के बारे में वैज्ञानिकों के विचार क्या हैं तथा इनके कौन–कौन से प्रकार हैं?

5 मर्टन ने सन्दर्भ समूह को किस तरह सामाजिक गतिशीलता से जोड़ा?

12.1 पस्तावना

विष्व में ऐसा कोई समाज नहीं है जहॉ समूह न हो हम जानते हैं कि समूह दो या अधिक व्यक्तियों की अन्तः क्रिया को कहते हैं। समाज में कई समूह पाये जाते हैं कई बार हम देखते हैं कि एक समूह का व्यक्ति दूसरे समूह को अच्छा मानता है तथा वैसे ही व्यवहार वह करने लगता है तथा समूह का सदस्य बनाना चाहता है तो उस व्यक्ति के लिए वह समूह जिसका व्यवहार वह सीख रहा है वह संदर्भ समूह होगा।

अतः संदर्भ समूह वह समूह है जिस समूह को आधार मानकर व्यक्ति अपना मूल्यांकन करता है तथा अपने आपको उस समूह की तरह बताने का प्रयास करता है। इस तरह संदर्भ समूह व्यक्ति की उच्च आकांक्षा का परिणाम है।

12.2 संदर्भ समूह की अवधारणा_(Consept of Reference Group)

सर्वप्रथम 'सन्र्दभ समूह' की चर्चा हर्बर्ट हाईमन (H.H.Hyman) ने अपनी पुस्तक 'द साइक्लोजी आफ स्टेटस' (The Psychology of Status) में 1942 में दिया। इसके बाद 'ारिफ, ऑटोक्लाइनबर्ग, टी0 न्यूकोम्ब, स्टाउफर तथा मर्टन ने अपने विचार व्यक्त किए। संदर्भ समूह के निर्माण के मुख्यतः दो आधार हैं–

1 **आकांक्षा (Aspire)**
2 **सापेक्षिक वंचना (Relative Deprivation)**

हाइमन द्वारा इस अवधारणा का प्रयोग स्कूली बच्चों के अध्ययन के संदर्भ में दिया गया था। हाइमन द्वारा संदर्भ समूह की अवधारणा का उल्लेख मनोविज्ञान वि"ाय में किया गया था जबकि समाजषास्त्र के क्षेत्र में लाने का श्रेय सर्वप्रथम राबर्ट किग्सले मर्टन को जाता है।

संदर्भ समूह की अवधारणा हमारे लिए विषे"ा रूप से उपयोगी है क्योंकि इसका सम्बन्ध सदस्यों के मनोविज्ञान से होता है इस मानसिक आधार को समझने के लिए हमें इस वि"ाय की कुछ गहराई में जाना पड़ेगा। इस उद्देष्य की पूर्ति के लिए निम्न दो प्रकार के समूहों का उल्लेख किया जा सकता है।

1 **सदस्यता समूह**
2 **सन्दर्भ समूह**

व्यक्ति जिस समूह का वास्तव में सदस्य होता है और जिस समूह को अपना मानकर उसके प्रकार्यो में सक्रिय भाग लेता है उसे सदस्यता समूह (Membership Group) कहते हैं। पर यह मनोवैज्ञानिक तौर पर अपना सम्बन्ध ऐसे समूह से भी बनाये रखता है। और उसके आदर्ष नियमों (Norm), मूल्यों आदि को अपने आचरण में सम्मिलित करता है जिसका वह वास्तविक रूप में सदस्य नहीं है। ऐसे समूहों को ही संदर्भ समूह (aaaaReference group) कहते हैं। एक व्यक्ति का संदर्भ समूह इस समूह इस अर्थ में है

कि इसी के संदर्भ में वह अपने आचरणों, विचारों तथा मनोवृत्तियों को काफी हद तक ढालता है। यद्यपि वास्तव में वह इस समूह का सदस्य नहीं हैं। यह संदर्भ–समूह इस अर्थ में भी है कि इसी संदर्भ में हम व्यक्ति के व्यवहार, मनोवृत्ति, विचार, मूल्य, आदर्ष आदि का यथार्थ तथा व्यवहारिक ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

यह संदर्भ समूह की कुछ परिभा"ाओं से और भी स्प"ट हो जाता है।

संदर्भ समूह का अर्थ एवं परिभा"ा_(Meaning and Definition of Reference Group)

संदर्भ समूह की अवधारणा मुख्यतः इस तथ्य की ओर हमारा ध्यान आकृ"ट करती है कि मानव व्यवहार तथा उसके व्यक्तित्व के विकास में प्रायः कुछ गैर सदस्यता समूह की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। जिसे हाइमन ने संदर्भ समूह कहा है। इन्हें संदर्भ समूह इसलिए कहा जाता है कि समूह किसी व्यक्ति कि समक्ष ऐसा सन्दर्भ प्रस्तुत करते हैं जिनके आधार पर वह व्यक्ति न सिर्फ अपना एवं अपनी स्थिति का भी मूल्यांकन करता है बल्कि दूसरों की हैसियत का भी मूल्यांकन करता है।

वास्तव में संदर्भ समूह व्यक्ति की उच्च आकांक्षा का परिणाम होता है। उदाहरण के तौर पर यदि कोई विद्यार्थी आइ0 ए0 एस0 (I.A.S.) की तैयारी करता है तथा आई0 ए0 एस0 (I.A.S.) बनना चाहता है वैसी ही स्थिति में आइ0 ए0 एस0 (I.A.S.) उसका संदर्भ समूह होता है क्योंकि वह उसी समूह में 'ामिल होना चाहता है। अधिकांष व्यक्ति अपने व्यवहार को ढ़ालने, वि"लेषण करने में स्वयं को समूह से बाहर दूसरे समूहों के संदर्भ में अभिप्रेरित करते हैं संदर्भ समूह की अवधारणा की समस्या इन्हीं दूसरे समूहों जिनका वह स्वयं सदस्य नहीं हैं की ओर अभिप्ररित करने की समस्याओं के चारों ओर केन्द्रित हैं। वास्तव में संदर्भ समूह के सामान्य सिद्धान्त के अर्न्तगत सदस्यता समूह (membership Group) या असदस्यता समूह (Non-membership Group) दोनों ही प्रकार की अभिप्रेरणाओं का विवरण होना चाहिए पर यहॉ पर इस प्रत्यय का प्रमुख वि"ाय उन प्रक्रियाओं को ढूढ़ निकालना है जिनके द्वारा व्यक्ति उन समूहों का सदस्य बनने की चे"टा करता है जिनका कि वह वर्तमान में सदस्य नहीं है सामान्यतः संदर्भ समूह के सिद्धान्तों का उद्देष्य स्वयं की प्रषंसा व मूल्यांकन को उन प्रक्रियाओं के निर्धारित तत्वों व परिणामों के आधारों के रूप में व्यवस्थित करना है। जिनके द्वारा व्यक्ति दूसरे व्यक्तियों और समूहों के मूल्यों व स्थापित मानको को तुलनात्मक संदर्भ के रूप में ग्रहण करता है। अतः यह नि"क"र्ा निकाला जा सकता है कि संदर्भ समूह का सिद्धान्त यह विचार है कि व्यक्ति के विचार, भावनायें और दृ"टकोण उन समूहों के द्वारा निर्धारित होते हैं। जिनमें कि व्यक्ति भाग लेते हैं।

'ारिफ के अनुसार, संदर्भ समूह वे समूह हैं जिनसे व्यक्ति अपने को समूह के अंग के रूप सम्बन्धित करता है। अथवा मनोवैज्ञानिक रूप से सम्बन्धित होने की आकांक्षा करता है। प्रतिदिन की बोलचाल में संदर्भ की बोलचाल में संदर्भ–समूह वह समूह है, जिनके साथ व्यक्ति अपना समीकरण (Identity) करता है या समीकरण (Identity) करने की आकांक्षा रखता है। इस प्रकार 'ारिफ ने संदर्भ समूह के बारे में दो बातें कही हैं –

1. **सदस्यता समूह के व्यक्ति का अत्म समूह से संबंध स्थापित करना।**
2. **अन्य समूह से संबंध स्थापित करने की आकांक्षा रखना।**

'ारिफ के अनुसार संदर्भ समूह एक मानसिक स्थिति है जिसमें किसी भी समूह के सदस्य किसी दूसरे समूह से जिसे वे श्रे"ठ समझते हैं। अपना मानसिक संबंध जोड़ते हैं एवं स्वयं का उस अन्य समूह से मूल्यांकन करते हैं।

12.3 संदर्भ समूह के अध्ययन तत्व(Essential Elements of Reference Group)

विभिन्न विद्वानों के विचारों तथा विभिन्न परिभा"ाओं से यह स्प"ट होता है कि संदर्भ समूह के निम्नलिखित आवष्यक तत्व हैं जिसके द्वारा कोई की व्यक्ति संदर्भ समूह के अपने को जोड़ता है तथा किसी समूह को अपना संदर्भ समूह मानता है :–

1 समाज के अनेक सदस्य एक ही समूह से अपने को सम्बन्धित मान सकते हैं। एवं एक ही समाज में अनेक संदर्भ–समूह भी हो सकते हैं। अर्थात अलग–अलग व्यक्तियों के लिए अलग–अलग संदर्भ समूह भी हो सकते हैं और अनेक व्यक्तियों के लिए एक संदर्भ समूह भी हो सकता है।

2 सदंर्भ समूह की उत्पत्ति व्यक्ति की उन उच्च अभिला"ाओं का परिणाम होती है जिनके प्रभाव में आकर व्यक्ति यह चाहता है कि वह अपने का एक ऐसे समूह से सम्बन्धित कर ले अथवा मान ले जिसकी कि समाज में प्रति"ठा है इसलिए 'ारिफ ने यह मत व्यक्त किया है कि संदर्भ समूह का एक मनोवैज्ञानिक आधार अवष्य होता है क्योंकि व्यक्ति में जब तक मनोवैज्ञानिक तौर पर किसी समूह से अपने को सम्बन्धित करने अथवा मानने की अभिला"ाा उत्पन्न नहीं होती तब तक संदर्भ समूह के पनपने का प्रष्न ही नहीं उठता।

3 सामाजिक दृ"टि से किसी व्यक्ति का संदर्भ–समूह उसके अपने समूह से ऊची स्थिति का होता है क्योंकि प्रत्येक मनु"य में यह स्वाभाविक अभिला"ाा होती है कि वह अपने को उस स्थिति वातावरण व प्रति"ठा से ऊंचा उठाये जिसमें कि वह वास्तव में निवास कर रहा है। इसीलिए वह अपने समूह से किसी ऊचे समूह में प्रवेष पाना चाहता है और उसी को अपना संदर्भ–समूह मानता है।

4 संदर्भ समूह का अस्तित्व उस व्यक्ति के दृ"टकोण पर निर्भर करता है जिसे वह आदर्ष मानता है। इसलिए जो समूह एक व्यक्ति के लिए आदर्ष है वही समूह दूसरे व्यक्ति के लिए आदर्ष नहीं भी हो सकता है एक व्यक्ति के लिए कौन–सा समूह संदर्भ–समूह होगा यह इस बात पर निर्भर करता है कि व्यक्ति किस समूह कि मूल्यों आर्दषों तथा व्यवहारों को अपनाने के लिए इच्छुक है वास्तव में व्यक्ति अपने जीवन के लिए ऐसे लक्ष्यों को निष्चित करता है जो अपने समूह से बाहर किसी अन्य समय में ही पूरे हो सकते हैं।

5 व्यक्ति के लिए एक समूह विषे"ा हमेषा उसका संदर्भ–समूह बना नहीं रहता अर्थात एक व्यक्ति आज जिस समूह का अपना संदर्भ समूह मानता है भवि"य में भी उसी को संदर्भ–समूह मानता रहेगा। ऐसी बात नही है अलग अलग समय परिस्थिति स्थान मनोविज्ञानिक व बौद्धिक स्थिति के अनुसार एक व्यक्ति एक संदर्भ समूह को त्यागकर दूसरे संदर्भ समूह को स्वीकार कर सकता है। इस प्रकार संदर्भ समूह व्यक्ति, स्थिति, स्थान आदि से सम्बन्धित एक सापेक्ष (त्मसंजपअम) समूह है।

6 प्रत्येक संदर्भ–समूह समाज की दृ"टि से भी एक आदर्ष समूह होगा ऐसी बात नहीं है वह समूह तो केवल उस व्यक्ति के लिए आदर्ष होता है जो कि उसे अपना संदर्भ समूह मानता है।

संदर्भ समूह एक ऐसा संदर्भ प्रस्तुत करते हैं जिसके द्वारा व्यक्ति स्वयं का मूल्यांकन करता है और अपनी आदतों का निर्माण करता है। अतः संदर्भ व्यवहार के अध्ययन के एक भाग के रूप में उन प्रक्रियाओं का

व्यवस्थित अध्ययन किया जाना चाहिये जिनके द्वारा एक व्यक्ति दूसरे समूह के मूल्यों को आत्मसात करता है। अर्थात मनोवृत्तियों में निर्माण व मूल्यांकन को संदर्भ–समूह के अध्ययनों के अर्न्तगत स्थान मिलना चाहिए।

संदर्भ समूहों के दो प्रमुख प्रकार मर्टन ने अपनी पुस्तक में दिये हैं। प्रथम आदर्षात्मक प्रकार (Normal Type) है जो व्यक्ति के लिए स्टैण्डर्स आदर्ष प्रतिमानों को निर्धारित करते हैं जो व्यक्ति के लिए स्टैण्डर्स आदर्ष प्रतिमानों को निर्धारित करते हैं और द्वितीय तुलनात्मक प्रकार (Comparision Type) है जो एक तुलनात्मक संदर्भ प्रस्तुत करता है। ये दोनों प्रकार विष्ले"णात्मक दृ"ि से ही भिन्न किए जा सकते हैं क्योंकि एक ही संदर्भ समूह दोनों प्रकार के कार्यो को सम्पन्न कर सकता है। इन दोनों ही संदर्भ समूहों के प्रकारों से भिन्न एक संदर्भ समूह का उल्लेख टरनर (Turner) ने किया है जिसके सदस्य केवल उन परिस्थितियों का निर्धारण करते हैं जिनमें उन्हें कार्य करना होता है इनको टरनर ने अन्तः क्रिया समूहों (Interection Group) की संज्ञा ही है। जो कि व्यक्ति के सामाजिक पर्यावरण में केवल एक भाग होते हैं जिनका अपने उद्देष्यों की प्राप्ति के संदर्भ में उसे ध्यान में रखना होता है लेकिन उसकी कोई तुलनात्मक या आदर्षात्मक दृ"िटकोण से महत्व नहीं होती।

12.4 विभिन्न विद्वानों के विचार

अपने संदर्भ समूह के अनुरूप व्यक्ति अपने व्यवहार को किस ढ़ग से ढ़ालता है इस संबन्ध में विभिन्न विद्वानों में अपने विचारों को अलग अलग रूप में प्रस्तुत किया है। यहॉ कुछ विद्वानों के विचारों का उल्लेख निम्नवत् है।

हाईमैन के विचार (Views Of Hymain)

हाइमैन ने संदर्भ–समूहों का सर्वप्रथम प्रयोग किया और कहा कि व्यक्ति के व्यवहार प्रतिमान (Behaviour Pattern) तथा उसकी प्रस्थिति (tatus) से सम्बन्धित किसी भी विवेचना में हमारे लिए इतना ही जान लेना पर्याप्त नहीं है कि वह किसी समूह का सदस्य है और उस समूह में उस व्यक्ति की वास्तविक स्थिति क्या है अपितु हमारे लिए इस बात का भी ज्ञान होना आवष्यक है कि वह व्यक्ति मनोवैज्ञानिक तौर पर किस समूह से संबन्ध है और अपनी बराबरी वह किस समूह के साथ करता है। यह समूह व्यक्ति की मनोवृत्तियों को नहीं अपितु उसकी स्थिति का आचरण के निर्धारण में भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। वास्तव में संदर्भ समूह व्यक्ति के लिए आद"ार्ा समूह होता है। और इसीलिए व्यक्ति उसी प्रकार का होना चाहता है जैसा कि संदर्भ–समूह के वास्तविक सदस्यगण हैं यही कारण है कि व्यक्ति उन्हीं के अनुरूप अपने को ढ़ालने का प्रयत्न करता है व उसी रूप में अपनी स्थिति को काल्पनिक या वास्तविक तौर पर बनाये रखता है।

शैरिफ तथा शैरिफ के विचार (Views of Sheriff And Sheriff)

संदर्भ–समूह व्यवहार को समझाते हुए 'ैरिफ तथा 'ैरिफ_ने लिखा है कि जब एक व्यक्ति की प्रेरणायें (Motivation) दूसरे व्यक्तियों के समान होती हैं और वह उस समूह संरचना (Group Stucture) जिसका कि वह एक अभिन्न अंग है का निर्माण करने के लिए अन्य लोगों के साथ अन्तः क्रिया करता है तो उस अवस्था में वह उस समूह के मूल्यों आदर्ष–नियमों (Norms), विचारधाराओं आदि को भी अपना लेता है क्योंकि वह समूह उसका अपना समूह होता है और उस समूह के विचार, आदर्ष, मूल्य आदि उसके अपने विचार आदर्ष व मूल्य बन जाते है अर्थात अपने समूह के विचार, आदर्ष मूल्य तथा व्यवहार के साथ व्यक्ति का अपना एक नया समीकरण स्थापित कर लेता है प्रत्येक व्यक्ति का अपना एक समूह होता है। जिसका वह वास्तविक सदस्य होता है और इस नाते उस समूह के साथ उसका इतना अपमान हो जाता है कि वह उस समूह के मूल्य, आदर्ष, नियम आदि को अपने ही मूल्य व आदर्ष नियम मान लेता है उसे इस बात का गर्व होता है कि वह उस समूह का सदस्य है और वह उसका एक अभिन्न अंग है। इसलिए अपने प्रत्येक व्यवहार में व्यक्ति अपने सामने समूह के आदर्ष को ही आदर्ष मानकर क्रियाषील होता है क्योंकि उस समूह के आदर्ष–नियम, मूल्य, व्यवहार प्रतिमान आदि उसके व्यक्तित्व की अमूल्य धरोहर बन जाते हैं अतः उसके अनुभव तथा व्यवहार समूह के आदर्ष नियमों तथा मूल्यों के आधार पर ही करता है। वह अन्य समूहों के व्यक्तियों के व्यवहार का मूल्यांकन भी अपने समूह के मापदण्डों (Norm) द्वारा ही करता है। इसी दृ"टकोण से वही समूह व्यक्ति का संदर्भ समूह होता है। जो उसका अपना आदर्ष समूह होता है। और जिसका वह स्वयं सदस्य होता है।

आधुनिक जटिल समाजों में संदर्भ समूह केवल अपने समूह तक ही सीमित नहीं होता। जिसका कि व्यक्ति वास्तव में सदस्य होता क्योंकि व्यक्ति का आधुनिक जीवन और व्यवहार (अन्तः क्रियाओं) का दायरा केवल अपने समूह तक ही सीमित नहीं है। इसलिए व्यक्ति का व्यवहार केवल उसी समूह द्वारा नियंत्रित व निर्देषित नहीं होता जिसका कि वह वास्तविक तौर पर सदस्य है। ऐसा भी हो सकता है कि उसके अनुभव विचार तथा व्यवहार एक से समूह द्वारा नियंमित व संचालित हो, जिसका वह वास्तव में नहीं है और उस समूह का न होते हुए भी वह अपने व्यवहार का उस समूह का वास्तविक सदस्यों के अनुरूप ढ़ालने का प्रयत्न करता है। उदाहरणार्थ एक गरीब परिवार का लड़का अपने व्यवहार, आचरण, पो"ाक तथा रूचि में एक धनी वर्ग के समरूप होना चाहता है और अपने को उसी के अनुसार दूसरे के सामने प्रस्तुत करता है। ऐसी अवस्था में उस लड़के के लिए वह धनी वर्ग ही संदर्भ–समूह है। क्योंकि उसी के विचार, आदर्ष, मूल्य आदि के साथ वह अपना समीकरण करता है। अथवा करने की आकांक्षा रखता है। वास्तव में इसी प्रकार के समूहों का बोध करवाने के लिए संदर्भ समूह की अवधारणा का विकास हुआ है। इस अर्थ में संदर्भ–समूह वह समूह है जिसका कि व्यक्ति वास्तव में सदस्य नहीं भी हो सकता है पर जो व्यक्ति के व्यवहारों तथा अनुभवों के निर्धारण में बहुत ही महत्वपूर्ण कारण या 'ाक्ति होते हैं। वास्तव में आधुनिक जटिल समाज में व्यक्ति का जीवन केवल उसके अपने परिवार, पड़ोस, वर्ग, जाति तक ही सीमित न रहकर बृहत्तर समाज के अन्य अनेक ऐसे समूहों से सम्बद्ध हो जाता है। जिसका कि वह वास्तव में सदस्य तो होता पर जिनके विचार आदर्ष मूल्य आदि से वह निरन्तर प्रभावित होता रहता है। यह समूह ही उसका संदर्भ–समूह है।

'ैरिफ एवं 'ैरिफ ने इस सम्बन्ध में सदस्यता समूह (Membership-Group) तथा संदर्भ समूह (Reference Group) के बीच पाये जाने वाले प्रकार्यात्मक (Functional) अन्तर का भी उल्लेख किया है। सामान्य रूप से एकाधिक समूहों का वास्तविक आवष्यकताओं की पूर्ति के लिए वास्तव में एकाधिक

समूहों का वास्तविक सदस्य (Actual-Member) बनना ही पड़ता है। वह पुत्र के रूप में परिवार का वास्तविक सदस्य होता है तो विद्यार्थी के रूप में किसी स्कूल या कालेज का, खिलाड़ी के रूप में खेल के समूह का, तो मनोरंजन के लिए किसी क्लब का।

इसी प्रकार वह किसी दफ्तर का, वर्ग का, पड़ौस का, आर्थिक संगठन का, रा"ट्र का और ऐसे ही अनेक समूहों का वास्तविक सदस्य होता है। ये सभी समूह उस व्यक्ति कि सदस्यता–समूह (Membership-Group) है। और इन समूहों के द्वारा ही व्यक्ति के व्यवहारों, मनोवृत्तियों, मूल्यों, आदर्षों आदि का अर्थात उसकी विविध प्रतिक्रियाओं (Reactions) का नियमन व निर्धारण होता है। परन्तु व्यवहारिक स्तर पर एक व्यक्ति की सामाजिक अन्तः क्रियाओं (Inter-acting) तथा प्रतिक्रियाओं का दायरा इससे कहीं अधिक विस्तृत हो सकता है। व्यक्ति वास्तव में एक या कुछ समूह–वि"ोष का सदस्य हो सकता है। पर मनोवैज्ञानिक रूप में (अर्थात मानसिक तौर पर) वह अपने को एक भिन्न समूह से सम्बन्धित मान सकता है और उसी समूह के संदर्भ में अपनी मनोवृत्तियों तथा आकांक्षाओं को नियमित कर सकता है। उदाहरणार्थ मध्यम वर्ग (Middle Class) या श्रमिक वर्ग (Working Class) का सदस्य सचेत या अचेत रूप में अपने को एक उच्च वर्ग से संबन्धित मान सकता है और उसी वर्ग के अनुरूप अपने रहन–सहन तथा अनुभवों को विकसित करने का प्रयत्न भी कर सकता है। ऐसी अवस्था में उस व्यक्ति का समूह (मध्यम वर्ग या श्रमिक वर्ग) उसका सदस्यता समूह कहलायेगा। जबकि जिस उच्च वर्ग के साथ वह व्यक्ति मानसिक तौर पर सम्बन्धित है। और जिसके आदर्षो मूल्यों व व्यवहार प्रतिमानों (Behaviour Pattern) के आधार पर वह अपने व्यवहारों तथा अनुभवों को ढ़ालने का प्रयत्न करता है। उसका संदर्भ समूह कहा जायेगा। अतः यह आवष्यक नहीं कि व्यक्ति जिस समूह का वास्तविक सदस्य (Actual Member) हो उसी के आदर्षों, मूल्यों, तथा मानदण्ड़ों के अनूरूप ही मनोंवृत्तियों, व्यवहारों, अनुभवों आदि का नियमन (Regulation) तथा निर्धारण करें।

उसके व्यवहार प्रतिमान का निर्धारण व नियमन उस वि"ोष समूह के मूल्यों, आदर्षों, आदि के द्वारा भी हो सकता है जिसका कि वह केवल मनोवैज्ञानिक सदस्य (Psychological Member) है यही संदर्भ–समूह और उसके द्वारा निर्धारित व्यवहार का रहस्य है।

क्लाइवर्ग के अनुसार (Views of Klineberg)

प्रो0 स्लाइबर्ग ने संदर्भ समूह व्यवहार के वि"ाय में लिखते हुए ऐसे समूहों की दो प्रमुख विषे"ताओं का उल्लेख किया है –

1. **संदर्भ–समूह काल्पनिक** (Imaginary) भी हो सकते हैं जब हम इस प्रकार का व्यवहार करते हैं जिन्हें कि हम सर्वोत्तम लोगों (Best People) के व्यवहार के समान मानते हैं तो हो समता है कि उन सर्वोत्तम लोगों के व्यवहार के संबन्ध में हमें जो कुछ भी ज्ञात है वह बिल्कुल ही वास्तविक न होकर काल्पनिक ही हो। उदाहरणार्थ जब निम्न आर्थिक वर्ग के लोग उच्च वर्ग के लोग बनना

चाहते हैं तो उस प्रयत्न में जो कुछ भी आचरण वे करते हैं वह उच्च वर्ग के लोगों के आचरणों का व्यवहार प्रतिमान का वास्तविक नहीं अपितु काल्पनिक रूप ही होता है।

अपने नैतिक मान (Moral Standard) जैसे महत्वपूर्ण वि"ाय के सम्बन्ध में अथवा चाय के प्याले को पकड़ने के तरीके जैसे साधारण वि"ाय के संबन्ध में हम अपने व्यवहार को उस समूह के समरूप कर सकते हैं तो जिसका कि वास्तविक अस्तित्व ही न हो या जो ठीक उस प्रकार का व्यवहार न करता हो जैसे कि हम कर रहे हैं।

2. प्रो0 क्लाइनबर्ग का कथन है कि संदर्भ–समूह 'नकारात्मक' (Negative) भी हो सकता है कुछ ऐसे समूह होते है जिनसे हम निकटतम संबन्ध रखना चाहते हैं पर कुछ ऐसे समूह भी हो सकते हैं जिनसे हम यथासम्भव दूर रहना इसलिए चाहते हैं कि इस प्रकार के समूह की नीति एक विषे"ा प्रकार के मूल्यों की समर्थक है इसी आधार पर हम अपने व्यवहारों, आदर्षों तथा मूल्यों को एसा रूप देने हेतु प्रयत्नषील होते हैं जोकि उस समूह से बिलकुल भिन्न हों, यह विपरीत समूह एक नकारात्मक संदर्भ–समूह (Negative Reference Group) ही होगा, क्योंकि इसी समूह कि संदर्भ में हम अपने व्यवहार हो विपरीत रूप ही देना चाहेगें। और उसके लिए सचेत प्रयत्न भी करेंगे उदाहरणार्थ आधुनिक समय में अधिकतर अमेरिका–निवासियों के लिए सोवियत रूस एक नकारात्मक संदर्भ समूह का प्रतिनिधित्व करता है। यही बात सोवियत रूस के लोगों के लिए अमेरिका के सम्बन्ध में लागू होती है।

अतः क्लाइनबर्ग के अनुसार संदर्भ समूह व्यवहार में यह आवष्यक नहीं कि जिस समूह की हम नकल कर रहे हैं या जिसे हम अपना आदर्ष मान रहे हैं उसके विषय में हमें स्प"ट और प्रत्यक्ष ज्ञान हो न ही यह जरूरी है कि उस समूह का वास्तविक अस्तित्व हो इसी प्रकार यह भी जरूरी नहीं है कि संदर्भ–समूह हमारे लिए एक सदैव एक आदर्ष समूह ही होगा। वह समूह हमारे लिए एक विपरीत आदर्ष का प्रतिनिधित्व कर सकता है। इस पर भी वह समूह हमारा संदर्भ–समूह है क्योंकि इसी समूह के संदर्भ में हम अपने व्यवहारों, आदर्षों तथा मूल्यों को एक विपरीत दिषा की ओर मोड़ना चाहते हैं और एक विपरीत मान (व्यचवेपजम ैजंदकंतक) को बनाये रखता है।

न्यकॉम्ब के विचार (Views of Newcomb)

प्रो0 न्यूकॉम्ब का मत है कि संदर्भ–समूहों का अस्तित्व वास्तव में हो सकता है एक व्यक्ति के लिए वह समूह संदर्भ–समूह हो सकता है जिसका कि सदस्य वह कदापि न रहा हो अथवा जो कि बहुत पहले ही समाप्त हो गया हो यह संदर्भ–समूह अंषतः या पूर्णतया काल्पनिक समूह (Fictious Group) हो सकता है इस अर्थ में संदर्भ–समूह का वास्तविक अस्तित्व होना या न होना उतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना कि यह बात संदर्भ समूह के आद"ार्ा मूल्य, विचार आदि ही वास्तव में व्यक्ति कि व्यवहार, मूल्य, आदर्ष आदि को प्रभावित करते हैं।

एक व्यक्ति का सदस्यता समूह (Membership Group) अर्थात वह समूह जिसका कि वह वास्तव में सदस्य है उसका संदर्भ समूह भी हो सकता है अर्थात एक व्यक्ति का सदस्यता समूह किस सीमा तक उसका संदर्भ–समूह भी बना रहेगा। यह इस बात पर निर्भर करता है कि उस समूह की सदस्यता से उसे कितना संतो"ा या असंतो"ा प्राप्त होता है न्यूकॉम्ब ने कहा है कि

एक समूह के सदस्यगण अपनी योग्यता, क्षमता, व्यक्तिगत आवष्यकताओं, व्यक्तित्व संरचना आदि के आधार पर एक दूसरे से भिन्न होते हैं अर्थात एक ही समूह के विभिन्न सदस्यों में व्यक्तिगत भिन्नताऐं (Individual Differences) होती हैं। इसलिए उस समूह के सदस्य के रूप में उन्हें अलग–अलग मात्रा में संतो"ा भी प्राप्त होता है। इतना ही नहीं अपनी सदस्यता समूह से एक व्यक्ति को असंतो"ा भी प्राप्त हो सकता है। असंतो"ा इस कारण होता है कि एक समूह में जिसका कि व्यक्ति वास्तव में सदस्य है उसके जो सुविधायें व अवसरों से कम हैं आधुनिक गतिषील समाज में तो एक व्यक्ति के लिए यह बहुत ही सरल है कि वह समूह की सदस्यता को छोड़कर दूसरे समूह की सदस्यता को ग्रहण कर सकता है। यही कारण है कि एक समूह के सदस्य के रूप में विभिन्न व्यक्ति उस समूह से अलग–अलग मात्रा में संतो"ा या असंतो"ा का अनुभव करते हैं जब असंतो"ा की भावना अधिक हो जाती है तो कम से कम मानसिक तौर पर वह अपने को उस समूह से सम्बद्ध मान बैठता है। जिससे उसे अधिक संतो"ा प्राप्त होने की आषा है इस प्रकार वह व्यक्ति अपने सदस्यता समूह से मानसिक तौर पर अलग हो जाता है और उस अवस्था में वह समूह उसका संदर्भ–समूह नहीं रह जाता उसके स्थान पर वह समूह उस व्यक्ति का संदर्भ–समूह बन जाता है जिसके साथ व्यक्ति अपने को वास्तविक या काल्पनिक तौर पर सम्बद्ध कर लेता है और उसी को अपना आद"ार्ा मानकर अपने व्यवहार, मूल्य तथा आदर्षो को उसी समूह के अनुरूप ढ़ालने का प्रयत्न करता है क्योंकि उसके मन में यह विष्वास घर कर लेता है कि ऐसा करने पर उसे अधिक संतो"ा प्राप्त होगा।

न्यूकॉम्ब (Newcomb) का यह भी विचार है कि वास्तविक सदस्यता समूह विभिन्न रूपों में व्यक्ति कि लिए सकारात्मक (Positive) और नकारात्मक (Negative) दोनों ही प्रकार के संदर्भ समूह के रूप में कार्य कर सकता है। उदाहरणार्थ एक हिन्दू युवक अपने परिवार की अधिकतम सामान्य मनोवृत्तियों, मूल्यों तथा आदर्षों के प्रति श्रद्धावान हो सकता है और उनको अपने आचरण या व्यवहार के निर्देषक कारक के रूप में स्वीकार भी कर सकता है। इस रूप में उसका वह परिवार उसके लिए सकारात्मक संदर्भ–समूह कि रूप में कार्य करता है पर यह भी हो सकता है कि वही युवक अपने ही परिवार के कुछ आदर्षों तथा मूल्यों का समर्थन करने से इन्कार करता हो। उदाहरणार्थ – वह अन्तर्विवाह (Endegrny) के नियम का अर्थात अपनी जाति के अन्दर ही विवाह करता है यहॉ तक कि खुले तौर पर इस आद"ार्ा का विरोध करके अन्तर्जातीय विवाह (Intercaste Marriage) कर बैठता है उस अवस्था में उसका परिवार उसके लिए नकारात्मक संदर्भ समूह बन जाता है। इसी प्रकार वह समूह भी एक व्यक्ति का सकारात्मक अथवा नकारात्मक संदर्भ–समूह बन सकता है। जिसका कि वह व्यक्ति वास्तव में सदस्य नहीं है।

12.5 मर्टन के विचार (View of Merton)

स्माजषास्त्र के क्षेत्र में संदर्भ समूह का प्रथम वैज्ञानिक वि"लेषण करने का श्रेय अमेरिकी समाजषास्त्री आर0 के0 मर्टन को जाता है। अमेरिकन सोल्जर (The American Soldier) नामक कृति में राबार्ट किग्सले मर्टन तथा रोसी ने संदर्भ–समूह की अवधारणा को समझाने का प्रयत्न किया है इस संबन्ध में उनका निष्कर्ष यह है कि एक व्यक्ति का संदर्भ–समूह उसका अपना अन्तः समूह अर्थात वह समूह हो सकता है जिसका कि वह वास्तव में सदस्य (Membership Group or In-group) है और बाह्य समूह भी हो

सकता है जिसका कि सदस्य नहीं है (Non-membership Group or Out-group) प्रथम अवस्था में अन्तः समूह (In-Group) था अपने ही समूह के सदस्य निर्दे"ा तंत्र (Frame of Reference) का कार्य करते हैं जबकि दूसरी अवस्था में बाह्य समूह (Out-Group) अथवा दूसरे समूह के सदस्य इस निर्देष तंत्र (Frame of Reference) के लिए चुने जाते हैं।

अतः मर्टन के अनुसार संदर्भ–समूह का सिद्धान्त हमें यह बताता है कि व्यक्ति अन्तः समूह अथवा वाह्य समूह को किस प्रकार अपने व्यवहार का निर्देषक मानने लगता है और उस समूह से अपना संदर्भ स्थापित कर लेता है। उपरोक्त अध्ययन के आधार पर संदर्भ समूह से सम्बन्धित अपने विचारों को मर्टन ने इस प्रकार स्प"ट करने का प्रयत्न किया है।

- **बहुल संदर्भ समूह (Multiple Reference Group)** – इसके अर्न्तगत मर्टन ने दो प्रकार के संदर्भ समूह का उल्लेख किया है
- **परस्पर विरोधी संदर्भ–समूह (Conflicting Reference Group)** – कभी कभी व्यक्ति के जीवन में एकाधिक परस्पर विरोधी संदर्भ समूह आ जाते हैं और उस अवस्था में उसके सामने यह समस्या होती है कि वह उनसे किसको चुने अथवा किस समूह को अपना आदर्ष माने ऐसी स्थिति में व्यक्ति बहुधा परिस्थिति की समानता से प्रभावित होता है और उस समूह को पूर्णतया अनजाना और भिन्न परिस्थिति वाला है।
- **निरन्तर सम्पर्क वाले संदर्भ–समूह** (Mutually Sustaining Reference Group) – मर्टन का नि"क"र्ा है कि जिस आयु समूह अथवा वैवाहिक स्थिति या ैक्षिक स्तर वाले समूह के निरन्तर सम्पर्क में व्यक्ति रहता है उसी के अनुसार उसकी मनोवृत्तियॉ ढ़लने लगती है। मर्टन की मान्यता है कि जिस समूह के साथ व्यक्ति का सामाजिक सम्बन्ध जितना निरन्तर व दीर्घ होगा वही समूह उस व्यक्ति के जीवन को अधिक प्रभावित भी करेगा।

3. **दूसरे विशि"ट** (Significant Others) – मर्टन का कथन है कि प्रत्येक व्यक्ति के सामने कुछ दूसरे प्रति"ठत समझे जाने वाले लोगों की प्रतिभा होती है जिन्हें कि हम दूसरे विषि"ट (Significant Others) कह सकते हैं ये लोग उस व्यक्ति की निगाहों में आदर्ष होते है। और इसलिए वह इन व्यक्तियों के साथ समरूपता स्थापित करना चाहते हैं अर्थात उन दूसरे विषि"ट व्यक्तियों जैसा बनना चाहते हैं यही कारण है कि इन व्यक्तियों में वह स्वयं अपनी प्रतिमा (Image) तथा मूल्यांकन का प्रतिबिम्ब (Reflection) देखता है उनके मूल्यों आदर्षों तथा आचरण को ग्रहण करता है ताकि उन दूसरे विषि"टों की भॉति वह स्वयं भी विषि"ट बन सकें। यही कारण है कि निम्न समूह के लोग उच्च समूह को प्रभावषाली व प्रति"ठा वाले समुह के रूप में न केवल देखते हैं अपितु उनके मूल्यों, आदर्षों तथा आचरणों को ग्रहण करते हुए सामाजिक सीढ़ी के ऊपर चढ़कर उच्च समूह के पास पहुचने का भी प्रयत्न करते हैं।
4. **समरूपता और असमरूपता (Conformity and Non-Conformity)** – मर्टन का कथन कि संदर्भ समूह का अपना एक प्रकार्यात्मक महत्व (थ्नदबजपवदंस प्उचवतजंदबम) यह है कि वह व्यक्ति का उसके साथ समरूपता स्थापित करने का प्रेरित करता है जिसके फलस्वरूप उस व्यक्ति का व्यवहार, आदर्ष व मूल्य उस समूह के मूल्य, आदर्ष तथा आचरणों से भिन्न हो जाता है जिसका

कि वास्तव में सदस्य है अर्थात उसकी अपने समूह से असमरूपता उत्पन्न हो जाती है परंतु उसका ऐसा करना अर्थात संदर्भ–समूह में समरूपता और अपने समूह में असमता स्थापित करना उसी सीमा तक वांछनीय समझा जायेगा जहॉ तक वह सामाजिक व्यवस्था के लिए अकार्यात्मक (Dysfunctional) न हो पर यह आवष्यक नहीं हैं कि वह समूह के साथ जिसका वह सदस्य नहीं है समरूपता सथापित करना ही आकार्यात्मक हो यह बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करेगा कि उसके ऐसा करके उसके अपने समूह के स्थापित मूल्यों को कितनी ठेस पहुॅचेगी।

5. संदर्भ समूह का प्रकार्य और अकार्य (Function and Dyprivation of Reference Group) – आर0 के0 मर्टन ने संदर्भ समूह की अवधारणा को समाज में स्थापित किया इन्होंने सापेक्षिक वंचिता (त्मसंजपअम क्मचतपअंजपवद) के आधार पर अमेरिकन सोल्जर के अध्ययन के आधार पर संदर्भ समूह की चर्चा की।

यदि एक व्यक्ति अपने इच्छित समूह में मिला लिया जाता है तो उसके लिए क्रियात्मक है क्योकि इससे उसकी दक्षता एवं कार्यकुषलता में वृद्धि होती है यहीं पर मर्टर ने ***Anticipatory Socialization*** की व्याख्या की है पर यदि व्यक्ति इच्छित समूह में नहीं मिलाया जाता है तो इसका बुरा प्रभाव पड़ता है। उसकी सृजनषीलता कम होती है। यहीं पर मार्जिनल मैन की चर्चा की है।

6. सदस्यता और असदस्यता संदर्भ–समूह (Membership and Non-membership Reference Group) – एच0 एम0 जानसन के अनुसार कभी कभी एक व्यक्ति अपने ही समूह को आदर्ष समूह मानकर अनुकरणीय व्यवहार के प्रयास करता है इसे सदस्यता संदर्भ समूह कहते हैं जब व्यक्ति दूसरे समूह को अपना आदर्ष मान लेता है तो वह असदस्यता संदर्भ समूह कहलाता है।

आर0 के0 मर्टन

आर0 के0 मर्टन ने संदर्भ समूह की चर्चा में कहा कि ये लोग अन्य समूहों को अपना संदर्भ समूह बनाना चाहते हैं

- जो योग्य कुषल क्षमता एवं आगे बढ़ने के योग्य होते हैं
- जो त्मसंजपअम क्मचतपअंजपवद की भावना से ग्रस्त होते हैं

त्मसंजपअम क्मचतपअंजपवद वह मानसिक अवस्था है जिसमें व्यक्ति वास्तविक अथवा आवष्यकीय कारणों से अपनी अवस्था से सन्तुष्ट नहीं होता है एवं अपनी अवस्था में सकारात्मक परिवर्तन करना चाहता है। इसलिए मर्टर ने इस धारणा का प्रयोग ऊपर जाने वाली सामाजिक गति"ाीलता के संदर्भ में किया है।

मर्टन ने स्टाफर के अध्ययन से अफसरों एवं अफसरी में प्रन्नित हो सकने वाली कारापालों का उदाहरण दिया है जो कारापाल उन्नति चाहते थे एवं अपनी वर्तमान अवस्था से सन्तु"ठ नहीं थे वे ही अफसरों के समूह को संदर्भ समूह के रूप में स्वीकार करते थे।

12.6 सन्दर्भ समूह एवं सामाजिक गतिशीलता

भारत में पहले जब संस्कृतिकरण की प्रकिया थी तब संस्कृतिकरण करने वाली जातियों के साथ भी यही बात लागू होती थी। सुरजीत सिन्हा ने गाडो की राजपूतीकरण की प्रकिया से सम्बन्ध में मजूमदार ने रामपुर के नाईयों के सम्बन्ध में अथवा एफ0 जी0 बैली ने बीसीपाड़ा के पानों के सम्बन्ध में भी यही बात कही है । सस्कृतिकरण करने वाली जाति समूह तुलनात्मक रूप से मजबूत होता था और अपनी वर्तमान अवस्था से सन्तो"ा के कारण ही सामाजिक प्रति"ठा के सोपान पर ऊंचा चढ़ने के लिए सस्कृतिकरण की ओर प्रवृत्त होता था।

- **संदर्भ समूह का प्रभाव** (**Consequences of Reference Group**) – संदर्भ समूह स्थिति के कारण सामाजिक गतिषीलता में सरलता होती है एवं इससे समाज में तनाव कम पनपता है मर्टन ने कहा यदि योग्य एवं समर्थ व्यक्तियों को ऊपर जाने का मौका न दिया जाए तब इससे असंतो"ा बढ़ेगा जो समाज की स्थिरता के लिए घातक है।

  मर्टन का कथन है कि व्यक्ति पर एक तो प्राथमिक सदस्यता और अर्न्तसमूहों का प्रभाव पड़ता है और दूसरी ओर द्वितीयक असदस्यता और बाह्य समूह भी उसके व्यवहारों और प्रवृत्तियों को प्रभावित करते हैं।

- **आर्दशात्मक और तुलनात्मक संदर्भ समूह (Normative and Comparative Reference Group**) – समाज में जितने भी संदर्भ समूह हैं इसमें एक प्रकार आदर्षात्मक समूहों का है ये वे समूह हैं जो अपने सदस्यों के लिए मानदण्ड, मूल्य एवं व्यवहार के प्रतिमान निष्चित करते हैं भारतीय संदर्भ में द्विज जातियों के लिये कई समूह है जो मद्यपान, मांसाहारी भोजन आदि के प्रतिबन्ध पर जोर देते हैं इन समूहों के व्यवहार के अपने मापदण्ड होते हैं यदि समूह द्वारा निर्धारित आदर्षो का परिपालन सदस्य नहीं करते तो इसके लिये दण्ड का प्रवधान भी होता है।

  तुलनात्मक संदर्भ समूह वे हैं जिनके व्यक्ति अपने या दूसरों के व्यवहार का तुलनात्मक आधार मानता है। इस तरह के समूह व्यक्ति के अपने स्वयं या दूसरे व्यवहार के मूल्यांकन के लिए सहायक होते हैं ग्रामीण समूह जब 'ाहरी समूह द्वारा निर्धारित व्यवहार के प्रमानों से अपने समूह की तुलना करते हैं तो वस्तुतः यह तुलनात्मक मूल्यांकन है।

  इस भॉति जहॉ आदर्षात्मक संदर्भ समूह व्यक्तियों को इस बात के लिए अभिप्रेरित करते हैं कि वे अपने समूहों के मानदण्डों और मूल्यों को स्वीकार करें उनका सात्मीकरण करें वहीं तुलनात्मक संदर्भ समूह व्यक्तियों के व्यवहारों का तुलनात्मक मूल्यांकन करने में सहायक होते हैं।

- **धनात्मक और ऋणात्मक संदर्भ समूह (Positive and Negative Reference Group)** –प्रो0 न्यूकोम्ब ने संदर्भ समूह को धनात्मक तथा ऋणात्मक संदर्भ समूह में बॉटा है धनात्मक संदर्भ समूह वे हैं जिनसे व्यक्ति जुड़ने की आकांक्षा रखता है परन्तु ऋणात्मक संदर्भ समूह वे हैं जिनसे व्यक्ति एक खास दूरी बरतता हैं।

  जैसे – एक बैक कर्लक के लिए चपरासियों का समूह जहॉ ऋणात्मक समूह है वहीं अफसरों का समूह धनात्मक संदर्भ समूह है।

- **वास्तविक एवं काल्पनिक संदर्भ समूह (Real and Unreal Referance Group½** – जोनसन का कहना है कि संदर्भ समूह वास्तविक भी हो सकता है और काल्पनिक भी। काल्पनिक समूह का उदाहरण – मार्क्सवादियों के लिए वर्गविहिन समाज तथा गॉधीवादियों के लिए रामराज आदि–2 इसी तरह हिन्दुओं में स्वर्ग एवं नरक काल्पनिक धनात्मक एवं ऋणात्मक संदर्भ समूह।

संदर्भ व्यक्ति या संदर्भ समूह का चुनाव – अमेरिकन समाजषास्त्री रार्बट किंग्सले मर्टन के अनुसार एक व्यक्ति के द्वारा अपने संदर्भ के रूप में केवल समूह को नहीं अपितु व्यक्ति को भी चुना जा सकता है इन दोनों का चुनाव कैसे किया जाता है उसे मर्टन ने इस प्रकार समझाया है।

1 संदर्भ–व्यक्ति का चुनाव आदर्ष भूमिका (Role-Modal) के आधार पर किया जाता है ऐसा होता है कि एक व्यक्ति को किसी दूसरे व्यक्ति की कुछ भूमिकायें अच्छी लगती हैं और वह उन्हें केवल आदर्ष मानने लगता है अपितु उन भूमिकाओं को अपने जीवन में भी निखारने का प्रयत्न करता है। **उदाहणार्थ** – एक विद्यार्थी को अपने किसी षिक्षक का पढ़ाने का ढ़ंग व विद्यार्थियों के साथ व्यवहार करने का ढ़ंग अच्छा लगता है तो आगे चलकर षिक्षक का पेषा अपनाने पर वह विद्यार्थी उसी षिक्षक को अपना संदर्भ–व्यक्ति (त्मिमितमदबम प्दकपअपकनंस) मान लेता है। और षिक्षक के रूप में उनके आचरणों व भूमिकाओं को अपने जीवन में भी निखारने का प्रयत्न करता है।

2 संदर्भ–समूह का चुनाव सामाजिक जीवन में अपने को अधिक प्रति"ठत देखने की इच्छा से प्रेरित होता है व्यक्ति की यह अभिला"ाा होती है कि वह सामाजिक सीढ़ी से ऊपर की ओर जाये। इसके लिए एक आधार की आवष्यकता होती है अतः वह किसी ऐसे समूह को चुन लेता है जो कि उसकी निगाह में आदर्ष व अधिक प्रति"ठा सम्पन्न है इसी से यह स्प"ट है कि सामाजिक प्रति"ठा पाने की इच्छा व्यक्ति को उसे दूसरे समूह का चुनाव करने की प्रेरणा देती है जिसका वह सदस्य नहीं हैं।

संदर्भ–समूहों के चुनाव को प्रभावित करने वाले तथ्य (Facts influencing the Selection of Reference Group) – मर्टन ने उन तथ्यों की एक सूची प्रस्तुत की है जो कि संदर्भ समूहों के चुनाव को प्रभावित करते हैं –

1 समूहों की सदस्यता के लिए सामाजिक परिभा"ाएें या नियमों का स्प"ट अथवा अस्प"ट होना।
2 समूह में सदस्यों की लिप्त रहने की मात्रा।
3 समूह में सदस्यता की वास्तविक अवधि (Actual Duration)।
4 समूह में सदस्यता की अपेक्षित (Expected) अवधि।
5 समूह के अस्तित्व की अपेक्षित अवधि।
6 समूह के अस्तित्व की वास्तविक अवधि।
7 समूह की मुक्त (Open) अथवा बन्द (Closed) प्रकृति ।
8 किसी समूह का या उसके निर्माणक अंगों का सापेक्षिक (Relative) आकार।
9 वास्तविक तथा महत्वपूर्ण सदस्यों का अनुपात।
10 किसी समूह का या उसके निर्माणक अंगों का निरपेक्ष आकार।
11 सामाजिक विभेदीकरण की मात्रा।

12 संसवरण की आकृति Shape) तथा ऊंचाई।
13 सामाजिक एकता के प्रकार तथा मात्रा।
14 समूह की एकता।
15 समूह के सामाजिक सम्बन्धों की प्रकृति।
16 समूह के अन्तगर्त सामाजिक अन्तक्रिया।
17 समूह के आदर्ष नियमों (Normè) के प्रति आपेक्षिक समरूपता की सीमा, पथ–भ्रष्ट व्यवहारों के प्रति सहनषीलता।
18 आदर्षात्मक नियन्त्रणों की व्यवस्था।
19 समूह की भूमिकाओं के मूल्यांकन की मात्रा।
20 समूह की परिस्थिति (Ecological) संरचना।
21 समूह की सवायत्तता (Autonomy) या निर्भरता (Dependence) की मात्रा।
22 समूह के संरचनात्मक संदर्भ के स्थायित्व की मात्रा।
23 समूह के स्थायित्व की मात्रा।
24 समूह के स्थायित्व (Stability) स्थापित करने के तरीके।
25 समूह के सापेक्षिक (Relative) सामाजिक प्रति"ठा।
26 समूह की सापेक्षिक 'ाक्ति।

27.8 संदर्भ समूह के प्रकार्यात्मक पक्ष /सामाजिक गतिशीलता(Functional Aspects Of Reference Group) –

संदर्भ–समूह, व्यक्ति को (उस समूह के) साथ समरूपता स्थापित करने की प्रेरणा देता है जिसके कारण व्यक्ति अपने संदर्भ–समूह के मूल्यों, आदर्षों तथा आचरणों को अपने जीवन में उतारने के लिए प्रयत्नषील होता है फलस्वरूप व्यक्ति के व्यक्तित्व में ने केवल अनेक नये मूल्य, आदर्ष व्यवहार–प्रतिमान, विचार, प्रतिमायें (Imagè) आदि सम्मिलित हो जाते हैं अपितु यह सम्भावना भी रहती है कि उसकी सामाजिक स्थिति भी ऊॅची उठ सकेगी। एक ऐसी सीख या भूमिका जो भविष्य में करनी है पहले से तैयार करना या पहले से निभाना। उदाहरण के लिए षिक्षक बनने से षिक्षक का नकल करना या ि"क्षक षिक्षक जैसा व्यवहार अपनाना।

व्यक्ति का प्रत्याषित सामाजीकरण (Anticipatory Socialization) की दिषा में संदर्भ–समूह का प्रकार्य (Function) उल्लेखनीय है। प्रत्याषित सामाजीकरण (Anticipatory Socialization) केवल मुक्त सामाजिक संरचना (Open Social Structure) में प्रकार्य (Function) के रूप में होता है बन्द (Closed) सामाजिक संरचना में यह अकार्य (Dysfunction) का रूप धारण की लेता है क्योंकि ऐसे समाज परम्परागत नियमों, आदर्षों तथा मूल्यों के द्वारा आबद्ध होने को कारण एक समूह के सदस्य द्वारा अपने समूह के मूल्यों व व्यवहारों को त्याग कर दूसरे समूह के मूल्यों व व्यवहारों को अपनाना बुरा माना जाता है और उसका विरोध भी किया जाता है एसी स्थिति में सामाजिक जीवन में तनाव व विघटन की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। अतः दूसरे समूह के मूल्यों व व्यवहारों को अपनाने के बाद भी व्यक्ति के लिए

अपनी आकांक्षाओं को पूरा करना सम्भव नहीं होता। इस संदर्भ मे ंमर्टन ने हमारा ध्यान उस सत्य की ओर आकर्"ात किया है कि जिस अनुपात में एक व्यक्ति दूसरे समूह (संदर्भ–समूह) के मूल्यों, आदर्षों व आचरणों के साथ अपनी समरूपता स्थापित करता है उसी अनुपात में वह अपने समूह के मूल्यों तथा आचरणों से दूर होता जाता है और यदि उसके अपने समूह के अन्य सदस्य इस बात को पसन्द नहीं करते तो उस व्यक्ति व "ा"ा समूह के बीच. सामाजिक सम्बन्ध बिगड़ने लगते हैं उस व्यवस्था में अगर व्यक्ति लौटकर अपने ही समूह के मूल्यों व आचरणों को फिर से अपनाना चाहे तो भी उसे ऐसा करने का अवसर नहीं दिया जाता।

अतः दूसरे समूहों मूल्यों व आचरणों को अपनाने की प्रक्रिया एक बार 'ाुरु हो जाने पर वह संचित होती चली जाती है और व्यक्ति अपनी मनोवृत्तियों, मूल्यों तथा सामाजिक सम्बन्धों के क्षेत्र में अपने समूह से धीरे–धीरे अलग होता जाता है यहॉ तक कि अन्त में वह अपने समूह से बिल्कुल विचित्र हो जाता है और संदर्भ–समूह को ही पूर्णतया स्वीकार कर लेता है। ऐसा विषे"ाकर उस अवस्था में होता है जबकि उसका अपना समूह पुनः उसे अपने सदस्य के रूप में ग्रहण करने से इनकार कर देता है।

इस संदर्भ में यह उल्लेख करना आवष्यक है कि मर्टन का कहना है कि जब कोई व्यक्ति संदर्भ–समूह के व्यवहार, आचरण, नियम को अपनाने लगता है तो अपने समूह से अलग होने लगता है और मनोवैज्ञानिक रूप से संदर्भ–समूह सें जुड़ जाता है। अगर वह संदर्भ–समूह में 'ाामिल नहीं हो पाता है तो ऐसी स्थिति में 'सीमान्त मानव' (Marginal Man) बन जाता है।

27.9 सीमान्त मानव (Marginal Man) –

वह व्यक्ति न तो संदर्भ–समूह और नहीं अपने समूह का रहता है ऐसी स्थिति में व्यक्ति का अपने समूह में भी कार्य करने में मन नहीं लगता है सृजनषीलता की कमी हो जाती है।

आगे मर्टन का कहना है कि अगर व्यक्ति संदर्भ–समूह का हो जाता है तो उसकी सृजनषीलता, कार्य करने की क्षमता बढ़ जाती है। उदाहरण के तौर पर यदि कोई व्यक्ति आई0 ए0 एस0 बनना चाहता है तो आई0 ए0 एस0 उसका संदर्भ–समूह है अगर वह आई0 ए0 एस0 बन जाता है तो उसके कार्य करने की क्षमता भी बढ़ जाती है। अगर नहीं बनता तो 'सीमान्त मानव' बन जाता है और उसकी सृजनषीलताघटती है।

वेब्लन के विचार (Views of Veblen) –

समाजषास्त्र के क्षेत्र में थर्सटीन वेब्लान ने अपनी पुस्तक 'द थ्यूरी आफ लीजर क्लास' (The theory of Leisure Class½ में विलासी वर्ग की अवधारणा दी । विलासी वर्ग वह वर्ग है जो पूॅजीवादी समाज के अधिकांष लाभ को संचित करता है। इस वर्ग की जीवन "ौली आडम्बरपूर्ण, फिजूलखर्ची, आलसीपन, लालचीपन, तड़क–भड़क उपभोग से भरी है। इसे प्रस्तुत करते हुए संदर्भ समूह का अप्रत्यक्ष उल्लेख किया है।

उसके अनुसार विलासी वर्ग में भी ऊंच–नीच का संस्तरण होता है जो लोग धन और वंष दोनों में ही ऊंची श्रेणी के होते हैं वे अपने को उस वर्ग से ऊंचा समझते हैं जो धन या वंष के सम्बन्ध में उनसे कमजोर होते हैं समाज में इसी प्रकार का ऊंच–नीच कर एक संस्तरण देखने को मिलता है। प्रत्येक वर्ग अपने से ऊपर

वाले वर्ग को अपना आद"ार्ा (या संदर्भ–समूह) मानने लगता है और विलास व उपभोग के सम्बन्ध में उसी ऊपर वाले वर्ग का अनुसरण करने का भरसक प्रयत्न करता है इस रूप में आदर्ष मूल्य, व्यवहार आदि अनुकरण करना एक प्रकार से सम्मान का या गर्व करने योग्य विषय माना जाता है क्योंकि इसके द्वारा व्यक्ति अपनी बराबरी ऊपर के वर्ग से कर सकता है जिससे दूसरे लोगों की दृ"ट में उसकी स्थिति स्वतः ही ऊंची उठ जाती है। इसी कारण एक समूह या वर्ग के सदस्य अपने संदर्भ–समूह के आदर्षों व व्यवहार के मानों (Standards of Behaviours) के निकट पहुंचने का यथा साध्य प्रयत्न करते हैं वि"ोषकर तीज–त्यौहार के अवसर पर खान–पान, वे"ा–भू"ाा आदि के वि"ाय में उच्च वर्ग की नकल की जाती है और इसीलिए प्रायः यह देखा जाता है कि ऐसे तीज–त्यौहार के मौके पर अनेक परिवार अपनी हैसियत से भी अधिक खर्च कर बैठते हैं यहॉ तक कि ऐसे अवसरों पर कर्ज लेकर भी अपने खान–पान व पो"ाक को उच्च वर्ग के समान लाने का प्रयत्न किया जाता है।

अपने संदर्भ–समूह का अनुकरण करने की छूट व्यक्ति में इस रूप में भी व्यक्त होती है कि नीचे के वर्ग या मध्य वर्ग के लोग भी जिनकी आय अधिक नहीं होती। अपने घर के अन्दरूनी वि"ायों में या घर–गृहस्थी के खर्चो में बचत करके बाह्य ठाट–बाट को यथासम्भव ऊॅचे स्तर पर रखने का प्रयत्न करते हैं इसी प्रकार इस समीकरण की प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति सदस्यों के व्यवहार में भी होती है वे अधिक से अधिक अच्छे गहने तथा पो"ाकों से अपने को सजाकर तथा उच्चस्तरीय व्यवहार प्रतिमान (Behaviour Pattern) को अपनाकर अपने पति या पिता के परिवार की प्रति"ठा को ऊॅचा बनाये रखने का एक मनोवैज्ञानिक प्रयत्न करती है।

मध्यम वर्ग के परिवारों में यह भी देखा गया है कि परिवार का कर्ता जीवन सम्बन्धी आवष्यकताओं को पूरा करने में इतना अधिक व्यस्त हो जाता है कि उसके जीवन में विलास व भोग का नामोनिषान नहीं होता। परन्तु उसकी पत्नी या बेटियॉ उसकी उस कमी को पूरा करती हैं और अपने जीवन स्तर व व्यवहार प्रतिमानों में ऐ"ा–आराम, वे"ा–भू"ाा व आडम्बरपूर्ण चाल–ढाल का इस भॉति समावेष करती हैं कि वे उच्च वर्ग के सदस्यों के समान हो जायें। इस संदर्भ में बेब्लन ने बिगड़े नबाबों के एक विषे"ा वर्ग का भी उल्लेख किया है इनका संदर्भ–समूह स्वयं उनका अपना ही वर्ग होता है जिसका कि सदस्य अतीत में वे स्वयं नहीं अपितु उनके बाप–दादा रहे हैं इसलिए यह वर्ग उन लोगों का होता है जिनके बाप–दादा कभी अत्यधिक प्रति"ठत व धनी रहे हैं। और जिन्हें 'ारीफाना आदर्षो व ऐष–आराम करने की आदत तो अपने बाप–दादाओं से विरासत के रूप में मिल जाती है पर उस प्रकार के ऐष–आराम की जिन्दगी बिताने के लिए आवष्यक पैतृक धन उन्हें न तो अपने प्रयत्नों द्वारा उसे प्राप्त करने की कभी कोषिष की है। इस पर भी अपने पूर्वजों के वर्ग में प्रचलित ठाट–बाठ, ऐष आराम व भोग विलास सम्बन्धी सभी आदतों व व्यवहार प्रतिमानों को ही वे आदर्ष मान लेते हैं और उस उच्च स्तर को बनाये रखने के लिए किसी भी कीमत को अदा करने को तैयार रहते है। उन्हें अपने बाप–दादाओं की भॉति ऐष–आराम करने की आदत पड़ जाती है इसीलिए वे कोई उत्पादक कार्य नहीं करते हैं एक के बाद दूसरी जायदाद बेचकर भी भोग–विलास व बाहरी ठाट–बाट को बनाये रखना उन्हें मंजूर होता है पर नौकरी करना नहीं। श्रम द्वारा धन कमाना उनके लिए लज्जा की बात है। ऐसा करने में वे अपनी तौहीन समझते हैं उनकी तो 'ाान इसी में है कि अपने बाप–दादाओं के उच्च जीवन–मान को बनाये रखने में वे अपने को धीरे–धीरे पतन की ओर ले जायें मिट जाना उनके लिए सरल है पर ऐष–आराम जीवन को त्यागना या मेहनत से रोटी कमाना उनके लिए असम्भव है।

12.10 सारांश–

इस इकाई के अध्ययन से आप जान चुके हैं कि संदर्भ समूह की अवधारणा किस प्रकार सापेक्षिक वंचना से संबन्धित है। सन्दर्भ समूह का अर्थ, विशे"ताएँ, प्रकार आदि को भी जान चुके हैं। इसके प्रकार्यात्मक पक्ष किस प्रकार व्यक्ति के लिए लाभदायक हैं साथ ही इसके अप्रकार्यामक पहलू किस प्रकार व्यक्ति को प्रभावित करती है और व्यक्ति 'सीमान्त व्यक्ति' बन जाता है।

12.11 पारिभाि"ाक शब्दावली–

सकारात्मक संदर्भ समूह (Positive Reference Group)– वह समूह जिसकी सदस्यता की इच्छा व्यक्ति रखता है जैसे– किसी विधार्थी आई.ए. एस. बनने की इच्छा, अतः विद्यार्थी के लिए आई. ए. एस. सकारात्मक सन्दर्भ समूह है।

नकारात्मक संदर्भ समूह (Negative Reference Group)– वह समूह जिसकी सदस्यता की इच्छा व्यक्ति **नहीं** रखता है जैसे– चोर, डाकू, गुंडे आदि।

12.12 अभ्यास/बोध प्रश्नों के उत्तर

(1) सन्दर्भ समूह व्यवहार के परिप्रेक्ष्य में 'सीमान्त व्यक्ति' की अवधारणा का किसने प्रयोग किया है?
(क) आर. के. मर्टन (ख)ए. के. रॉस
(ग) एच. एच. हाइमन (घ)न्यूकॉम्ब

(2) सन्दर्भ समूह व्यवहार, निम्नलिखित में से किसका परिणाम है?
(क) वंचन का (ख) सापेक्षिक वंचन का
(ग) सापेक्ष प्रेरणा का (घ) प्रेरणा का

(3) सन्दर्भ समूह की अवधारणा सर्वप्रथम किसने प्रतिपादित किया?
(क) मर्टन (ख) हाईमन
(ग) न्यूकॉम्ब (घ) कूले

(4) सन्दर्भ –समूह का मुख्य आधार है–
(क) वैक्तिक सम्बन्ध (ख) लघु आकार
(ग) सम्बन्धों में घनिष्ठता (घ) सदस्य बनने की आकांक्षा

(5) सन्दर्भ–समूह को सकारात्मक और नकारात्मक में विभाजित किया है–
(क) न्यूकॉम्ब (ख) मर्टन
(ग) हाइमन (घ) सोरोकिन

6. 'सदर्भ समूह' का मुख्य कारण है

(क) हीनभावना

(ख) परजाति केन्द्रवाद

(ग) दरिद्रता

(घ) सापेक्षिक वंचन

7. सापेक्षिक वंचन निम्नलिखित में से कौन–सा युग्म सही रुप से सुमेलित नहीं किया गया है?
(क) सी. एच. कूले : प्राथमिक समूह

(ख) टॉल्कट पॉर्सन्स : प्रत्यक्षवाद

(ग) आर. के. मर्टन : संदर्भ– समूह

(घ) डब्ल्यू. जी सम्नर : अंतः समूह, बहिर्समूह

8. निम्नलिखित युग्मों में से कौन–सा एक सही रुप से सुमेलित नहीं किया गया है?
   (क)ए. आर. रेडक्लिफब्राउन : चार प्रकार्यात्मक पूर्वापेक्षाएं
   (ख) आर. के. मर्टन : संदर्भ–समूह
   (ग) एमिल दर्खाइम : सामाजिक तथ्य
   (घ) ई. एच. कूले : प्राथमिक एवं गौण समूह
9. निम्नलिखित में से किसने 'सापेक्ष वंचन' को सबसे पहले प्रयुक्त किया?
   (क) सैमुअल ए. स्टौफर
   (ख) आर. के. मर्टन
   (ग)डब्ल्यू. जी. सम्नर
   (घ)ए. हैंडर्सन
10. वह प्रक्रिया जिसमें कोई निम्न जाति किसी उच्च जाति की जीवन शैली का अनुकरण करती है, उसे कहेगें:
   (क) संदर्भ समूह
   (ख) भूमिका आदर्ष
   (ग)नकल
   (घ)प्रत्याषी समाजीकरण

उत्तर– 1–क, 2–ख, 3–ख, 4–घ, 5–क 6–घ 7–ख 8–क 9–ख 10–क

12.13 संदर्भ ग्रंथ सूची–

(1) शम्भूलाल दोषी एवं मधुसूदन त्रिवेदी, उच्चतर समाजषासत्रीय सिद्धान्त (1997) रावत पब्लिकेषन्स, जयपुर एवं नई दिल्ली, P- 40-150

(2) एस. एल. दोषी एवं पी. सी. जैन, सामाजिक विचारक (1997), सामाजिक विचारक, रावत पब्लिकेषन्स, जयपुर एवं नई दिल्ली, P- 80-300

(3) डा. शीबा सिद्दीकी, आधुनिक एवं उत्तर आधुनिक समाजषास्त्रीय सिद्धान्त (2012) विवेक प्रकाषन, जवाहर नगर, दिल्ली, P- 24–30

(4) डा. एम. एम. लवानिया एवं शषी के. जैन, सैद्धान्तिक समाजषास्त्र (1998), रिसर्च पब्लिकेषन्स, जयपुर, P- 119-180

(5) एस. एस. पाण्डेय, टीएमएच, P- 17.1, 17.11

(6) डा0 अफरोज एकबाल, भारत में सामाजिक परिवर्तन दषा एवं दिषा] P 1- 55

12.14 सहायक / उपयोगी पाठ्यसामग्री–

(1) M. Francis Abraham, Modern Sociological Theory, Oxford University, Press Bombay, Calculta, Madras (1982) —P- 40-88

(2) Sujit Kumar Choudhary, Thinkers and Theories in Sociology — P 221-260

(1)Parimal B. Kar, Society, A Study of Social Interaction, Jawahar Publisher (1994) — P 62-70

12.15 निबन्धात्मक प्रश्न–

(1) सन्दर्भ समूह क्या है? इसकी विषेषताओं का वर्णन करें।

(2) सन्दर्भ समूह के बारे में मर्टन के विचार स्पष्ट करें, यह किस प्रकार सापेक्षिक वंचन से संबन्धित है?

(3) सन्दर्भ समूह की अवधारणा का वर्णन करें। इसके विभिन्न प्रकार बतायें।